उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

अप्रैल-जून, 2016

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आयुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, राजस्थान, जयपुर और अन्य **बनाम** बलवीर सिंह और अन्य	259
उत्तर प्रदेश राज्य, **मार्फत** सचिव, प्राथमिक शिक्षा, लखनऊ और अन्य **बनाम** रमेश चंद्र तिवारी और अन्य	153
ओम प्रकाश **बनाम** श्रीमती शशि और एक अन्य	225
छोटे लाल **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य (देखिए – पृष्ठ संख्या 210)	
जयन्ती देब दास (श्रीमती) **बनाम** मानस कुमार दास	166
जयपुर विकास प्राधिकरण **बनाम** श्री बाबू लाल सैनी और अन्य	210
प्रदीप कुमार **बनाम** हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य	287
सरदारीलाल **बनाम** गजानंद	274
सांगीलाल चंगानी **बनाम** राजस्थान राज्य और अन्य	189
हिमाचल प्रदेश भूतपूर्व सैनिक निगम **बनाम** जिला मजिस्ट्रेट, सोलन और अन्य	295

संसद् के अधिनियम

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2014 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	(1) – (21)

अप्रैल-जून, 2016 (संयुक्तांक)

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
अनूप कुमार वार्ष्णेय

संपादक
कमला कांत

महत्वपूर्ण निर्णय

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 – भू-स्वामी द्वारा बेदखली के लिए वाद – वाद खारिज किया जाना – किराएदार द्वारा वाद संपत्ति को खाली न किया जाना – भू-स्वामी को विवादित गृह की आवश्यकता होना – जहां पर भू-स्वामी को अपने कुटुंब के लिए किराए पर दिए गृह की आवश्यकता होती है तो वह किराएदार से उक्त गृह खाली करा सकता है क्योंकि भू-स्वामी अपनी आवश्यकतानुसार अपने गृह को खाली कराने का हकदार है ।

सरदारीलाल बनाम **गजानंद** 274

संसद् के अधिनियम

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2014 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (21) क्रमशः

पृष्ठ संख्या 153 – 302 **(2016) 1 सि. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका – अप्रैल-जून, 2016 (संयुक्तांक) (पृष्ठ संख्या 153 – 302)

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. एन. आर. बट्टू, संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल, विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री जुगल किशोर,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

श्री अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान भवन

श्री अनूप कुमार वार्ष्णेय,
प्रधान संपादक

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान, पुण्डरीक शर्मा और जगमाल सिंह

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 36

वार्षिक : ₹ 135

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 17552/69

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन
(विधायी विभाग)
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार
भारतीय विधि संस्थान भवन,
भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा अध्यापक सेवा नियम, 1981

– नियम 29 – अधिवर्षिता की आयु – ऐसा प्रत्येक अध्यापक जिसने नियम 29 के परंतुक का फायदा प्राप्त नहीं किया है, सुस्पष्टतः सामान्य अनुक्रम में शैक्षिक सत्र के बीच अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक काम करते रहने और सेवांत फायदा प्राप्त करने का हकदार होगा ।

उत्तर प्रदेश राज्य, मार्फत **सचिव, प्राथमिक शिक्षा, लखनऊ और अन्य** बनाम **रमेश चंद्र तिवारी और अन्य** 153

देवस्थान विभाग, राजस्थान के नियंत्रण और अधीक्षण के अधीन कोर्ट आफ वार्ड स्वयं समर्थित (निधिपोषित) मंदिर के कर्मचारियों से संबंधित सेवा नियम, 1959

– नियम 25 – नियमित वेतनमान और सेवांत फायदे – याची की चपरासी के रूप में नियमानुसार नियुक्ति – चपरासी के बदले अंशकालिक चौकीदार का वेतन न दिया जाना – अधिवर्षिता पर सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन संबंधी लाभ न दिया जाना – जहां राज्य सरकार द्वारा नियमों के अधीन भर्ती की जाती है वहां वेतन कम देना, सेवा और सेवांत फायदे न देना नियमों का उल्लंघन है, अतः राज्य सरकार नियमित और सेवांत फायदे देने के लिए दायी है ।

सांगीलाल चंगानी बनाम **राजस्थान राज्य और अन्य** 189

संविधान, 1950

– अनुच्छेद 226 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 तथा राजस्थान भूमि अर्जन अधिनियम,

पृष्ठ संख्या

1953 की धारा 4 और 6] – भू-स्वामी द्वारा भूमि अर्जन की कार्यवाहियों को लगभग तीन दशक पश्चात् चुनौती देते हुए रिट याचिका फाइल किया जाना – याचिका अतिविलंब और कतिपय तथ्यों को छिपाने के आधार पर एकल न्यायपीठ, खंड न्यायपीठ और उच्चतम न्यायालय तक खारिज हो जाना – भूमि के अर्जन की कार्यवाहियों को चुनौती देते हुए पुनः रिट याचिका फाइल किया जाना – एकल न्यायपीठ द्वारा रिट याचिका मंजूर किया जाना – पूर्ववर्ती रिट याचिका खारिज हो जाने और निर्णय उच्चतम न्यायालय तक अंतिम हो जाने के पश्चात् उसी याची या उसके हित-उत्तराधिकारी को मामला पुनः उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

जयपुर विकास प्राधिकरण बनाम **श्री बाबू लाल सैनी और अन्य** 210

– अनुच्छेद 226 – न्यायिक पुनर्विलोकन – भूतपूर्व सैनिक अधिनियम, 1979 के अधीन भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण और आर्थिक उत्थान के लिए गठित हिमाचल प्रदेश भूतपूर्व सैनिक निगम अनुच्छेद 12 के अधीन कानूनी निकाय है और यदि कार्य के आबंटन के दौरान याची का कोटा 10 प्रतिशत से 7½ प्रतिशत घटाकर प्रत्यर्थी सं. 2, एक सहकारी सोसाइटी के पक्ष में मंजूर किया जाता है तो यह अवैध और असंगत नहीं होगा ।

हिमाचल प्रदेश भूतपूर्व सैनिक निगम बनाम **जिला मजिस्ट्रेट, सोलन और अन्य** 295

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– धारा 96 और आदेश 39 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 5 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 12] – सम्पत्ति का विभाजन – समझौता – समझौते के अनुसार सम्पत्ति का

पृष्ठ संख्या

विभाजन न होना – पक्षकारों द्वारा समझौते के अनुसरण में सम्पत्तियों का कब्जा नहीं सौंपना – विनिर्दिष्ट अनुपालन – यदि किसी सम्पत्ति के बारे में पक्षकारों के बीच आपसी समझौते द्वारा बंटवारा कर लिया जाता है तो उक्त समझौते के अनुसार ही उक्त सम्पत्ति का बंटवारा विनिर्दिष्टतः अनुज्ञेय है यदि कोई पक्षकार इसका पालन नहीं करता है तो पीड़ित पक्षकार उक्त समझौते के अनुसार सम्पत्ति का बंटवारा करने और कब्जा प्राप्त करने के लिए विनिर्दिष्टतः अनुपालन करवा सकता है ।

ओम प्रकाश बनाम **श्रीमती शशि और एक अन्य** 225

– धारा 96 – भू-स्वामी द्वारा बेदखली के लिए वाद – वाद खारिज किया जाना – किराएदार द्वारा वाद संपत्ति को खाली न किया जाना – भू-स्वामी को विवादित गृह की आवश्यकता होना – जहां पर भू-स्वामी को अपने कुटुंब के लिए किराए पर दिए गृह की आवश्यकता होती है तो वह किराएदार से उक्त गृह खाली करा सकता है क्योंकि भू-स्वामी अपनी आवश्यकतानुसार अपने गृह को खाली कराने का हकदार है ।

सरदारीलाल बनाम **गजानंद** 274

– धारा 100 – वादी द्वारा प्रश्नगत दुकान का क्रय किया जाना – वादी का अवयस्क होना – सम्पत्ति को पावर आफ अटार्नी के आधार पर विक्रय विलेख किया जाना – राजस्व कर का कपट किया जाना – यदि कोई व्यक्ति संपत्ति क्रय करता है तो वह सभी तरह के राजस्व करों का भुगतान करने के लिए दायी होगा, चाहे वह वयस्क हो या अवयस्क व्यक्ति हो ।

आयुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, राजस्थान, जयपुर और अन्य बनाम **बलवीर सिंह और अन्य** 259

पृष्ठ संख्या

– धारा 114 [सपठित राजस्थान भूमि अर्जन अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6] – पुनर्विलोकन आवेदन – भू-स्वामी द्वारा भूमि अर्जन की कार्यवाहियों को लगभग तीन दशक पश्चात् चुनौती देते हुए रिट याचिका फाइल करना – रिट याचिका अतिविलंब और कतिपय तथ्यों को छिपाने के आधार पर उच्चतम न्यायालय तक खारिज हो जाना – याची द्वारा खंड न्यायपीठ के निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – याची द्वारा खंड न्यायपीठ के निर्णय को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष रखे गए आधारों पर उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पुनर्विलोकन आवेदन में पुनः विचार करना उचित नहीं है और न ही वह इसके लिए स्वतंत्र है ।

जयपुर विकास प्राधिकरण बनाम **श्री बाबू लाल सैनी और अन्य** 210

हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25)

– धारा 13(1)(क) – विवाह-विच्छेद – मानसिक क्रूरता – जहां पत्नी इसे पति के विरुद्ध अपनी भाभी से जारकर्म के गंभीर अभिकथन किए गए और जारकर्म का अभिकथन साबित नहीं हुआ वहां यह अभिकथन पति के प्रति मानसिक क्रूरता के समान है और पति मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का हकदार है ।

जयन्ती देब दास (श्रीमती) बनाम **मानस कुमार दास** 166

हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973

– धारा 14 – प्रश्नगत भूमि की नीलामी में क्रय करना – राज्य द्वारा उक्त भूमि का अधिग्रहण करना – अधिग्रहण तत्समय प्रवृत्त विधि के अतिलंघन में होना –

पृष्ठ संख्या

यदि राज्य द्वारा तत्समय प्रवृत्त विधि के अतिलंघन में कोई भूमि अधिगृहीत की जाती है तो ऐसा अधिग्रहण अवैध और अविधिमान्य होगा ।

प्रदीप कुमार बनाम **हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य** 287

(2016) 1 सि. नि. प. 153 इलाहाबाद

उत्तर प्रदेश राज्य, मार्फत **सचिव, प्राथमिक शिक्षा, लखनऊ और अन्य**

बनाम

रमेश चंद्र तिवारी और अन्य

तारीख 28 अगस्त, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति डा. धनंजय यशवन्त चंद्रचूड़ और न्यायमूर्ति नारायण शुक्ल

उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा अध्यापक सेवा नियम, 1981 – नियम 29 – अधिवर्षिता की आयु – ऐसा प्रत्येक अध्यापक जिसने नियम 29 के परंतुक का फायदा प्राप्त नहीं किया है, सुस्पष्टतः सामान्य अनुक्रम में शैक्षिक सत्र के बीच अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक काम करते रहने और सेवांत फायदा प्राप्त करने का हकदार होगा ।

निदेश की सुविधा से हम पक्षकारों को मूल रिट याचिका में उनके विवरण द्वारा निर्दिष्ट कर रहे हैं । चार याचियों की जन्म तिथियां क्रमशः 1 जून, 1953, 27 मई, 1953, 4 जून, 1953 और 30 जून, 1953 है । परिणामतः, 62 वर्ष की अधिवर्षिता आयु अभिप्राप्त करने पर चार अध्यापकों की सेवानिवृत्ति की तारीखें 1 जून, 2015, 27 मई, 2015, 4 जून, 2015 और 30 जून, 2015 थीं । वर्ष 2013-14 तक उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों और जूनियर हाई स्कूल विद्यालयों के शिक्षा सत्र 1 जुलाई से आरंभ होते थे और आगामी वर्ष के 30 जून को समाप्त होते थे । नियम 29 के अधीन अध्यापक उस मास जिसमें वह 62 वर्ष की आयु प्राप्त करता है के अंतिम दिन को सेवानिवृत्ति का दायी है । परिणामतः, प्रश्नगत चारों अध्यापक उस संबद्ध मास की अंतिम तारीख तक जिसमें वे 62 वर्ष की आयु अभिप्राप्त करते, सामान्य अनुक्रम में बने रहते । तथापि, अनुच्छेद 29 के परंतुक में यह अभिव्यक्त है कि ऐसा अध्यापक जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त होता है, उस शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा । चूंकि शैक्षिक सत्र 1 जुलाई से 30 जून के मध्य था इसलिए ऐसे अध्यापक जिन्होंने उस अवधि के भीतर अधिवर्षिता की

आयु प्राप्त की थी, आगामी 30 जून तक बने रहेंगे और सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन की विस्तारित अवधि समझा जाएगा । 9 दिसंबर, 2014 को एक सरकारी आदेश जारी किया गया जिसके द्वारा यह संकल्प लिया गया कि शैक्षिक सत्र 2015-16 से, शैक्षिक सत्र 1 अप्रैल से आरंभ होगा और आगामी वर्ष के 31 मार्च को समाप्त होगा । सरकारी आदेश में यह उपबंध था कि इसका फायदा छात्रों के प्रवेश, उन्नयन और संस्थाओं के संचालन के प्रयोजनों के लिए उपलब्ध होगा । तथापि, यह अनुध्यात किया गया कि यह ऐसे अध्यापकों को शैक्षिक फायदा देने में कोई परिवर्तन नहीं लाएगा जो परिणामतः यथापूर्व वही फायदा दिया जाता रहेगा । राज्य सरकार ने कतिपय ऐसे निदेशों को स्पष्ट करते हुए 29 जून, 2015 को दूसरा सरकारी आदेश जारी किया जो इसी बीच 15 जून, 2015 और 19 जून, 2015 को जारी किया गया था । वर्तमान मामले में अध्यापकों ने सरकारी आदेश के निबंधनों का अवलंब लेते हुए ऐसे विनिश्चय को चुनौती देने के लिए रिट याचिका फाइल की जो 15 जून, 2015 को सचिव, प्राथमिक शिक्षा द्वारा लिया गया था । सचिव, प्राथमिक शिक्षा का यह मत था कि प्रश्नगत अध्यापक 30 जून, 2015 के परे शैक्षिक फायदा पाने के हकदार नहीं होंगे । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 30 जून, 2015 के अंतरिम आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि याचियों की अधिवर्षिता की तारीखें क्रमशः 1 जून, 2015, 27 मई, 2015, 4 जून, 2015 और 30 जून, 2015 थीं जो उस शैक्षिक सत्र के मध्य में आती थीं जो 1 अप्रैल, 2015 से आरंभ हुई थी और 31 मार्च, 2016 को समाप्त हुई थी इसलिए याचियों को उनकी जन्म तिथियों के सत्यापन के अधीन रहते हुए शैक्षिक सत्र अर्थात् 31 मार्च, 2016 तक की समाप्ति तक बने रहने की अनुज्ञा दी जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह उल्लेख किया कि वर्तमान मामले में याचियों ने पहले नियम 29 का फायदा नहीं उठाया था । तद्नुसार, पूर्वोक्त निबंधनों में एक अंतिम आदेश पारित किया गया । राज्य ने यह अपील फाइल की । उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – नियमों के नियम 29 में यह उपबंध है कि अध्यापक उस मास जिसमें अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की है के अंतिम दिन को 62 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवा से निवृत्त होगा । तथापि, नियम 29 के परंतुक का प्रयोजन ऐसे अध्यापक को समर्थ बनाना है जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त हुआ है वह शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा । नियम 29 के परंतुक के अधीन नियोजन की इस विस्तारित अवधि का फायदा यह सुनिश्चित करने के लिए है कि छात्रों की

शैक्षिक आवश्यकताएं शैक्षिक सत्र के मध्य में अध्यापक की सेवानिवृत्त के परिणामस्वरूप अस्त-व्यस्त न हो । प्राथमिक विद्यालय उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के उपबंधों द्वारा शासित हैं और अध्यापकों की सेवा शर्तें अधिनियम के अधीन विरचित नियमों द्वारा शासित हैं । नियम 29 अधिकथित करता है कि (i) अधिवर्षिता की आयु 62 वर्ष है ; (ii) यह सिद्धांत कि ऐसा अध्यापक जिसने 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है उस माह के अंतिम तारीख को सेवा से निवृत्त होगा जिसमें अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की है ; और (iii) यह सिद्धांत कि ऐसा अध्यापक जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त हुआ है, शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा और यह कि सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन की विस्तारित अवधि समझा जाएगा । नियम 29 का परंतुक अधीनस्थ विधान के माध्यम से विधिक कल्पना अधिनियमित करता है जिसका यह आशय है कि यद्यपि अध्यापक ने अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त कर ली है फिर भी अध्यापक इस तथ्य के होते हुए भी कि वह शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त हो गया था, शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा और यह कि सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन की विस्तारित अवधि समझा जाएगा । नियम 29 शैक्षिक सत्र को 1 जुलाई से 30 जून के रूप में निर्दिष्ट करता है चूंकि यह शैक्षिक सत्र था जो शैक्षिक सत्र 2013-14 तक अभिव्याप्त था । नियम 29 के परंतुक में बनाए गए विशेष उपबंध यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया था कि शैक्षिक सत्र के मध्य में किसी अध्यापक की सेवानिवृत्ति द्वारा छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं में कोई व्यवधान न हो । दूसरे शब्दों में फायदा का विस्तार अध्यापकों के लिए इतना नहीं था (यद्यपि अध्यापक सुस्पष्टतः नियोजन की विस्तारित अवधि का फायदा भी अभिप्राप्त करेंगे) किंतु प्राथमिकतः ऐसे छात्रों का संरक्षण करने के लिए था जिनकी शिक्षा शैक्षिक सत्र के लिए अध्यापक के अभाव द्वारा अस्त-व्यस्त होगी । राज्य सरकार निश्चित रूप से शैक्षिक सत्र में परिवर्तन कर सकती है जैसाकि उसने परिवर्तन कर 1 अप्रैल से 31 मार्च किया । तथापि, नियम 29 के अधीन यथा उपबंधित शैक्षिक सत्र में परिवर्तन के परिणाम को नहीं बदला जा सकता जहां तक नियम 29 का परंतुक उस विषय के संबंध में है । परंतुक यह अधिनियमित करता है कि ऐसा अध्यापक जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त होता है उपरोक्त उल्लिखित धारणात्मक कल्पना के आधार पर शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा । शैक्षिक सत्र के परिवर्तित होने पर ऐसा सिद्धांत जो नियम 29 के परंतुक में वर्णित किया गया है, नए परिवर्तित शिक्षा सत्र को लागू होगा । कुल मिलाकर वस्तुतः राज्य को यह निर्णय लेना है कि वह नियम 29 के परंतुक के अधीन नए शैक्षिक सत्र की तारीख में पारिणामिक परिवर्तन करे किंतु वह

भाग ऐसे विनिश्चय का मात्र स्पष्टीकरण है जो पहले ही शैक्षिक सत्र के आरंभ और निष्कर्ष की तारीखों के संबंध में लिया गया है । इस मामले में हम भिन्न-भिन्न सरकारी आदेश पाते हैं जो राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए हैं कि इनमें पर्याप्त दुविधा है और विवेक के प्रयोग की कमी है जिसे सर्वप्रथम दूर किया जाना चाहिए । राज्य सरकार ने यह उल्लेख करते हुए 9 दिसंबर, 2014 को सरकारी आदेश जारी किया कि शैक्षिक सत्र में पूर्ववर्ती 1 जुलाई से 30 जून और 1 अप्रैल से 31 मार्च के परिवर्तन करने का विनिश्चय किया गया है । शैक्षिक सत्र में यह परिवर्तन वर्ष 2015-16 से प्रभावी होगा । दूसरे शब्दों में 1 अप्रैल, 2015 से, नया सत्र प्रभावी हुआ जो 31 मार्च, 2016 तक जारी रहेगा । ऐसा अध्यापक जिसने 62 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त करने पर सेवानिवृत्ति की सामान्य तारीख शैक्षिक सत्र के भीतर आती है, 31 मार्च, 2016 तक सेवा के विस्तार का फायदा पाने का हकदार होगा । सुस्पष्टतः इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के दो निर्णयों और लखनऊ स्थित खंड न्यायपीठ के निर्णय के अनुसार, ऐसा अध्यापक जो नियम 29 के परंतुक के प्रवर्तन के आधार पर 30 जून, 2015 तक सेवा में बना रहा और जिसने पहले ही परंतुक का फायदा ले लिया है, 31 मार्च, 2016 तक आगे सेवा के विस्तार का फायदा पाने का हकदार नहीं होगा । परिणामतः जैसाकि हमने पहले उल्लेख किया है, ऐसे मामले जो इलाहाबाद स्थित खंड न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए गए थे, में अध्यापकों ने पहले ही जुलाई, 2014 में या यथास्थिति जनवरी, 2015 में अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त कर ली थी । ये अध्यापक 30 जून, 2015 तक बने रहे जो पहले विनियम 21 के परंतुक के अनुसार पूर्व शैक्षिक सत्र था (माध्यमिक संस्थाओं के मामले में लागू) । तथापि, ऐसा अध्यापक जिसने यथा उपांतरित शैक्षिक सत्र 2015-16 के दौरान अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त करता है और जिसने नियम 29 के परंतुक का फायदा लिया है, शैक्षिक सत्र जो 31 मार्च, 2016 का होगा कि समाप्ति तक सेवा में बने रहने का हकदार होगा । ऐसे सरकारी आदेश जो समय-समय पर विशिष्टतया 9 दिसंबर, 2014 और 29 जून, 2015 को जारी किए गए थे, को नियम 29 की परंतुक के आज्ञापक अपेक्षाओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किया जाए । जैसाकि हमने पहले मत व्यक्त किया है, निःसंदेह शैक्षिक सत्र के परिवर्तन की शक्ति सरकार में निहित है किंतु एक बार शैक्षिक सत्र का परिवर्तन करने पर वह परिणाम जो नियम 29 के परंतुक के अधीन परिकल्पित है, घटित होना चाहिए । राज्य सरकार सरकारी आदेश द्वारा नियम 29 के परंतुक का अधिक्रमण नहीं कर सकती । यह ऐसे अधीनस्थ विधान का भाग है जिसकी सामान्यतः प्रशासनिक आदेश द्वारा अवहेलना नहीं की जा सकती । इस विशेष अपील के तथ्यों में, चार

प्रत्यर्थी अध्यापकों की अधिवर्षिता की तारीखें क्रमशः 1 जून, 2015, 27 मई, 2015, 4 जून, 2015 और 30 जून, 2015 होंगी । इन सभी अध्यापकों ने नियम 29 के परंतुक का फायदा लिए बिना सामान्य अनुक्रम में 1 अप्रैल, 2015 से आरंभ हो रहे शैक्षिक सत्र 2015-16 में काम किया । चूंकि उनकी सेवानिवृत्ति की तारीखें शैक्षिक सत्र के मध्य में आती हैं इसलिए वे नियम 29 के परंतुक के अनुसार शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक सुस्पष्टतः सेवा में बने रहने के हकदार होंगे । सचिव, प्राथमिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश सरकार जिसने 15 जून, 2015 को मुद्दे का विनिश्चय किया, स्पष्टतः नियम 29 के परंतुक के समादेश के प्रतिकूल मत व्यक्त किया है । (पैरा 6, 10, 11 और 12)

रिट (दांडिक) अधिकारिता : 2014 की दांडिक प्रकीर्ण याचिका सं. 2556.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

अपीलार्थियों की ओर से मुख्य स्थायी काउंसेल

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री मनोज कुमार द्विवेदी

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति डा. डी. वाई. चंद्रचूड़ ने दिया ।

मु. न्या. (डा.) चंद्रचूड़ – प्रत्यर्थी जो संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन विद्वान् एकल न्यायाधीश के समक्ष संस्थित कार्यवाहियों में मूल याची हैं, इलाहाबाद स्थित उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित और प्रबंधकृत प्राथमिक संस्थाओं के सहायक अध्यापक या यथास्थिति प्रधानाध्यापक के रूप में कार्य कर रहे हैं । संस्थाएं उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1971 के अधीन मान्यता प्राप्त हैं । अधिनियम के अधीन विरचित उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा अध्यापक सेवा नियम, 1981 प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को लागू हैं । नियम 29 में यह उपबंध है :–

> "29. अधिवर्षिता की आयु – प्रत्येक अध्यापक उस मास जिसमें वह 62 वर्ष की आयु अभिप्राप्त करता है, के अंतिम दिन के अपराह्न में सेवा से निवृत्त होगा :
>
> परंतु, ऐसा अध्यापक जो शैक्षणिक सत्र (1 जुलाई से 30 जून) के दौरान सेवानिवृत्त होता है, शैक्षिक सत्र अर्थात् 30 जून तक कार्य करता रहेगा और सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन के विस्तारित अवधि के रूप में समझा जाएगा ।"

2. निदेश की सुविधा से हम पक्षकारों को मूल रिट याचिका में उनके विवरण द्वारा निर्दिष्ट कर रहे हैं । चार याचियों की जन्म तिथियां क्रमशः 1 जून, 1953, 27 मई, 1953, 4 जून, 1953 और 30 जून, 1953 है । परिणामतः, 62 वर्ष की अधिवर्षिता आयु अभिप्राप्त करने पर चार अध्यापकों की सेवानिवृत्ति की तारीखें 1 जून, 2015, 27 मई, 2015, 4 जून, 2015 और 30 जून, 2015 थीं । वर्ष 2013-14 तक उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा बोर्ड द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों और जूनियर हाई स्कूल विद्यालयों के शिक्षा सत्र 1 जुलाई से आरंभ होते थे और आगामी वर्ष के 30 जून को समाप्त होते थे । नियम 29 के अधीन अध्यापक उस मास जिसमें वह 62 वर्ष की आयु प्राप्त करता है के अंतिम दिन को सेवानिवृत्ति का दायी है । परिणामतः, प्रश्नगत चारों अध्यापक उस संबद्ध मास की अंतिम तारीख तक जिसमें वे 62 वर्ष की आयु अभिप्राप्त करते, सामान्य अनुक्रम में बने रहते । तथापि, अनुच्छेद 29 के परंतुक में यह अभिव्यक्त है कि ऐसा अध्यापक जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त होता है, उस शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा । चूंकि शैक्षिक सत्र 1 जुलाई से 30 जून के मध्य था इसलिए ऐसे अध्यापक जिन्होंने उस अवधि के भीतर अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की थी, आगामी 30 जून तक बने रहेंगे और सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन की विस्तारित अवधि समझा जाएगा ।

3. 9 दिसंबर, 2014 को एक सरकारी आदेश जारी किया गया जिसके द्वारा यह संकल्प लिया गया कि शैक्षिक सत्र 2015-16 से, शैक्षिक सत्र 1 अप्रैल से आरंभ होगा और आगामी वर्ष के 31 मार्च को समाप्त होगा । सरकारी आदेश में यह उपबंध था कि इसका फायदा छात्रों के प्रवेश, उन्नयन और संस्थाओं के संचालन के प्रयोजनों के लिए उपलब्ध होगा । तथापि, यह अनुध्यात किया गया कि यह ऐसे अध्यापकों को शैक्षिक फायदा देने में कोई परिवर्तन नहीं लाएगा जो परिणामतः यथापूर्व वही फायदा दिया जाता रहेगा । राज्य सरकार ने कतिपय ऐसे निदेशों को स्पष्ट करते हुए 29 जून, 2015 को दूसरा सरकारी आदेश जारी किया जो इसी बीच 15 जून, 2015 और 19 जून, 2015 को जारी किया गया था ।

4. वर्तमान मामले में अध्यापकों ने सरकारी आदेश के निबंधनों का अवलंब लेते हुए ऐसे विनिश्चय को चुनौती देने के लिए रिट याचिका फाइल की जो 15 जून, 2015 को सचिव, प्राथमिक शिक्षा द्वारा लिया गया था । सचिव, प्राथमिक शिक्षा का यह मत था कि प्रश्नगत अध्यापक 30 जून, 2015 के परे शैक्षिक फायदा पाने के हकदार नहीं होंगे । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने 30 जून, 2015 के अंतरिम आदेश द्वारा यह

अभिनिर्धारित किया कि चूंकि याचियों की अधिवर्षिता की तारीखें क्रमशः 1 जून, 2015, 27 मई, 2015, 4 जून, 2015 और 30 जून, 2015 थीं जो उस शैक्षिक सत्र के मध्य में आती थीं जो 1 अप्रैल, 2015 से आरंभ हुई थी और 31 मार्च, 2016 को समाप्त हुई थी इसलिए याचियों को उनकी जन्म तिथियों के सत्यापन के अधीन रहते हुए शैक्षिक सत्र अर्थात् 31 मार्च, 2016 तक की समाप्ति तक बने रहने की अनुज्ञा दी जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह उल्लेख किया कि वर्तमान मामले में याचियों ने पहले नियम 29 का फायदा नहीं उठाया था । तद्नुसार, पूर्वोक्त निबंधनों में एक अंतिम आदेश पारित किया गया । राज्य ने यह अपील फाइल की ।

5. चूंकि न्यायालय के समक्ष उद्भूत मुद्दा विशुद्धतः विधि का प्रश्न है और अंतिमता और निश्चितता के लिए आवश्यक है इसलिए हम सभी काउंसेलों की सहमति से रिट याचिका की सुनवाई और अंतिम रूप से निपटान करते हैं । तथ्य का कोई मुद्दा इन कार्यवाहियों में नहीं तय किया जाएगा और पूर्णतः मामला सुसंगत नियमों और सरकारी आदेशों के मूल्यांकन पर ही होगा ।

6. नियमों के नियम 29 में यह उपबंध है कि अध्यापक उस मास जिसमें अधिवर्षिता की आयु प्राप्त की है के अंतिम दिन को 62 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु प्राप्त करने पर सेवा से निवृत्त होगा । तथापि, नियम 29 के परंतुक का प्रयोजन ऐसे अध्यापक को समर्थ बनाना है जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त हुआ है वह शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा । नियम 29 के परंतुक के अधीन नियोजन की इस विस्तारित अवधि का फायदा यह सुनिश्चित करने के लिए है कि छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताएं शैक्षिक सत्र के मध्य में अध्यापक की सेवानिवृत्ति के परिणामस्वरूप अस्त-व्यस्त न हो । आरंभतः, शैक्षिक सत्र प्रत्येक वर्ष की 1 जुलाई से आरंभ होता था और आगामी वर्ष के 30 जून को समाप्त होता था । परिणामतः, कोई अध्यापक जो 1 जुलाई और आगामी वर्ष के 30 जून के बीच अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त करता था, 30 जून तक सेवा में बना रहता था जब शैक्षिक सत्र समाप्त होता था । राज्य सरकार ने यह विनिश्चय लिया कि वर्ष 2015-16 से, शैक्षिक सत्र 1 अप्रैल (1 जुलाई के बजाए) से आरंभ होगा और आगामी वर्ष के 31 मार्च (30 जून के बजाए) समाप्त होगा । कई मामलों में न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा उठा कि कैसे और किस विस्तार तक ऐसे अध्यापक जिन्होंने पूर्व शैक्षिक सत्र में अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की थी, शैक्षिक सत्र के परिवर्तन के पश्चात्

सत्रीय फायदा पाने के हकदार होंगे । इस मुद्दे पर ऐसे दो मामले में इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा विचारित किया गया जो उत्तर प्रदेश माध्यमिक शिक्षा अधिनियम, 1921 द्वारा शासित माध्यमिक संस्थाओं के संबंध में उठाया गया था । 12 जून, 2015 को राज्य सरकार ने 1921 के अधिनियम के अधीन विरचित विनियमों के अध्याय 3 के विनियम 21 को संशोधित किया । संशोधन के परिणामस्वरूप शैक्षिक सत्र को समान रूप से परिवर्तित किया गया जिससे कि अप्रैल से सत्र आरंभ हो और आगामी वर्ष के 31 मार्च को समाप्त हो । भजनलाल दीवाकर बनाम बानीसिंह ठाकुरेला वाले मामले में, प्रश्नगत अध्यापक की जन्म तिथि 12 जुलाई, 1952 की और 12 जुलाई, 2014 को 62 वर्ष की आयु अभिप्राप्त की । चूंकि अधिवर्षिता की तारीख शैक्षिक सत्र 2014-15 के मध्य में आई इसलिए उन्हें 30 जून, 2015 तक बने रहने की अनुज्ञा दी गई थी । राज्य सरकार ने 15 अक्तूबर, 2014 को सरकारी आदेश जारी किया जिसके द्वारा शैक्षिक सत्र 1 अप्रैल से 31 मार्च में परिवर्तित किया गया । उस मामले में अध्यापक ने यह दलील दी कि चूंकि उन्हें 30 जून, 2015 तक बने रहने की अनुज्ञा दी गई थी जो पुनःअभिनामित शैक्षिक सत्र 1 अप्रैल से 31 मार्च के भीतर आता है इसलिए वह 31 मार्च, 2016 तक बने रहने का हकदार होगा । उस दलील को नामंजूर करते हुए खंड न्यायपीठ ने तारीख 20 जुलाई, 2015 के अपने निर्णय द्वारा यह मत व्यक्त किया :–

> "इस मामले में, प्रथम प्रत्यर्थी ने जुलाई, 2014 को 62 वर्ष की आयु अभिप्राप्त की थी । असंशोधित विनियम 21 के अधीन, चूंकि प्रथम प्रत्यर्थी की सेवानिवृत्ति की तारीख शैक्षिक सत्र के मध्य में आती थी इसलिए उन्हें 30 जून, 2015 तक व्याख्याता के रूप में बने रहने की अनुज्ञा दी गई । प्रथम प्रत्यर्थी उस आधार पर 30 जून, 2015 तक बना रहा । प्रथम प्रत्यर्थी आगे 31 मार्च, 2016 तक सेवा में विस्तार की मांग करता है जो हमारी राय में अननुज्ञेय होगा । संशोधित विनियम के अधीन ऐसे विस्तार का फायदा ऐसे प्रथम प्रत्यर्थी की स्थिति वाले अध्यापक को उपलब्ध नहीं होगा जिसने 1 अप्रैल, 2015 से पूर्व पहले ही अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की थी । प्रथम प्रत्यर्थी ने पहले ही शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक सेवा में बने रहने का फायदा अभिप्राप्त किया था जो असंशोधित विनियम के अनुसार 30 जून, 2015 को समाप्त हो गया था । राज्य सरकार ने 25 मई, 2015 के सरकारी आदेश द्वारा यह स्पष्ट किया था कि ऐसा कर्मचारी 30 जून, 2015 तक बना रहेगा । दूसरे शब्दों में, प्रथम

प्रत्यर्थी 31 मार्च, 2016 तक सेवा में अगले विस्तार का फायदा पाने का हकदार नहीं होगा ।"

7. उस मामले में विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अध्यापक को 31 मार्च, 2016 तक कार्य करते रहने की अनुज्ञा देते हुए अंतरिम आदेश दिया था । याचिका की सुनवाई अंततः खंड न्यायपीठ द्वारा की गई चूंकि विधि के प्रश्न उठाए गए थे और राज्य तथा याची दोनों की ओर से काउंसेलों ने यह उल्लेख किया कि मामले की सुनवाई अंतिम रूप से की जाए और इसका निपटान किया जाए । खंड न्यायपीठ के निर्णय में यह सिद्धांत अधिकथित किया गया कि ऐसा अध्यापक जिसने 30 जून, 2015 तक नियोजन की विस्तारित अवधि का फायदा पहले ही लिया है, 31 मार्च, 2016 तक आगे विस्तार का फायदा पाने का हकदार नहीं होगा ।

8. दुलारे लाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में 24 जुलाई, 2015 को इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा यही मत दोहराया गया था । उस मामले में भी एक माध्यमिक विद्यालय के सहायक अध्यापक जिनकी जन्म तिथि 3 जनवरी, 1953 और 14 जनवरी, 1953 थी ने 3 जनवरी, 2015 और 14 जनवरी, 2015 को अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की थी । चूंकि उनकी अधिवर्षिता की तारीखें शैक्षिक सत्र 2014-15 के मध्य आती थीं इसलिए अध्यापकों को 30 जून, 2015 तक बने रहने की अनुज्ञा दी गई जो शैक्षिक सत्र 2014-15 की अंतिम तारीख थी । इस पृष्ठभूमि में, खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक सेवा के विस्तार का एक बार फायदा अभिप्राप्त करने पर, अध्यापक 31 मार्च, 2016 तक आगे विस्तार का फायदा पाने के हकदार नहीं होंगे । खंड न्यायपीठ ने इस प्रकार अभिनिर्धारित किया :–

"न्यायालय के समक्ष मूल मुद्दा यह है कि क्या ऐसा व्यक्ति जिसने 1 अप्रैल, 2015 से पूर्व पहले ही अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की है और जिसने शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक सेवा के विस्तार का फायदा उठाया है, 31 मार्च, 2016 तक सेवा के आगे विस्तार का फायदा पाने का हकदार होगा । इस प्रश्न के उत्तर में इस बात पर बल दिया जाना आवश्यक है कि शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक सेवा के विस्तार के मंजूर किए जाने का प्रयोजन छात्रों की शिक्षा के हित का संरक्षण करना है जिससे कि शैक्षिक सत्र के मध्य में अध्यापक की सेवानिवृत्ति के परिणामस्वरूप शिक्षा के कार्य में कोई व्यवधान न हो । इस का उल्लेख सुरेन्द्र प्रसाद अग्निहोत्री बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य वाले मामले में इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ

के निर्णय में भी किया गया है जिसका अवलंब विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा लिया गया है । अपीलार्थियों के मामले में, यह स्पष्ट है कि उन्होंने शैक्षिक सत्र 2014-15 के मध्य के दौरान जनवरी, 2015 में अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की थी । अतः, उन्हें शैक्षिक सत्र की समाप्ति जो उस समय 30 जून, 2015 तक था, तक सेवा का विस्तार मंजूर किया गया था । अधिवर्षिता की तारीख विनियम 21 के परिणामस्वरूप मुल्तवी नहीं की गई है किंतु कर्मचारियों को शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक केवल विस्तार दिया गया है । 30 जून तक सेवा के विस्तार का फायदा एक बार पाने पर, अपीलार्थी 31 मार्च, 2016 तक सेवा का आगे फायदा पाने के हकदार नहीं होंगे । अपीलार्थी यह दावा करने के हकदार नहीं होंगे कि अब शैक्षिक सत्र 1 अप्रैल से 31 मार्च में परिवर्तन के परिणामस्वरूप अधिवर्षिता की उनकी तारीख शैक्षिक वर्ष के मध्य में आती है जिसके कारण वे सेवा के आगे विस्तार के हकदार हैं । अपीलार्थियों ने पहले ही सेवा के विस्तार का फायदा उठाया है और आगे विस्तार का उन्हें फायदा देने की कोई गुंजाइश नहीं है ।"

9. कृष्ण चंद्रपाल बनाम उत्तर प्रदेश राज्य वाले मामले में लखनऊ स्थित इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा ऐसा ही मत व्यक्त किया गया है । उस मामले में अध्यापक पहले ही 14 जुलाई, 2014 और 31 दिसंबर, 2014 के बीच अधिवर्षिता की आयु प्राप्त कर ली थी जो शैक्षिक सत्र 2014-15 के भीतर था अतः वे 30 जून, 2015 तक बने रहे । खंड न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि विनियम 21 उन्हें 31 मार्च, 2016 तक आगे विस्तार का हकदार नहीं बनाएगा ।

10. प्राथमिक विद्यालय उत्तर प्रदेश प्राथमिक शिक्षा अधिनियम, 1972 के उपबंधों द्वारा शासित हैं और अध्यापकों की सेवा शर्तें अधिनियम के अधीन विरचित नियमों द्वारा शासित हैं । नियम 29 अधिकथित करता है कि (i) अधिवर्षिता की आयु 62 वर्ष है ; (ii) यह सिद्धांत कि ऐसा अध्यापक जिसने 62 वर्ष की आयु प्राप्त कर ली है उस माह के अंतिम तारीख को सेवा से निवृत्त होगा जिसमें अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त की है ; और (iii) यह सिद्धांत कि ऐसा अध्यापक जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त हुआ है, शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा और यह कि सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन की विस्तारित अवधि समझा जाएगा । नियम 29 का परंतुक अधीनस्थ विधान के माध्यम से विधिक कल्पना अधिनियमित करता है जिसका यह आशय है कि यद्यपि अध्यापक ने अधिवर्षिता की

आयु अभिप्राप्त कर ली है फिर भी अध्यापक इस तथ्य के होते हुए भी कि वह शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त हो गया था, शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा और यह कि सेवा की ऐसी अवधि को नियोजन की विस्तारित अवधि समझा जाएगा । नियम 29 शैक्षिक सत्र को 1 जुलाई से 30 जून के रूप में निर्दिष्ट करता है चूंकि यह शैक्षिक सत्र था जो शैक्षिक सत्र 2013-14 तक अभिव्याप्त था । नियम 29 के परंतुक में बनाए गए विशेष उपबंध यह सुनिश्चित करने के लिए किया गया था कि शैक्षिक सत्र के मध्य में किसी अध्यापक की सेवानिवृत्ति द्वारा छात्रों की शैक्षिक आवश्यकताओं में कोई व्यवधान न हो । दूसरे शब्दों में फायदा का विस्तार अध्यापकों के लिए इतना नहीं था (यद्यपि अध्यापक सुस्पष्टतः नियोजन की विस्तारित अवधि का फायदा भी अभिप्राप्त करेंगे) किंतु प्राथमिकतः ऐसे छात्रों का संरक्षण करने के लिए था जिनकी शिक्षा शैक्षिक सत्र के लिए अध्यापक के अभाव द्वारा अस्त-व्यस्त होगी । राज्य सरकार निश्चित रूप से शैक्षिक सत्र में परिवर्तन कर सकती है जैसाकि उसने परिवर्तन कर 1 अप्रैल से 31 मार्च किया । तथापि, नियम 29 के अधीन यथा उपबंधित शैक्षिक सत्र में परिवर्तन के परिणाम को नहीं बदला जा सकता जहां तक नियम 29 का परंतुक उस विषय के संबंध में है । परंतुक यह अधिनियमित करता है कि ऐसा अध्यापक जो शैक्षिक सत्र के दौरान सेवानिवृत्त होता है उपरोक्त उल्लिखित धारणात्मक कल्पना के आधार पर शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक कार्य करता रहेगा । शैक्षिक सत्र के परिवर्तित होने पर ऐसा सिद्धांत जो नियम 29 के परंतुक में वर्णित किया गया है, नए परिवर्तित शिक्षा सत्र को लागू होगा । कुल मिलाकर वस्तुतः राज्य को यह निर्णय लेना है कि वह नियम 29 के परंतुक के अधीन नए शैक्षिक सत्र की तारीख में पारिणामिक परिवर्तन करे किंतु वह भाग ऐसे विनिश्चय का मात्र स्पष्टीकरण है जो पहले ही शैक्षिक सत्र के आरंभ और निष्कर्ष की तारीखों के संबंध में लिया गया है ।

11. इस मामले में हम भिन्न-भिन्न सरकारी आदेश पाते हैं जो राज्य सरकार द्वारा जारी किए गए हैं कि इनमें पर्याप्त दुविधा है और विवेक के प्रयोग की कमी है जिसे सर्वप्रथम दूर किया जाना चाहिए । राज्य सरकार ने यह उल्लेख करते हुए 9 दिसंबर, 2014 को सरकारी आदेश जारी किया कि शैक्षिक सत्र में पूर्ववर्ती 1 जुलाई से 30 जून और 1 अप्रैल से 31 मार्च के परिवर्तन करने का विनिश्चय किया गया है । शैक्षिक सत्र में यह परिवर्तन वर्ष 2015-16 से प्रभावी होगा । दूसरे शब्दों में 1 अप्रैल, 2015 से, नया सत्र प्रभावी हुआ जो 31 मार्च, 2016 तक जारी रहेगा । ऐसा

अध्यापक जिसने 62 वर्ष की अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त करने पर सेवानिवृत्ति की सामान्य तारीख शैक्षिक सत्र के भीतर आती है, 31 मार्च, 2016 तक सेवा के विस्तार का फायदा पाने का हकदार होगा । सुस्पष्टतः इलाहाबाद स्थित इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ के दो निर्णयों और लखनऊ स्थित खंड न्यायपीठ के निर्णय के अनुसार, ऐसा अध्यापक जो नियम 29 के परंतुक के प्रवर्तन के आधार पर 30 जून, 2015 तक सेवा में बना रहा और जिसने पहले ही परंतुक का फायदा ले लिया है, 31 मार्च, 2016 तक आगे सेवा के विस्तार का फायदा पाने का हकदार नहीं होगा । परिणामतः जैसाकि हमने पहले उल्लेख किया है, ऐसे मामले जो इलाहाबाद स्थित खंड न्यायपीठ द्वारा विनिश्चित किए गए थे, में अध्यापकों ने पहले ही जुलाई, 2014 में या यथास्थिति जनवरी, 2015 में अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त कर ली थी । ये अध्यापक 30 जून, 2015 तक बने रहे जो पहले विनियम 21 के परंतुक के अनुसार पूर्व शैक्षिक सत्र था (माध्यमिक संस्थाओं के मामले में लागू) । तथापि, ऐसा अध्यापक जिसने यथा उपांतरित शैक्षिक सत्र 2015-16 के दौरान अधिवर्षिता की आयु अभिप्राप्त करता है और जिसने नियम 29 के परंतुक का फायदा लिया है, शैक्षिक सत्र जो 31 मार्च, 2016 का होगा कि समाप्ति तक सेवा में बने रहने का हकदार होगा । ऐसे सरकारी आदेश जो समय-समय पर विशिष्टतया 9 दिसंबर, 2014 और 29 जून, 2015 को जारी किए गए थे, को नियम 29 की परंतुक के आज्ञापक अपेक्षाओं के अनुसार आवश्यक परिवर्तन किया जाए । जैसाकि हमने पहले मत व्यक्त किया है, निःसंदेह शैक्षिक सत्र के परिवर्तन की शक्ति सरकार में निहित है किंतु एक बार शैक्षिक सत्र का परिवर्तन करने पर वह परिणाम जो नियम 29 के परंतुक के अधीन परिकल्पित है, घटित होना चाहिए । राज्य सरकार सरकारी आदेश द्वारा नियम 29 के परंतुक का अधिक्रमण नहीं कर सकती । यह ऐसे अधीनस्थ विधान का भाग है जिसकी सामान्यतः प्रशासनिक आदेश द्वारा अवहेलना नहीं की जा सकती ।

12. इस विशेष अपील के तथ्यों में, चार प्रत्यर्थी अध्यापकों की अधिवर्षिता की तारीखें क्रमशः 1 जून, 2015, 27 मई, 2015, 4 जून, 2015 और 30 जून, 2015 होंगी । इन सभी अध्यापकों ने नियम 29 के परंतुक का फायदा लिए बिना सामान्य अनुक्रम में 1 अप्रैल, 2015 से आरंभ हो रहे शैक्षिक सत्र 2015-16 में काम किया । चूंकि उनकी सेवानिवृत्ति की तारीखें शैक्षिक सत्र के मध्य में आती हैं इसलिए वे नियम 29 के परंतुक के अनुसार शैक्षिक सत्र की समाप्ति तक सुस्पष्टतः सेवा में

बने रहने के हकदार होंगे । सचिव, प्राथमिक शिक्षा, उत्तर प्रदेश सरकार जिसने 15 जून, 2015 को मुद्दे का विनिश्चय किया, स्पष्टतः नियम 29 के परंतुक के समादेश के प्रतिकूल मत व्यक्त किया है ।

13. इन कारणों से, सचिव, प्राथमिक शिक्षा द्वारा पारित तारीख 15 जून, 2015 का आदेश तद्नुसार अभिखंडित किया जाता है और अपास्त किया जाता है ।

14. हमने विधि के प्रश्न को सुलझाने की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए और यह सुनिश्चित करने के लिए कि राज्य द्वारा यथा अधिसूचित शैक्षिक सत्र में परिवर्तन के परिणामस्वरूप निश्चितता के उपाय स्थिर किए जाएं, इस प्रक्रम पर सहमति द्वारा अंतिम सुनवाई के लिए रिट याचिका पर विचार किया । उस दृष्टिकोण से, हमने 2015 की रिट याचिका सं. 3653 को सुनवाई और अंतिम निपटान के लिए विचार किया । चूंकि प्रत्यर्थियों (मूल याचियों) द्वारा फाइल रिट याचिका में कोई और मुद्दा शेष नहीं बचता इसलिए विशेष अपील और रिट याचिका दोनों इस निर्णय द्वारा शासित होंगे और तद्नुसार निपटाया जाता है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया जा रहा है ।

अपील खारिज की गई ।

पा.

जयन्ती देब दास (श्रीमती)

बनाम

मानस कुमार दास

तारीख 19 फरवरी, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति दीपक गुप्ता और न्यायमूर्ति यू. बी. शाह

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 (1955 का 25) – धारा 13(1)(क) – विवाह-विच्छेद – मानसिक क्रूरता – जहां पत्नी इसे पति के विरुद्ध अपनी भाभी से जारकर्म के गंभीर अभिकथन किए गए और जारकर्म का अभिकथन साबित नहीं हुआ वहां यह अभिकथन पति के प्रति मानसिक क्रूरता के समान है और पति मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने का हकदार है ।

प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी-पति श्री मानस कुमार दास ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(iक) के अधीन फाइल की गई अपनी अर्जी में अन्य बातों के साथ यह कथन किया था कि वर्ष 2004 में जब दोनों प्रत्यर्थी-पति (उस वाद का अर्जीदार) और अपीलार्थी-पत्नी (उस वाद की प्रत्यर्थी) त्रिपुरा सिविल सेवा परीक्षा में बैठने के लिए कोचिंग की पाठशाला में जाया करते थे, तब वहां एक-दूसरे से मिला करते थे और उनकी आपस में अच्छी जान-पहचान हो गई थी और समय के साथ-साथ उनकी यह जान-पहचान प्रेम में परिवर्तित हो गई और परिणामस्वरूप पति के शुभचिन्तकों द्वारा सलाह दिए जाने के बावजूद कि वह अपीलार्थी के साथ अपना संबंध न बनाए, प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया और परिणामस्वरूप तारीख 10 मई, 2005 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार उनका विवाह सम्पन्न हुआ । विवाह के समय, प्रत्यर्थी-पति अपने बड़े भाई रामरतन दास के मकान में रहता था जो जयनगर, मार्ग सं. 1, अगरतला में स्थित था । विवाह के ठीक एक मास के पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी और प्रत्यर्थी-पति उक्त रतन दास के मकान में जाकर रहने लगे । किंतु बड़े भाई के मकान में स्थानांतरित होने के ठीक पश्चात्, अपीलार्थी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह उसके बड़े भाई के मकान में नहीं रहेगी और उसी रात अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी से अपने मकान में जाकर रहने को कहा क्योंकि अपीलार्थी-पत्नी के पिता के मकान में पर्याप्त स्थान था । चूंकि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी द्वारा रखे गए इस प्रस्ताव से सहमत नहीं था,

इसलिए अपीलार्थी-पत्नी ने पति तथा पति के परिवार के सदस्यों के साथ सहयोग करना बंद कर दिया और प्रत्यर्थी के साथ गाली-गलौज करने लगी । ऐसी स्थिति में प्रत्यर्थी को अपीलार्थी के साथ श्री देबाशीष दत्त, जयनगर, अगरतला के मकान में किराए पर रहना पड़ा और तारीख 23 जून, 2005 से वर्ष 2007 के अप्रैल मास के मध्य तक दोनों प्रत्यर्थी और अपीलार्थी किराए के उक्त मकान में रहे किंतु उस अवधि के दौरान भी अपीलार्थी एक मास में औसतन 10 दिन से अधिक नहीं रहता था और मास के शेष 20 दिन पत्नी अपने पिता के मकान में रहती थी । यह भी अभिकथन किया गया है कि उस अवधि के दौरान, अपीलार्थी की अविवाहित बहिन अर्थात् श्रीमती जयश्री देब किराए के मकान में कम से कम एक दिन में दो बार मिलने आया करती थी और तभी अपीलार्थी किराए के मकान से अपनी बड़ी बहिन के साथ प्रत्यर्थी-पति को बताए बिना चली जाया करती थी और इस पर प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेप किए जाने पर, अपीलार्थी और उसकी बहिन प्रत्यर्थी-पति को गालियां दिया करती थीं । एक दिन जब पति अपने किराए के मकान पर कार्यालय से 6.00 बजे अपराह्न में वापस आया, उसने देखा कि अपीलार्थी पत्नी घर पर नहीं है । इसी दौरान 8.00 बजे अपराह्न में अपीलार्थी अपनी बड़ी बहिन के साथ वापस आई और जब प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी पत्नी से मालूम किया कि वह इस दौरान कहां थी, तब अपीलार्थी और उसकी बहिन प्रत्यर्थी-पति को गालियां देने लगीं और लगभग 12.00 बजे रात्रि में अपीलार्थी के पिता भी किराए के मकान पर आ गए और वे भी प्रत्यर्थी को बुरा-भला कहने लगे । केवल इतना ही नहीं, प्रत्यर्थी को अपीलार्थी के कहने पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार कराया गया यद्यपि, तत्पश्चात्, उसे छोड़ दिया गया और इसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी-पति पूर्णतया व्याकुल और मानसिक रूप से पीड़ित हो गया । अपीलार्थी-पत्नी ने अपने प्रथम कथन में अपने विरुद्ध किए गए सभी अभिकथनों से इनकार किया है किंतु उसके (पत्नी) लिखित कथन में यह अभिकथित है कि विवाह के पश्चात् उसके साथ शारीरिक और मानसिक यातना का व्यवहार किया गया था और इस घोर प्रपीड़न के कारण वह मानसिक संतुलन खो बैठी और उसे आई. जी. एम. अस्पताल में उपचार के लिए बाह्य रोगी के रूप में भर्ती होना पड़ा । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति के बड़े भाई की पत्नी, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच लड़ाई-झगड़े का कारण बनी हुई थी । केवल इतना ही नहीं प्रत्यर्थी-पति के अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ अवैध संबंध थे और इसके बावजूद अपीलार्थी-पत्नी ने अपने पति के साथ समझौता करने का प्रयास किया ।

यह भी अभिकथन किया गया है कि गर्भावस्था के अंतिम चरण में और प्रसव के समय पर भी प्रत्यर्थी-पति एक बार भी अपनी पत्नी से मिलने नहीं आया और जब अपीलार्थी-पत्नी प्रसव के पश्चात् अपने वैवाहिक गृह पर आई तब उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उसे वहां रहने नहीं दिया गया जिसके परिणामस्वरूप उसे अपनी जीविका के लिए अपने माता-पिता के यहां रहना पड़ा । अधिवक्ता होने के बावजूद वह अपने नवजात शिशु के साथ व्यस्त होने के कारण धनार्जन का कोई कार्य नहीं कर सकती थी । प्रत्यर्थी-पति आई. सी. डी. एस. सर्वेक्षक था और उसकी आय 18,000/- रुपए प्रतिमास थी और उसने अपनी पत्नी या अपनी पुत्री के अनुरक्षण के लिए कोई कार्य नहीं किया । प्रत्यर्थी-पति ने अर्जीदार-साक्षी 1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई है और एक अन्य साक्षी श्री माले चक्राबोर्ती की परीक्षा अर्जीदार-साक्षी 2 के रूप में कराई गई है । दूसरी ओर अपीलार्थी-पत्नी ने अपने सहित 7 साक्षियों की परीक्षा कराई है । विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में साक्ष्य पर चर्चा करने के पश्चात् मुद्दा सं. (II) को विनिश्चित किया है और परिणामस्वरूप वाद में डिक्री पारित की है । इस प्रकार इस आदेश के विरुद्ध यह अपील की गई है । उच्च न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – धारा 13(1)(ia) में मानसिक क्रूरता को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है कि यह एक ऐसा आचरण है जिससे दूसरे पक्षकार को ऐसी मानसिक पीड़ा और वेदना होती है जिससे उस पक्षकार का जीवन दूसरे पक्षकार के साथ व्यतीत करना संभव नहीं रह जाता । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, कि मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि पक्षकारों के एक साथ रहने की प्रत्याशा युक्तियुक्त रूप से न की जा सके । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि जिस पक्षकार के साथ दुर्व्यवहार किया गया है उससे युक्तियुक्त रूप से यह न कहा जा सके कि वह अन्य पक्षकार के साथ जीवन व्यतीत करे । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता ऐसी होनी चाहिए कि अर्जीदार के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो । ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच कर पक्षकारों के सामाजिक और शैक्षणिक स्तर को ध्यान में रखना चाहिए और उस समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए जिसमें वह दोनों रहते हैं और यदि दोनों पक्षकार अलग-अलग रहते हैं तब उनके साथ-साथ रहने की संभावना को ध्यान में रखना चाहिए और उन सभी सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या संभव नहीं है और क्या वांछनीय नहीं है । एक मामले में

कोई कृत्य "क्रूरता" है तो यह संभव नहीं कि वही कृत्य एक अन्य मामले में "क्रूरता" की कोटि में आए । प्रत्येक मामले में "क्रूरता" को उसके तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तय करना चाहिए । यदि मामले में अभियोग और अभिकथन किए गए हैं तब इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वे किस संदर्भ में किए गए हैं । इसमें इसके ऊपर अनुध्यात सिद्धांतों के आधार पर अब हम इस पर विचार करें कि क्या पत्नी के लिखित कथन में उसके द्वारा किए गए अभिकथन और अर्जीदार से, पत्नी के काउंसेल द्वारा प्रतिरक्षा में पूछे गए प्रश्न उक्त उपखंड के अर्थांतर्गत "मानसिक क्रूरता" की कोटि में आते हैं ? लिखित कथन का सुसंगत भाग पहले ही इसमें इसके पूर्व उल्लिखित किया गया है । हमने उक्त पैरा में न्यायालय में प्रत्यर्थी के काउंसेल द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण का उल्लेख उक्त पैरा में कर दिया है जिसमें अर्जीदार की प्रतिपरीक्षा के दौरान उससे पूछे गए प्रश्नों के संबंध में स्पष्टीकरण दिया गया है । यह सत्य है कि उक्त प्रकथन उस संदर्भ में किए जाने चाहिए जिनमें वे किए गए थे । साथ ही यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पत्नी केवल अपने चरित्र पर लगाए गए अभिकथनों और आक्षेपों से प्रतिरक्षा कर रही थी । पत्नी के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह इस सीमा के बाहर जाए और यह अभिकथन करे कि अर्जीदार मानसिक रोगी है, और यह कि वह एक सामान्य पुरुष नहीं है, और यह कि उसको मनोवैज्ञानिक उपचार की आवश्यकता है ताकि उसका मानसिक रोग दूर हो जाए, और यह कि वह मानसिक-उन्माद और मतिविभ्रम से ग्रसित है और पत्नी के लिए यह भी आवश्यक नहीं था कि वह यह अभिकथन करे कि अर्जीदार और उसके परिवार के सभी सदस्य हतबुद्धि हैं । ऐसा नहीं है कि इन शब्दों का प्रयोग क्रोध में या भावनाओं के दबाव में किया गया था । इन शब्दों का प्रयोग न्यायालय में फाइल किए गए औपचारिक अभिवाक् में किया गया था और इस संबंध में पत्नी के काउंसेल द्वारा पत्नी के कहने पर पति से प्रश्न पूछे गए थे । यहां तक कि पत्नी के अतिरिक्त लिखित कथन में उसने अपने उस अधिकार की पुष्टि की है कि वह उस पर लगाए गए काल्पनिक और निराधार अभिकथनों के विरुद्ध तथ्यों का सही वर्णन कर सकती है । यह एक आहत पत्नी की मात्र प्रत्यावर्तियां नहीं हैं अपितु यह पति के मानसिक असंतुलन और हतबुद्धि के सकारात्मक प्रकथन हैं । पति इस न्यायालय तथा उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय करने वाला एक अधिवक्ता है । विवाह-विच्छेद की अर्जी का विचारण दिल्ली उच्च न्यायालय में ही किया गया है । अभिवाक् में ऐसे अभिकथन करने और पति से साक्षी कठघरे में ऐसे प्रश्न

पूछने से स्वाभाविक रूप से पति की भविष्योन्नति और व्यवसायी पहलुओं पर दुष्प्रभाव पड़ने के अतिरिक्त उसे मानसिक पीड़ा और क्षोभ हो सकता है । ऐसा नहीं है कि प्रत्यर्थी इन प्रकथनों के आधार पर अनुतोष की ईप्सा कर रही है । पत्नी के विरुद्ध किए गए अभिकथन सत्य नहीं हो सकते, यह भी सत्य नहीं हो सकता कि अर्जीदार अत्यंत संदिग्ध चरित्र वाला है और यह कि वह हर बात को अपनी पत्नी के विरुद्ध समझता है । किंतु इस आधार पर यह कहना कि अर्जीदार का अपना सामान्य मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ गया है, यह कि वह मानसिक रोगी है जिसे उपचार के लिए किसी मानसिक रोग विशेषज्ञ की आवश्यकता है और इन सब बातों के बाद उसे और उसके दादा सहित परिवार के सभी सदस्यों को हतबुद्धि कहना पत्नी द्वारा युक्तियुक्त रूप से ली गई प्रतिरक्षा की सीमा के बाहर है । यह उल्लेखनीय है कि पत्नी के लिखित कथन में उसके द्वारा किए गए अभिकथन धारा 13 की उपधारा (1), खंड (iii) के स्पष्टीकरण के अर्थान्तर्गत मानसिक विकृति या अन्य किसी विकृति की कोटि में आते हैं, यद्यपि पत्नी ने यह कथन नहीं किया है कि उससे युक्तियुक्त रूप से इस आधार पर यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि वह अर्जीदार पति के साथ नहीं रह सकती और न ही पत्नी ने इस आधार पर कोई अनुतोष पाने का दावा किया है । इसके बावजूद "मानसिक उन्माद", "मानसिक रोगी", "सामान्य व्यक्ति बनने लिए मानसिक रोग के उपचार की आवश्यकता" जैसे अभिकथनों के साथ यह भी अभिकथन किया गया है कि अर्जीदार और उसके परिवार के सभी सदस्य मानसिक रोगी हैं और उसका सम्पूर्ण परिवार हतबुद्धि से ग्रसित है । इन प्रकथनों से ऐसी मानसिक क्रूरता गठित होती है कि अर्जीदार से, सभी सुसंगत परिस्थितियों के संदर्भ में, युक्तियुक्त रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि वह तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ जीवन बिताए । इस मामले में अर्जीदार की हैसियत से पति के लिए यह कहना न्यायोचित होगा कि उसके लिए उक्त अभिकथनों को दृष्टिगत करते हुए पत्नी के साथ रहना संभव नहीं है । इससे अन्यथा भी इस मामले के विशेष तथ्यों से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने जानबूझकर ऐसा दर्शाया है जो पूर्णतया अस्वभाविक और किसी युक्तियुक्त व्यक्ति की समझ के बाहर है । उसे असाध्य व्यभिचारिणी के रूप में दर्शाया गया है । वह इस बात से पूर्णतया अवगत थी कि विवाह जीवनपर्यन्त होता है । उसका यह पक्षकथन है कि अर्जीदार वंशागत रूप से हतबुद्धि से ग्रसित है । इस सबके बावजूद पत्नी ने यह कथन किया है कि वह अर्जीदार पति के साथ रहना

चाहती है । इससे स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसने अपने तथा अर्जीदार के जीवन को मात्र नरक बनाने के लिए यह मार्ग अपनाया है । इस मामले के तथ्यों के संदर्भ में इतने कठोर व्यवहार से हमारे मन में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपने पति के साथ मानसिक क्रूरता को कारित करने पर आनत है । यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि पक्षकारों के बीच हुआ विवाह असाध्य रूप से समाप्त हो गया है और उनके पुनः विवाह-बंधन में बने रहने या एक साथ रहने की कोई गुंजाइश नहीं है । इस मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि पक्षकारों के बीच हुआ विवाह, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अधीन विघटित होना चाहिए और तद्नुसार हम ऐसा करते हैं । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पिछले 8 वर्षों में व्यतीत किए गए जीवनकाल को ध्यान रखते हुए हमारा यह मत है कि इस मामले का निस्तार करने के लिए लगाए गए प्रक्रियात्मक आक्षेपों को समाप्त करने हेतु एक उचित मामला है । उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए उपरोक्त विनिश्चयों को दृष्टिगत करते हुए यह कहा जा सकता है कि पति या पत्नी द्वारा अपने जीवन-साथी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाना शारीरिक क्रूरता की कोटि में नहीं अपितु मानसिक क्रूरता की कोटि में आएगा । इस बात में कोई संदेह नहीं है कि किसी भी कारण से किराए के मकान में जाकर रहने के लिए कहना मानसिक क्रूरता नहीं हो सकता । स्वीकृततः वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी ने अपने लिखित कथन में प्रत्यर्थी के बड़े भाई के पत्नी के साथ विवाहेतर संबंधों के बारे में अभिकथन किया है किंतु यह साबित नहीं किया जा सका है । ऐसा अभिकथन गंभीर प्रकृति का है, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब हमारे समाज में बड़े भाई की पत्नी को बोदी/भाभी कहा जाता हो और उसे माता समान माना जाता हो । जारकर्म किए जाने के संबंध में अपीलार्थी-पत्नी द्वारा किया गया अभिकथन साबित नहीं किया जा सका जोकि पति के साथ की गई मानसिक क्रूरता के सिवाय कुछ नहीं है । जारकर्म किए जाने का निराधार अभिकथन करना बहुत सरल है किंतु इसे सिद्ध करना कठिन है । उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह मत है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने में कोई गलती नहीं की है और इस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि उसके साथ मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया गया है । विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करते समय

उन्होंने प्रत्यर्थी-पति को यह निदेश दिया था कि वह तारीख 1 फरवरी, 2012 से अपनी पुत्री को 4,000/- रुपए प्रतिमास भरणपोषण भत्ते के रूप में संदत्त करेगा और 4,000/- रुपए की यह रकम अपीलार्थी को अंग्रेजी कैलेंडर के प्रत्येक मास की 10 तारीख तक उसके बचत खाते में जमा कराएगा । अतः, यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने दंपत्तियों की अप्राप्तवय पुत्री के भरणपोषण के संबंध में विचार नहीं किया । प्रत्यर्थी-पति विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए भरणपोषण के आदेश का अनुपालन उसके एक-एक शब्द को ध्यान में रखते हुए करेगा । इस प्रकार, हमारे लिए आवश्यक नहीं है कि हम विद्वान् कुटुम्ब न्यायाधीश के आदेश में हस्तक्षेप करें । (पैरा 21, 24 और 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2007]	ए. आई. आर. 2007 (एन. ओ. सी.) 2272 : **हरीश चन्दर द्राल** बनाम **सुरेश वाटी** ;	17
[2002]	(2002) 5 एस. सी. सी. 706 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582 : **परवीन मेहता** बनाम **इंदरजीत मेहता** ;	23
[2002]	(2002) 2 एस. सी. सी. 73 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 59 : **सावित्री पांडे** बनाम **प्रेम चंद्र पांडे** ;	22
[1994]	(1994) 1 एस. सी. सी. 337 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710 : **वी. भगत** बनाम **डी. भगत** ;	18, 21
[1975]	ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534 : **डा. एन. जी. दस्ताने** बनाम **श्रीमती एस. दस्ताने ।**	17

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2012 की अपील सं. 2.

2008 के टी. एस. (विवाह-विच्छेद) मामला सं. 191 में विद्वान् न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, अगरतला, पश्चिमी त्रिपुरा द्वारा तारीख 27 जनवरी, 2012 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डी. आर. चौधरी और डी. डेब

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री डी. चक्रबोर्ती (ज्येष्ठ अधिवक्ता) और एच. लस्कर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति यू. बी. शाह ने दिया ।

न्या. शाह – यह अपील 2008 के टी. एस. (विवाह-विच्छेद) मामला सं. 191 में विद्वान् न्यायाधीश, कुटुम्ब न्यायालय, अगरतला, पश्चिमी त्रिपुरा द्वारा तारीख 27 जनवरी, 2012 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा और जिसके अंतर्गत विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने वाद मंजूर करते हुए पक्षकारों के बीच क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर की थी ।

2. अपीलार्थी और प्रत्यर्थी क्रमशः पत्नी और पति हैं । प्रत्यर्थी-पति ने हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13(1)(ik) के अधीन विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल की थी । विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने सम्मिलित रूप से कार्यवाही करते हुए हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13 के अधीन पक्षकारों के बीच विवाह-विच्छेद का आदेश पारित किया । पक्षकारों के बीच विवाह तारीख 10 मई, 2005 को वैदिक रीति-रिवाज के अनुसार अपीलार्थी के अरुंधुतिनगर, मार्ग सं. 1, अगरतला, पश्चिमी त्रिपुरा स्थित मकान में संपन्न हुआ था । कुटुम्ब न्यायालय के उपरोक्त निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी ने इस आधार पर वर्तमान अपील फाइल की है कि अपीलार्थी-पत्नी ने पर्याप्त रूप से प्रत्यर्थी-पति द्वारा कारित किए गए मानसिक और शारीरिक प्रपीड़न को साबित किया है जो उसके पति ने उस पर इसलिए किया था कि वह पति के बड़े भाई के मकान में रहना नहीं चाहती थी । अपीलार्थी ने यह भी कथन किया है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने उसके द्वारा पति पर की गई क्रूरता के संबंध में गलत निष्कर्ष निकाला है, क्योंकि पति ने इस संबंध में कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है ।

3. इस अपील का निपटारा करने के लिए संक्षिप्त तथ्य निम्न प्रकार हैं :–

> "प्रत्यर्थी-पति श्री मानस कुमार दास ने हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अधीन फाइल की गई अपनी अर्जी में अन्य बातों के साथ यह कथन किया था कि वर्ष 2004 में जब दोनों प्रत्यर्थी-पति (उस वाद का अर्जीदार) और अपीलार्थी-पत्नी (उस वाद की प्रत्यर्थी) त्रिपुरा सिविल सेवा परीक्षा में बैठने के लिए कोचिंग की

पाठशाला में जाया करते थे, तब वहां एक-दूसरे से मिला करते थे और उनकी आपस में अच्छी जान-पहचान हो गई थी और समय के साथ-साथ उनकी यह जान-पहचान प्रेम में परिवर्तित हो गई और परिणामस्वरूप पति के शुभचिन्तकों द्वारा सलाह दिए जाने के बावजूद कि वह अपीलार्थी के साथ अपना संबंध न बनाए, प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया और परिणामस्वरूप तारीख 10 मई, 2005 को हिन्दू रीति-रिवाज के अनुसार उनका विवाह सम्पन्न हुआ । विवाह के समय, प्रत्यर्थी-पति अपने बड़े भाई रामरतन दास के मकान में रहता था जो जयनगर, मार्ग सं. 1, अगरतला में स्थित था । विवाह के ठीक एक मास के पश्चात् अपीलार्थी-पत्नी और प्रत्यर्थी-पति उक्त रतन दास के मकान में जाकर रहने लगे । किंतु बड़े भाई के मकान में स्थानांतरित होने के ठीक पश्चात्, अपीलार्थी ने स्पष्ट रूप से कहा कि वह उसके बड़े भाई के मकान में नहीं रहेगी और उसी रात अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी से अपने मकान में जाकर रहने को कहा क्योंकि अपीलार्थी-पत्नी के पिता के मकान में पर्याप्त स्थान था । चूंकि प्रत्यर्थी, अपीलार्थी द्वारा रखे गए इस प्रस्ताव से सहमत नहीं था, इसलिए अपीलार्थी-पत्नी ने पति तथा पति के परिवार के सदस्यों के साथ सहयोग करना बंद कर दिया और प्रत्यर्थी के साथ गाली-गलौज करने लगी । ऐसी स्थिति में प्रत्यर्थी को अपीलार्थी के साथ श्री देबाशीष दत्त, जयनगर, अगरतला के मकान में किराए पर रहना पड़ा और तारीख 23 जून, 2005 से वर्ष 2007 के अप्रैल मास के मध्य तक दोनों प्रत्यर्थी और अपीलार्थी किराए के उक्त मकान में रहे किंतु उस अवधि के दौरान भी अपीलार्थी एक मास में औसतन 10 दिन से अधिक नहीं रहता था और मास के शेष 20 दिन पत्नी अपने पिता के मकान में रहती थी ।'

4. यह भी अभिकथन किया गया है कि उस अवधि के दौरान, अपीलार्थी की अविवाहित बहिन अर्थात् श्रीमती जयश्री देब किराए के मकान में कम से कम एक दिन में दो बार मिलने आया करती थी और तभी अपीलार्थी किराए के मकान से अपनी बड़ी बहिन के साथ प्रत्यर्थी-पति को बताए बिना चली जाया करती थी और इस पर प्रत्यर्थी द्वारा आक्षेप किए जाने पर, अपीलार्थी और उसकी बहिन प्रत्यर्थी-पति को गालियां दिया करती थीं । एक दिन जब पति अपने किराए के मकान पर कार्यालय से 6.00 बजे अपराह्न में वापस आया, उसने देखा कि अपीलार्थी पत्नी घर

पर नहीं है । इसी दौरान 8.00 बजे अपराह्न में अपीलार्थी अपनी बड़ी बहिन के साथ वापस आई और जब प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी पत्नी से मालूम किया कि वह इस दौरान कहां थी, तब अपीलार्थी और उसकी बहिन प्रत्यर्थी-पति को गालियां देने लगीं और लगभग 12.00 बजे रात्रि में अपीलार्थी के पिता भी किराए के मकान पर आ गए और वे भी प्रत्यर्थी को बुरा-भला कहने लगे । केवल इतना ही नहीं, प्रत्यर्थी को अपीलार्थी के कहने पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार कराया गया यद्यपि, तत्पश्चात्, उसे छोड़ दिया गया और इसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी-पति पूर्णतया व्याकुल और मानसिक रूप से पीड़ित हो गया ।

5. प्रत्यर्थी का यह भी पक्षकथन है कि इस दौरान अपीलार्थी ने अपनी बहिन की सहायता से इधर-उधर आया-जाया करती थी और प्रत्यर्थी का आदर नहीं करती थी और अपनी बड़ी बहिन के नाम में रजिस्ट्रीकृत मोबाइल फोन का प्रयोग किया करती थी और उसी मोबाइल फोन से वह अन्य किसी व्यक्ति से बात किया करती थी और कई बार जब फोन की घंटी बजती थी और प्रत्यर्थी-पति कॉल प्राप्त करने का प्रयास करता था, तब दूसरी ओर से कोई उत्तर नहीं मिलता था और ऐसी तनावपूर्ण मानसिक स्थिति में वह अक्तूबर, 2006 में पत्नी, उसकी बहिन और पिता के दुर्व्यवहार से बचने के लिए वह अगरतला से चला गया और तेलियामुरा में रहने लगा जहां पर वह अपना काम-काज करता था ।

6. परिणामस्वरूप, अपीलार्थी के कहने पर प्रत्यर्थी अगरतला में अपने किराए के मकान में वापस आ गया किंतु वर्ष 2007 के अप्रैल के मास के मध्य में अपीलार्थी ने किराए का मकान छोड़ दिया और वह स्थायी रूप से अपने पिता के मकान में रहने लगी । इसी दौरान, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के यहां तारीख 30 जुलाई, 2007 को एक बच्ची ने जन्म लिया । प्रत्यर्थी-पति ने अपनी अर्जी में यह भी कथन किया है कि एक दिन जब वह सीकरकोट, पुलिस थाना अमतली स्थित अपने पिता के घर गया था और किराए के मकान पर वापस आ रहा था तब रास्ते में वह अपीलार्थी के पिता के मकान पर गया किंतु उसे देखकर अपीलार्थी के पिता और बड़ी बहिन उसे भद्दी-भद्दी गालियां देने लगे जिनका प्रयोग कोई भद्र व्यक्ति कर ही नहीं सकता, प्रत्यर्थी के पास अपने सम्मान की रक्षा के लिए वहां से भाग जाने के सिवाय कोई विकल्प नहीं था ।

7. यह भी कथन किया गया है कि अपीलार्थी-पत्नी प्रत्यर्थी को

भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 498क के अधीन मामला दर्ज कराने और उसे जेल भेजने की धमकी निरंतर रूप से देती रहती थी क्योंकि वह एक अधिवक्ता है और उसके पुलिस अधिकारियों से भी अच्छे संबंध हैं और अपीलार्थी ने प्रत्यर्थी-पति से यह भी कहा था कि उसे जेल पहुंचाने के लिए एक फोन-कॉल करना ही पर्याप्त है । ऐसी निरंतर मानसिक यातना के दौरान, प्रत्यर्थी-पति ने यह निष्कर्ष निकाला कि अपीलार्थी के साथ उसके पति के रूप में रहना संभव नहीं है और ऐसी स्थिति में उसने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री प्राप्त करने के लिए अर्जी फाइल की ।

8. अपीलार्थी-पत्नी ने अपने प्रथम कथन में अपने विरुद्ध किए गए सभी अभिकथनों से इनकार किया है किंतु उसके (पत्नी) लिखित कथन में यह अभिकथित है कि विवाह के पश्चात् उसके साथ शारीरिक और मानसिक यातना का व्यवहार किया गया था और इस घोर प्रपीड़न के कारण वह मानसिक संतुलन खो बैठी और उसे आई. जी. एम. अस्पताल में उपचार के लिए बाह्य रोगी के रूप में भर्ती होना पड़ा । यह भी अभिकथन किया गया है कि प्रत्यर्थी-पति के बड़े भाई की पत्नी, अपीलार्थी और प्रत्यर्थी के बीच लड़ाई-झगड़े का कारण बनी हुई थी । केवल इतना ही नहीं प्रत्यर्थी-पति के अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ अवैध संबंध थे और इसके बावजूद अपीलार्थी-पत्नी ने अपने पति के साथ समझौता करने का प्रयास किया । यह भी अभिकथन किया गया है कि गर्भावस्था के अंतिम चरण में और प्रसव के समय पर भी प्रत्यर्थी-पति एक बार भी अपनी पत्नी से मिलने नहीं आया और जब अपीलार्थी-पत्नी प्रसव के पश्चात् अपने वैवाहिक गृह पर आई तब उसके साथ दुर्व्यवहार किया गया और उसे वहां रहने नहीं दिया गया जिसके परिणामस्वरूप उसे अपनी जीविका के लिए अपने माता-पिता के यहां रहना पड़ा । अधिवक्ता होने के बावजूद वह अपने नवजात शिशु के साथ व्यस्त होने के कारण धनार्जन का कोई कार्य नहीं कर सकती थी । प्रत्यर्थी-पति आई. सी. डी. एस. सर्वेक्षक था और उसकी आय 18,000/- रुपए प्रतिमास थी और उसने अपनी पत्नी या अपनी पुत्री के अनुरक्षण के लिए कोई कार्य नहीं किया ।

9. विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने अर्जी तथा लिखित कथन में किए गए प्रतिवादों पर विचार करते हुए तीन मुद्दे विरचित किए जो निम्न प्रकार हैं :–

> "(i) क्या यह अर्जी अपने वर्तमान प्ररूप और प्रकृति में चलने योग्य है ?

(ii) क्या विवाह के पश्चात्, प्रत्यर्थी-पत्नी, उसकी बहिन और पिता द्वारा अर्जीदार-पति को कई प्रकार से मानसिक यातना दी गई थी जिसके कारण उसे कुछ दिन के लिए प्रत्यर्थी-पत्नी के अत्याचार से बचने के लिए तेलियामुरा में, जहां पर वह कार्य करता था, जाकर रहना पड़ा और इसके पश्चात् क्या प्रत्यर्थी-पत्नी ने अपना वैवाहिक गृह अर्थात् किराए का मकान अप्रैल, 2007 में बिना किसी कारण के स्थायी रूप से छोड़ दिया था या विवाह के पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ पति द्वारा अर्जीदार-पति के बड़े भाई की पत्नी से प्रभावित होकर मानसिक और शारीरिक रूप से यातनापूर्ण व्यवहार किया गया था जिसके कारण प्रत्यर्थी-पत्नी को वर्ष 2007 के अप्रैल मास के मध्य में ही अपने माता-पिता के घर आकर रहना पड़ा ?

(iii) क्या अर्जीदार-पति उसके द्वारा की गई प्रार्थना के अनुसार विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है ?"

10. प्रत्यर्थी-पति ने अर्जीदार-साक्षी 1 के रूप में अपनी परीक्षा कराई है और एक अन्य साक्षी श्री माले चक्राबोर्ती की परीक्षा अर्जीदार-साक्षी 2 के रूप में कराई गई है । दूसरी ओर अपीलार्थी-पत्नी ने अपने सहित 7 साक्षियों की परीक्षा कराई है । विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने प्रत्यर्थी-पति के पक्ष में साक्ष्य पर चर्चा करने के पश्चात् मुद्दा सं. (II) को विनिश्चित किया है और परिणामस्वरूप वाद में डिक्री पारित की है । इस प्रकार इस आदेश के विरुद्ध यह अपील की गई है ।

11. मुद्दा सं. (II) और (III) क्रूरता और मिथ्या अभिकथन से संबंधित है जो प्रत्यर्थी के विरुद्ध अपीलार्थी-पत्नी द्वारा किए गए हैं । विवाह-विच्छेद की अर्जी प्राथमिक रूप से मानसिक क्रूरता के आधार पर फाइल की गई थी । पक्षकारों द्वारा साक्ष्य प्रस्तुत किया गया, प्रत्यर्थी-पति (अर्जीदार-साक्षी 1) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि अपीलार्थी द्वारा उसके साथ दुर्व्यवहार किया जाता था और चूंकि उसकी पत्नी ने प्रत्यर्थी के बड़े भाई के मकान में रहना पसंद नहीं किया था और जब प्रत्यर्थी ने इस पर आपत्ति की तो पत्नी ने सभी मामलों में प्रत्यर्थी-पति के साथ सहयोग करना बंद कर दिया जिसके परिणामस्वरूप प्रत्यर्थी-पति को किराए के मकान में जाकर रहना पड़ा और किराए के मकान में भी अपीलार्थी-पत्नी एक मास में 10 दिन से अधिक नहीं रहती थी । प्रत्यर्थी-पति ने, अपीलार्थी-पत्नी द्वारा किए गए इन अभिकथनों से इनकार किया है कि पति उस पर अत्याचार करता था और पति ने इस अभिकथन से भी

इनकार किया है कि उसके बड़े भाई की पत्नी के साथ उसके (प्रत्यर्थी-पति) अवैध संबंध थे जिसको कि प्रत्यर्थी-पति अपनी माता के समान समझता था । प्रत्यर्थी-पति ने यह अभिकथन किया है कि यह बात पूर्णतया मिथ्या है कि उसने अपनी पत्नी के प्रसव के पश्चात् पत्नी और पुत्री को किराए के मकान में आने से मना कर दिया था जबकि वास्तविकता यह है कि पत्नी स्वयं किराए के मकान में नहीं आई थी और वह अपना जीवन अपनी इच्छानुसार बिता रही थी । प्रत्यर्थी-पति ने यह भी कथन किया है कि निरंतर दी गई मानसिक यातना के कारण उसने क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री के लिए प्रार्थना की थी ।

12. श्री माले चक्राबोर्ती (अर्जीदार-साक्षी 2) ने अपने साक्ष्य में यह कथन किया है कि प्रत्यर्थी-पति के बड़े भाई श्री रतन दास को अच्छी तरह जानता है और उसका मकान श्री रतन दास के मकान के निकट है । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि सितंबर, 2006 के मध्य में उसे श्री चन्दन मजूमदार द्वारा यह सूचना दी गई कि प्रत्यर्थी को अपीलार्थी-पत्नी के कहने पर पुलिस द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया है और तद्नुसार वह चन्दन मजूमदार के साथ पश्चिमी अगरतला के पुलिस थाने गया जहां पर उसने देखा कि प्रत्यर्थी-पति पुलिस थाने में बैठा हुआ है और अपीलार्थी-पत्नी, उसकी बड़ी बहिन और उसका पिता अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर प्रत्यर्थी-पति को भद्दी-भद्दी गालियां दे रहे थे और उन सभी ने उसे हवालात में बंद कराने का प्रयास किया किंतु पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी ने अपीलार्थी-पत्नी और उसके साथ आए व्यक्तियों को शांत करने का प्रयास किया । इस साक्षी ने यह भी कथन किया है कि उनके निवेदन पर बाद में प्रत्यर्थी-पति को पुलिस थाने से लगभग 2.30 बजे रात्रि में छोड़ दिया गया ।

13. अपीलार्थी-पत्नी ने प्रतिरक्षा साक्षी 1 के रूप में अपनी प्रतिरक्षा में प्रत्यर्थी-पति द्वारा किए गए अभिकथन से इनकार किया है तथा प्रत्यर्थी-पति के अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ अवैध संबंध का उल्लेख किया है जिसके कारण वे सुखद वैवाहिक जीवन व्यतीत नहीं कर रहे थे । पत्नी ने यह भी कथन किया है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा उस पर अत्यंत अत्याचार किए जाने के बावजूद वह अपने पति के साथ रहना चाहती थी ।

14. अपीलार्थी के पिता श्री दुर्गा राम देब (प्रतिरक्षा साक्षी 2) ने यद्यपि अपने साक्ष्य में प्रत्यर्थी के अपनी साली के साथ अवैध संबंधों का उल्लेख किया है, अपनी प्रतिपरीक्षा में इस साक्षी ने विशेष रूप से यह कथन किया

है कि उसने कभी भी यह नहीं देखा था कि प्रत्यर्थी-पति अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ किसी भी प्रकार का गलत संबंध बनाए हुए है किंतु अवैध संबंधों के बारे में उसे उसकी पुत्री द्वारा बताया गया था ।

15. श्री मंजू चक्राबोर्ती (प्रतिरक्षा साक्षी 4) श्रीमती नमिता अचर्जी (प्रतिरक्षा साक्षी 5) और श्रीमती मनी बाला दास (प्रतिरक्षा साक्षी 6) ने यह कथन किया है कि उन्हें प्रत्यर्थी-पति द्वारा अपीलार्थी-पत्नी के साथ यातनापूर्ण व्यवहार किए जाने के संबंध में केवल तब जानकारी मिली थी जब अपीलार्थी-पत्नी ने उन्हें बताया था ।

16. श्रीमती हेमन्ता बाला बिस्वास (प्रतिरक्षा साक्षी 7), ने जो अपीलार्थी के पिता के घर में घरेलू नौकरानी का कार्य करती थी, अपने मुख्य शपथपत्र में यह कथन किया है कि एक दिन जब वह जयनगर स्थित प्रत्यर्थी-पति के किराए के मकान पर टिफिन-बाक्स लेकर गई थी तब उसने प्रत्यर्थी-पति और एक महिला को एक ही बिस्तर पर देखा और इस साक्षी ने अपनी प्रतिपरीक्षा में विशेष रूप से यह कथन किया है कि मैं यह नहीं बता सकती कि मैंने अपने मुख्य परीक्षा शपथपत्र में क्या लिखा है । केवल इतना ही नहीं, अभिलेख से यह प्रतीत होता है कि यह साक्षी अशिक्षित है और उसने उस शपथपत्र पर अपने अंगूठे की छाप लगाई है जो अंग्रेजी भाषा में लिखा हुआ है और इस शपथपत्र में ऐसी कोई बात लिखी हुई नहीं है क्योंकि शपथपत्र की अंतर्वस्तु उसे पढ़कर सुनाई गई है । ऐसी स्थिति में, जहां तक जारकर्म का अभिकथन किए जाने का संबंध है, इस साक्षी के साक्ष्य का अवलंब लेना अत्यंत कठिन है ।

17. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री चौधरी ने विवाह-विच्छेद की डिक्री अपास्त करने के लिए यह दलील दी कि किराए के मकान के मालिक श्री देबाशीष दत्त को साक्षी के रूप में प्रस्तुत नहीं किया गया है और इतना ही नहीं प्रत्यर्थी द्वारा क्रूरता के संबंध में जो अभिकथन किया गया है, वह भी साबित नहीं किया गया है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि प्रत्यर्थी-पति द्वारा किया गया यह अभिकथन कि अपीलार्थी-पत्नी ने उस पर दबाव डाला था कि वह किराए के मकान में स्थानांतरित हो जाए, क्रूरता नहीं माना जा सकता और अपीलार्थी-पत्नी के विद्वान् काउंसेल ने अपनी दलील के समर्थन में दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा **हरीश चन्दर द्राल** बनाम **सुरेश वाटी**[1] वाले मामले में किए गए विनिश्चय

[1] ए. आई. आर. 2007 (एन. ओ. सी.) 2272.

का अवलंब लिया है जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि पति द्वारा किया गया यह अभिकथन कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने पति पर अलग मकान का प्रबंध करने के लिए दबाव डाला था और यह कि उसने पड़ोसियों की मौजूदगी में पति के साथ दुर्व्यवहार किया था और पति के विरुद्ध आपराधिक मामला भी दर्ज कराया गया था, क्रूरता की कोटि में नहीं आता । काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि क्रूरता का मात्र अभिकथन किया जाना विवाह-विच्छेद का आधार नहीं बन सकता जब तक कि क्रूरता साबित न कर दी जाए । वर्तमान मामले में, प्रत्यर्थी-पति ने यद्यपि अपनी अर्जी में क्रूरता से संबंधित कुछ अभिकथन किए हैं किंतु वह उन अभिकथनों को साबित करने में असफल रहा है और धारा 10(i)(ख) के अधीन क्रूरता साबित करने के लिए उस व्यक्ति द्वारा साक्ष्य दिया जाना चाहिए जिसने यह अभिकथन किया है कि अपीलार्थी-पत्नी द्वारा उसके स्वास्थ्य, गरिमा और उसके सेवा संबंधी भविष्योन्नति को आघात पहुंचा है किंतु ऐसा साक्ष्य नहीं दिया गया है । अपनी उपर्युक्त दलील के समर्थन में, विद्वान् काउंसेल ने **डा. एन. जी. दस्ताने** बनाम **श्रीमती एस. दस्ताने**[1] वाले मामले के पैरा 30 और 31 का अवलंब लिया है जो निम्न प्रकार है :–

> "30. हमारे अपने देश की विधि का निर्वचन करने के लिए विदेशी न्यायालयों के विनिश्चयों से अवगत होना लाभप्रद है । किंतु यह ध्यान में रखना चाहिए कि हमें इस मामले में एक विशेष अधिनियमिति के विशेष उपबंध अर्थात् अधिनियम की धारा 10(1)(ख) का निर्वचन करना होगा । क्रूरता जिन बातों से गठित होती है वे इस कानून के निबंधनों पर आधारित होनी चाहिए जिनके अंतर्गत यह उपबंध किया गया है –
>
> > 10(1) विवाह का कोई पक्षकार, चाहे वह विवाह इस अधिनियम के प्रारंभ के पूर्व या पश्चात् अनुष्ठापित हुआ हो, धारा 13 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर और पत्नी की दशा में उक्त धारा की उपधारा (2) में विनिर्दिष्ट किसी आधार पर भी, जिस पर विवाह-विच्छेद के लिए अर्जी पेश की जा सकती थी, न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए प्रार्थना करते हुए अर्जी पेश कर सकेगा ।
> >
> > (2) जहां कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित हो गई

[1] ए. आई. आर. 1975 एस. सी. 1534.

हो, वहां अर्जीदार पर इस बात की बाध्यता न होगी कि वह प्रत्यर्थी के साथ सहवास करे, किंतु दोनों पक्षकारों में से किसी के भी अर्जी द्वारा आवेदन करने पर तथा ऐसी अर्जी में किए गए कथनों की सत्यता के बारे में अपना समाधान हो जाने पर न्यायालय, यदि वह ऐसा करना न्यायसंगत और युक्तियुक्त समझे तो, डिक्री को विखंडित कर सकेगा ।

अतः इस संबंध में जांच की जानी चाहिए कि क्या क्रूरता उस कोटि की है जिससे अर्जीदार के मन में यह युक्तियुक्त आशंका हो कि अब पत्नी के साथ रहना उसके लिए हानिकर होगा । यह आवश्यक नहीं है कि इंग्लिश विधि के अधीन क्रूरता उस कोटि की होनी चाहिए कि उससे जीवन, शरीर या स्वास्थ्य के लिए खतरा हो या उससे ऐसे खतरे की आशंका हो । यह बात स्पष्ट है कि जीवन, शरीर या स्वास्थ्य के लिए खतरा या ऐसे खतरे की आशंका उस आशंका से अधिक महत्वपूर्ण है जो एक पति या पत्नी को अपने जीवन-साथी के साथ रहने में महसूस होती है ।

31. इस संबंध में इंग्लिश विनिश्चय का अवलंब लिए जाने के जोखिम को विद्वान् न्यायाधीश द्वारा टाल्सटाय के पृष्ठ सं. 63 के पैरे को निर्दिष्ट करते हुए दर्शाया जिसमें विद्वान् लेखक ने **हॉर्टन** बनाम **हॉर्टन** [1940 पी. 187] वाले मामले के पृष्ठ सं. 187 पर निम्न प्रकार व्यक्त किया है –

> 'दम्पत्ति यह मानते हैं कि एक-दूसरे के साथ रहने पर जीवन सुखद हो सकता है और दुखद भी और यह दर्शाने के लिए पर्याप्त नहीं है कि उनका साथ रहना असंभव है चाहे उनके स्वास्थ्य को क्षति पहुंची हो ।'

यदि स्वास्थ्य को खतरा मात्र इस कारण से होता है कि दम्पत्तियों के लिए साथ-साथ रहना असंभव है और एक पक्षकार के आचरण से दूसरे पक्षकार के प्रति समानता का भाव प्रतीत हो, तब ऐसी स्थिति में क्रूरता का आरोप असफल हो सकता है । किंतु धारा 10(1)(ख) के अधीन स्वास्थ्य, ख्याति या भविष्योन्नति की हानि या क्षति एक महत्वपूर्ण कारक है जिससे यह सुनिश्चित हो सकता है कि प्रत्यर्थी का आचरण क्रूरता की कोटि में आता है या नहीं । हमें जो तय करना चाहिए वह यह नहीं है कि अर्जीदार ने इंग्लिश विधि के

सिद्धांतों को दृष्टिगत करते हुए क्रूरता का आरोप साबित किया है या नहीं किंतु यह तय किया जाना चाहिए कि अर्जीदार ने यह साबित किया है या नहीं कि प्रत्यर्थी (पत्नी) ने उसके साथ इतनी क्रूरता कारित की है जिससे उसके मन में ऐसी युक्तियुक्त आशंका पैदा होती है कि पत्नी का साथ रहना उसके लिए हानिकर होगा ।"

18. प्रत्यर्थी-पति के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री चक्रबोर्ती ने विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय द्वारा पारित की गई विवाह-विच्छेद की डिक्री का समर्थन करते हुए यह दलील दी है कि यदि थोड़ी देर के लिए यह स्वीकार कर लिया जाए कि प्रत्यर्थी-पति अपने द्वारा किए गए अभिकथनों को साबित करने में असफल रहा है, तब भी अपीलार्थी-पत्नी द्वारा इस संबंध में किया गया यह अभिकथन स्वयं में क्रूरता कहलाएगा कि प्रत्यर्थी-पति अपने बड़े भाई की पत्नी के साथ जारकर्म का जीवन व्यतीत कर रहा था । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि विद्वान् विचारण न्यायालय ने **वी. भगत** बनाम **डी. भगत**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा किए गए विनिश्चय का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि "अर्जीदार द्वारा निरंतर दी गई मानसिक यातना के कारण वह (पति) विवाह-विच्छेद की डिक्री पाने का हकदार है विशेषकर ऐसी स्थिति में जब प्रत्यर्थी (पत्नी) ने ऐसा अभिकथन किया हो कि उसके पति के उसके बड़े भाई की पत्नी के साथ अवैध संबंध हैं और यह तथ्य इस न्यायालय के समक्ष संगत रूप से साबित नहीं किया गया है और इसीलिए मुद्दा सं. (II) अर्जीदार-पति के पक्ष में तथा प्रत्यर्थी-पत्नी के विरुद्ध विनिश्चित किया जाता है" ।

19. इसके पूर्व कि हम पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई दलीलों का परिशीलन करें, "क्रूरता" शब्द पर विचार करना हमारे लिए उचित होगा । हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 के अधीन "क्रूरता" को परिभाषित नहीं किया है । इस प्रकार, "क्रूरता" के शाब्दिक अर्थ को समझना उचित होगा । शॉर्टर आक्सफोर्ड डिक्शनरी में "क्रूरता" को "क्रूर होने के गुण", "पीड़ा देना", "दूसरे के दुख से सुखी होना या उदासीन रहना", "निर्दयता", "नृशंसता" के रूप में परिभाषित किया गया है ।

20. "क्रूरता" शब्द ब्लैक्स ला डिक्शनरी (2004 में प्रकाशित 8वां संस्करण) में निम्न प्रकार परिभाषित किया गया है :–

"मानसिक क्रूरता – विवाह-विच्छेद के आधार के रूप में पति या

---

[1] (1994) 1 एस. सी. सी. 337 = ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 710.

पत्नी का ऐसा आचरण (जिसमें वास्तविक रूप से हिंसा न हो) जिससे ऐसी ईर्ष्या सृजित हो कि उसके जीवन-साथी का जीवन भयावह हो जाए और शारीरिक या मानसिक रूप से अस्वस्थ हो जाए ।"

21. जैसाकि विद्वान् विचारण न्यायालय ने **वी. भगत** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 17 और 22 का अवलंब लिया है, ऐसी स्थिति में हमारे लिए उक्त निर्णय के पैरा 16 और 20 को उद्धृत करना उचित होगा :–

"16. धारा 13(1)(iक) में मानसिक क्रूरता को व्यापक रूप से परिभाषित किया गया है कि यह एक ऐसा आचरण है जिससे दूसरे पक्षकार को ऐसी मानसिक पीड़ा और वेदना होती है जिससे उस पक्षकार का जीवन दूसरे पक्षकार के साथ व्यतीत करना संभव नहीं रह जाता । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है, मानसिक क्रूरता ऐसी प्रकृति की होनी चाहिए कि पक्षकारों के एक साथ रहने की प्रत्याशा युक्तियुक्त रूप से न की जा सके । स्थिति ऐसी होनी चाहिए कि जिस पक्षकार के साथ दुर्व्यवहार किया गया है उससे युक्तियुक्त रूप से यह न कहा जा सके कि वह अन्य पक्षकार के साथ जीवन व्यतीत करे । यह साबित करना आवश्यक नहीं है कि मानसिक क्रूरता ऐसी होनी चाहिए कि अर्जीदार के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हो । ऐसे निष्कर्ष पर पहुंच कर पक्षकारों के सामाजिक और शैक्षणिक स्तर को ध्यान में रखना चाहिए और उस समाज को भी ध्यान में रखना चाहिए जिसमें वह दोनों रहते हैं और यदि दोनों पक्षकार अलग-अलग रहते हैं तब उनके साथ-साथ रहने की संभावना को ध्यान में रखना चाहिए और उन सभी सुसंगत तथ्यों और परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना चाहिए कि क्या संभव नहीं है और क्या वांछनीय नहीं है । एक मामले में कोई कृत्य 'क्रूरता' है तो यह संभव नहीं कि वही कृत्य एक अन्य मामले में 'क्रूरता' की कोटि में आए । प्रत्येक मामले में 'क्रूरता' को उसके तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर तय करना चाहिए । यदि मामले में अभियोग और अभिकथन किए गए हैं तब इस बात को ध्यान में रखना चाहिए कि वे किस संदर्भ में किए गए हैं ।

20. इसमें इसके ऊपर अनुध्यात सिद्धांतों के आधार पर अब हम इस पर विचार करें कि क्या पत्नी के लिखित कथन में उसके द्वारा किए गए अभिकथन और अर्जीदार से, पत्नी के काउंसेल द्वारा प्रतिरक्षा में पूछे गए प्रश्न उक्त उपखंड के अर्थांतर्गत 'मानसिक क्रूरता' की कोटि में आते हैं ? लिखित कथन का सुसंगत भाग पहले

ही इसमें इसके पूर्व उल्लिखित किया गया है । हमने उक्त पैरा में न्यायालय में प्रत्यर्थी के काउंसेल द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण का उल्लेख उक्त पैरा में कर दिया है जिसमें अर्जीदार की प्रतिपरीक्षा के दौरान उससे पूछे गए प्रश्नों के संबंध में स्पष्टीकरण दिया गया है । यह सत्य है कि उक्त प्रकथन उस संदर्भ में किए जाने चाहिए जिनमें वे किए गए थे । साथ ही यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि पत्नी केवल अपने चरित्र पर लगाए गए अभिकथनों और आक्षेपों से प्रतिरक्षा कर रही थी । पत्नी के लिए यह आवश्यक नहीं था कि वह इस सीमा के बाहर जाए और यह अभिकथन करे कि अर्जीदार मानसिक रोगी है, और यह कि वह एक सामान्य पुरुष नहीं है, और यह कि उसको मनोवैज्ञानिक उपचार की आवश्यकता है ताकि उसका मानसिक रोग दूर हो जाए, और यह कि वह मानसिक-उन्माद और मतिविभ्रम से ग्रसित है और पत्नी के लिए यह भी आवश्यक नहीं था कि वह यह अभिकथन करे कि अर्जीदार और उसके परिवार के सभी सदस्य हतबुद्धि हैं । ऐसा नहीं है कि इन शब्दों का प्रयोग क्रोध में या भावनाओं के दबाव में किया गया था । इन शब्दों का प्रयोग न्यायालय में फाइल किए गए औपचारिक अभिवाक् में किया गया था और इस संबंध में पत्नी के काउंसेल द्वारा पत्नी के कहने पर पति से प्रश्न पूछे गए थे । यहां तक कि पत्नी के अतिरिक्त लिखित कथन में उसने अपने उस अधिकार की पुष्टि की है कि वह उस पर लगाए गए काल्पनिक और निराधार अभिकथनों के विरुद्ध तथ्यों का सही वर्णन कर सकती है । यह एक आहत पत्नी की मात्र प्रत्यावर्तियां नहीं हैं अपितु यह पति के मानसिक असंतुलन और हतबुद्धि के सकारात्मक प्रकथन हैं । पति इस न्यायालय तथा उच्च न्यायालय में विधि व्यवसाय करने वाला एक अधिवक्ता है । विवाह-विच्छेद की अर्जी का विचारण दिल्ली उच्च न्यायालय में ही किया गया है । अभिवाक् में ऐसे अभिकथन करने और पति से साक्षी कठघरे में ऐसे प्रश्न पूछने से स्वभाविक रूप से पति की भविष्योन्नति और व्यवसायी पहलुओं पर दुष्प्रभाव पड़ने के अतिरिक्त उसे मानसिक पीड़ा और क्षोभ हो सकता है । ऐसा नहीं है कि प्रत्यर्थी इन प्रकथनों के आधार पर अनुतोष की ईप्सा कर रही है । पत्नी के विरुद्ध किए गए अभिकथन सत्य नहीं हो सकते, यह भी सत्य नहीं हो सकता कि अर्जीदार अत्यंत संदिग्ध चरित्र वाला है और यह कि वह हर बात को अपनी पत्नी के विरुद्ध समझता है । किंतु इस आधार पर यह कहना कि अर्जीदार का अपना

सामान्य मानसिक स्वास्थ्य बिगड़ गया है, यह कि वह मानसिक रोगी है जिसे उपचार के लिए किसी मानसिक रोग विशेषज्ञ की आवश्यकता है और इन सब बातों के बाद उसे और उसके दादा सहित परिवार के सभी सदस्यों को हतबुद्धि कहना पत्नी द्वारा युक्तियुक्त रूप से ली गई प्रतिरक्षा की सीमा के बाहर है । यह उल्लेखनीय है कि पत्नी के लिखित कथन में उसके द्वारा किए गए अभिकथन धारा 13 की उपधारा (1), खंड (iii) के स्पष्टीकरण के अर्थान्तर्गत मानसिक विकृति या अन्य किसी विकृति की कोटि में आते हैं, यद्यपि पत्नी ने यह कथन नहीं किया है कि उससे युक्तियुक्त रूप से इस आधार पर यह प्रत्याशा नहीं की जा सकती है कि वह अर्जीदार पति के साथ नहीं रह सकती और न ही पत्नी ने इस आधार पर कोई अनुतोष पाने का दावा किया है । इसके बावजूद 'मानसिक उन्माद', 'मानसिक रोगी', 'सामान्य व्यक्ति बनने के लिए मानसिक रोग के उपचार की आवश्यकता' जैसे अभिकथनों के साथ यह भी अभिकथन किया गया है कि अर्जीदार और उसके परिवार के सभी सदस्य मानसिक रोगी हैं और उसका सम्पूर्ण परिवार हतबुद्धि से ग्रसित है । इन प्रकथनों से ऐसी मानसिक क्रूरता गठित होती है कि अर्जीदार से, सभी सुसंगत परिस्थितियों के संदर्भ में, युक्तियुक्त रूप से यह नहीं कहा जा सकता है कि वह तत्पश्चात् प्रत्यर्थी-पत्नी के साथ जीवन बिताए । इस मामले में अर्जीदार की हैसियत से पति के लिए यह कहना न्यायोचित होगा कि उसके लिए उक्त अभिकथनों को दृष्टिगत करते हुए पत्नी के साथ रहना संभव नहीं है । इससे अन्यथा भी इस मामले के विशेष तथ्यों से यह दर्शित होता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी ने जानबूझकर ऐसा दर्शाया है जो पूर्णतया अस्वभाविक और किसी युक्तियुक्त व्यक्ति की समझ के बाहर है । उसे असाध्य व्यभिचारिणी के रूप में दर्शाया गया है । वह इस बात से पूर्णतया अवगत थी कि विवाह जीवनपर्यन्त होता है । उसका यह पक्षकथन है कि अर्जीदार वंशागत रूप से हतबुद्धि से ग्रसित है । इस सबके बावजूद पत्नी ने यह कथन किया है कि वह अर्जीदार पति के साथ रहना चाहती है । इससे स्पष्ट रूप से यह निष्कर्ष निकलता है कि उसने अपने तथा अर्जीदार के जीवन को मात्र नरक बनाने के लिए यह मार्ग अपनाया है । इस मामले के तथ्यों के संदर्भ में इतने कठोर व्यवहार से हमारे मन में कोई संदेह नहीं रह जाता है कि प्रत्यर्थी-पत्नी अपने पति के साथ मानसिक क्रूरता को कारित करने पर आनत है ।

यह पूर्णतया स्पष्ट हो गया है कि पक्षकारों के बीच हुआ विवाह असाध्य रूप से समाप्त हो गया है और उनके पुनः विवाह-बंधन में बने रहने या एक साथ रहने की कोई गुंजाइश नहीं है । इस मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि पक्षकारों के बीच हुआ विवाह, हिन्दू विवाह अधिनियम की धारा 13(1)(ik) के अधीन विघटित होना चाहिए और तद्नुसार हम ऐसा करते हैं । इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों तथा पिछले 8 वर्षों में व्यतीत किए गए जीवनकाल को ध्यान में रखते हुए हमारा यह मत है कि इस मामले का निस्तार करने के लिए लगाए गए प्रक्रियात्मक आक्षेपों को समाप्त करने हेतु एक उचित मामला है ।

22. **सावित्री पांडे** बनाम **प्रेम चंद्र पांडे**[1] वाले मामले में उच्चतम न्यायालय ने मानसिक क्रूरता पर विचार करते हुए निम्न प्रकार मत व्यक्त किया है :–

"मानसिक क्रूरता पति या पत्नी का ऐसा आचरण है जिससे अपने जीवन-साथी के वैवाहिक जीवन में मानसिक पीड़ा और भय उत्पन्न हो । अतः 'क्रूरता' अर्जीदार के साथ किया गया ऐसा व्यवहार है जिससे उसके मन में ऐसी युक्तियुक्त आशंका हो कि उसका अन्य पक्षकार के साथ जीवन व्यतीत करना हानिकर या क्षतिपूर्ण हो जाए । तथापि, 'क्रूरता' को पारिवारिक जीवन में आने वाली सामान्य नोकझोंक से भिन्न समझना चाहिए । 'क्रूरता' का निर्धारण अर्जीदार की क्रियाशीलता के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए बल्कि दूसरे पक्षकार के उस आचरण के आधार पर किया जाना चाहिए जिससे एक-दूसरे के साथ रहना सामान्य रूप से भयावह हो जाए ।"

23. **परवीन मेहता** बनाम **इंदरजीत मेहता**[2] वाले मामले के पैरा 21 में उच्चतम न्यायालय ने पुनः मानसिक क्रूरता पर विचार करते हुए निम्न मत व्यक्त किया है :–

"21. धारा 13(1)(ik) के प्रयोजन के लिए पति या पत्नी का अपने जीवन-साथी के प्रति व्यवहार ध्यान में रखना चाहिए जिससे उसके मन में ऐसी युक्तियुक्त आशंका उत्पन्न हो कि उसका अपने

---

[1] (2002) 2 एस. सी. सी. 73 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 59.

[2] (2002) 5 एस. सी. सी. 706 = ए. आई. आर. 2002 एस. सी. 2582.

साथी के साथ रहना शांतिपूर्ण न बन सके और वैवाहिक जीवन आगे न चल सके । 'मानसिक क्रूरता' ऐसी मानसिक स्थिति है और ऐसा स्वभाव है जो अपने जीवन-साथी के स्वभाव के साथ मिलकर बनता है । 'शारीरिक क्रूरता' से 'मानसिक क्रूरता' भिन्न होती है जिसे प्रत्यक्ष साक्षी द्वारा सिद्ध करना कठिन होता है । यह आवश्यक है कि मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर ही निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । एक दंपत्ति के मन में दूसरे दंपत्ति द्वारा आक्रोश, ह्रास और हताशा की भावना पैदा होने का निर्धारण उन तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर किया जाना चाहिए जिनमें वे दोनों अपना वैवाहिक जीवन व्यतीत करते हैं । तथ्यों और परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार करने के पश्चात् ही कोई निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए । 'मानसिक क्रूरता' के मामले में यह दृष्टिकोण अपनाना उचित नहीं होगा कि केवल दुर्व्यवहार के एक कृत्य को गणना में लिया जाए और उसका निर्धारण किया जाए कि ऐसा व्यवहार अपने आप में 'मानसिक क्रूरता' कारित करने के लिए पर्याप्त है या नहीं । अभिलेख पर प्रस्तुत साक्ष्य से उद्भूत तथ्य और परिस्थितियों पर संचयी रूप से विचार किए जाने का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और उसके पश्चात् यह निष्कर्ष निष्पक्ष रूप से निकालना चाहिए कि क्या विवाह-विच्छेद की अर्जी फाइल करने वाले अर्जीदार के साथ दूसरे पक्षकार द्वारा मानसिक क्रूरता कारित की गई है या नहीं ।"

24. उच्चतम न्यायालय द्वारा दिए गए उपरोक्त विनिश्चयों को दृष्टिगत करते हुए यह कहा जा सकता है कि पति या पत्नी द्वारा अपने जीवन-साथी के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया जाना शारीरिक क्रूरता की कोटि में नहीं अपितु मानसिक क्रूरता की कोटि में आएगा । इस बात में कोई संदेह नहीं है कि किसी भी कारण से किराए के मकान में जाकर रहने के लिए कहना मानसिक क्रूरता नहीं हो सकता । स्वीकृततः वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-पत्नी ने अपने लिखित कथन में प्रत्यर्थी के बड़े भाई के पत्नी के साथ विवाहेत्तर संबंधों के बारे में अभिकथन किया है किंतु यह साबित नहीं किया जा सका है । ऐसा अभिकथन गंभीर प्रकृति का है, विशेषकर ऐसी स्थिति में जब हमारे समाज में बड़े भाई की पत्नी को बोदी/भाभी कहा जाता हो और उसे माता समान माना जाता हो । जारकर्म किए जाने के संबंध में अपीलार्थी-पत्नी द्वारा किया गया अभिकथन साबित

नहीं किया जा सका जोकि पति के साथ की गई मानसिक क्रूरता के सिवाय कुछ नहीं है । जारकर्म किए जाने का निराधार अभिकथन करना बहुत सरल है किंतु इसे सिद्ध करना कठिन है ।

25. उपरोक्त बातों को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह मत है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने मानसिक क्रूरता के आधार पर विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करने में कोई गलती नहीं की है और इस प्रकार यह सिद्ध हो गया है कि उसके साथ मानसिक क्रूरता का व्यवहार किया गया है । विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के निर्णय से यह प्रतीत होता है कि विवाह-विच्छेद की डिक्री मंजूर करते समय उन्होंने प्रत्यर्थी-पति को यह निदेश दिया था कि वह तारीख 1 फरवरी, 2012 से अपनी पुत्री को 4,000/- रुपए प्रतिमास भरणपोषण भत्ते के रूप में संदत्त करेगा और 4,000/- रुपए की यह रकम अपीलार्थी को अंग्रेजी कैलेंडर के प्रत्येक मास की 10 तारीख तक उसके बचत खाते में जमा कराएगा । अतः, यह नहीं कहा जा सकता है कि विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय ने दंपत्तियों की अप्राप्तवय पुत्री के भरण-पोषण के संबंध में विचार नहीं किया । प्रत्यर्थी-पति विद्वान् कुटुम्ब न्यायालय के न्यायाधीश द्वारा पारित किए गए भरणपोषण के आदेश का अनुपालन उसके एक-एक शब्द को ध्यान में रखते हुए करेगा । इस प्रकार, हमारे लिए आवश्यक नहीं है कि हम विद्वान् कुटुम्ब न्यायाधीश के आदेश में हस्तक्षेप करें ।

26. परिणामतः, अपील खारिज की जाती है । खर्चों के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है । निचले न्यायालय का अभिलेख वापस भेजा जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

———————

सांगीलाल चंगानी

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

तारीख 16 जुलाई, 2014

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

देवस्थान विभाग, राजस्थान के नियंत्रण और अधीक्षण के अधीन कोर्ट आफ वार्ड स्वयं समर्थित (निधिपोषित) मंदिर के कर्मचारियों से संबंधित सेवा नियम, 1959 – नियम 25 – नियमित वेतनमान और सेवांत फायदे – याची की चपरासी के रूप में नियमानुसार नियुक्ति – चपरासी के बदले अंशकालिक चौकीदार का वेतन न दिया जाना – अधिवर्षिता पर सेवानिवृत्ति के बाद पेंशन संबंधी लाभ न दिया जाना – जहां राज्य सरकार द्वारा नियमों के अधीन भर्ती की जाती है वहां वेतन कम देना, सेवा और सेवांत फायदे न देना नियमों का उल्लंघन है, अतः राज्य सरकार नियमित और सेवांत फायदे देने के लिए दायी है ।

वर्तमान याची सांगीलाल चंगानी ने अपनी सेवानिवृत्ति के बाद वर्तमान रिट याचिका फाइल करते हुए यह अनुरोध किया है कि उसने चपरासी/चौकीदार के रूप में चतुर्थ वर्ग काडर में 40 वर्ष से अधिक कार्य किया था, उसे तारीख 13 जुलाई, 1966 को स्वीकृत पद के विरुद्ध चपरासी के रूप में नियुक्त किया गया, उसकी सेवानिवृत्ति के समय, उसे चतुर्थ वर्ग सेवक के नियमित वेतनमान के बदले केवल 1,000/- रुपए की एक छोटी राशि संदत्त की गई थी और कोई सेवानिवृत्ति लाभ उसको नहीं दिया गया है और इस प्रकार, वर्तमान रिट याचिका इस संबंध में समुचित अनुतोष पाने के लिए प्रत्यर्थी देवस्थान विभाग के विरुद्ध फाइल की गई है । उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रत्यर्थी विभाग ने इस न्यायालय के समक्ष इस मामले में पूर्ण रूप से न टिक पाने वाला आधार लिया है । प्रत्यर्थियों के उत्तर के उद्धरण भाग से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थियों ने संपूर्ण गलत अवधारणा पर यह कार्यवाहियां की हैं कि याची को वर्ष 1966 में पहले तदर्थ आधार पर चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के पद पर नियुक्त किया था और आगे चलकर वर्ष 1975 में उसे अंशकालिक चौकीदार के रूप में नियुक्त किया

था क्योंकि देवस्थान विभाग, राजस्थान, नियंत्रण और अधीक्षण के अधीन कार्य कोर्ट ऑफ वर्ड्स टेम्पल स्वयं समर्थित (निधि) के कर्मचारिवृन्द से संबंधित सेवा नियम, 1959 (जिसे इसे संक्षिप्त में "1959 का नियम" कहा गया है) चपरासी का पद नियमित न होने के कारण स्वयं समर्थित (निधि) द्वारा शासित वर्ग में चपरासी का कोई नियमित पद उपलब्ध नहीं है । यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों ने अपने स्वयं के आदेश तारीख 13 जुलाई, 1966 को पूरी तरह नकार दिया है और याची को चपरासी के पद पर तारीख 6 अक्तूबर, 1969 के उपाबंध 2 द्वारा स्थायी कर दिया गया । जब किसी व्यक्ति को चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के रूप में किसी रिक्त पद पर वास्तविक रूप से नियुक्त किया जाता है तो हम यह समझने में असमर्थ हैं कि उसे, उसके विरुद्ध की अनुशासनात्मक कार्रवाई के माध्यम से विधि के प्राधिकार का उपयोग के सिवाय अंशकालिक चौकीदार के पद से वापस किया जा सकता है । वर्ष 1975 में सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग द्वारा पारित आदेश में अंशकालिक चौकीदार के कर्तव्यों के निर्वहन के बारे में उसे कुछ नहीं बताया है किन्तु चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी/चौकीदार के रूप में कर्तव्य के स्वभाव को बदलने का एक आदेश था । इसमें उसके वेतन कम करने का कोई प्रश्न नहीं था या उसको नियमित वेतनमान नहीं दिया गया और निधि नियमों के अधीन अंशकालिक चौकीदार के रूप में केवल उसको निर्धारित मासिक वेतन दिया गया । यह हो सकता है कि क्योंकि अंशकालिक चौकीदार का संदाय वर्ष 1975 में चपरासी के नियमित वेतन 60/- रुपए प्रतिमास से केवल 5 रुपए प्रतिमास कम था जब याची ने तारीख 17 जनवरी, 1975 को पूर्वोक्त अभ्यावेदन उपाबंध 5 फाइल किया था किन्तु समय की अवधि में बहुत बड़ा अन्तर हो गया था यदि नियमित वेतनमान याची को दे दिया गया था तो उसने चतुर्थ वर्ग सेवक के सामान्य वेतन को प्राप्त किया होगा या किसी चपरासी बजाय निधि नियम, 1959 के अधीन अंशकालिक चौकीदार का निर्धारित वेतन था । इसमें निधि नियम, 1959 के अधीन चपरासी के पद को विशिष्ट रूप से समाप्त करने को अभिलेख पर कोई आदेश नहीं है । इसके विपरीत चपरासियों के वेतनमानों के पुनरीक्षण को 2002 और 2010 में वेतनमानों के पुनरीक्षण के अधीन समय-समय पर दिया गया है । यहां याची से चौकीदार के रूप में कार्य लेने के लिए प्रत्यर्थियों ने पूर्ण रूप से न्यायसंगत कार्य नहीं किया है यद्यपि उसे चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के मूल पद पर विधिवत और नियमित रूप से तथा निर्धारित मासिक वेतन के लिए याची को दिए जा रहे नियमित वेतनमान बदलने के लिए नियुक्त किया था जैसाकि वर्तमान

मामले में किया था और प्रत्यर्थी विभाग के भाग पर बकाया निष्क्रियता, याची अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख तक केवल 1,000/- रुपए प्रतिमास प्राप्त कर रहा था जबकि अन्य उसके समान लगे हुए चतुर्थ वर्ग पद पर कार्य कर रहे को लगभग 10,000/- रुपए या उससे अधिक दिया जा रहा है । याची ने अपनी पूरी जिन्दगी भगवान के मंदिर में बिताई है किन्तु भगवान की नाक के नीचे नौकरशाहों के द्वारा विधिविरुद्ध और शरारती कार्य किए गए, उसे 595/- रुपए की न्यूनतम नियत मासिक वेतन से परेशान किया गया या जिसके विरुद्ध उसने विभाग और सरकार के उच्च प्राधिकारी को भी अनेक अभ्यावेदन दिए थे किन्तु यह प्रतीत होता है और चूंकि यह प्रायः संयोग होता है, किसी ने गरीब आदमी की आवाज को नहीं सुना और याची की सही बात को अनसुना कर दिया, जब विद्वान् आयुक्त ने याची के अभ्यावेदन पर इस संबंध में सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग से सुसंगत जानकारी की ईप्सा की थी तो उसके द्वारा विशिष्ट रूप से विलंब किए जाने के तरीके अपनाए गए थे जैसाकि उपरोक्त उल्लिखित उपाबंध 12, 14, 16 और 17 से यह स्पष्ट होता है और सहायक आयुक्त ने यह अभिकथित किया कि चूंकि याची का मामला पुराना और उलझा हुआ था, इसमें उसके मामले का विनिश्चय करने के लिए समय की आवश्यकता होगी । यद्यपि यह प्रकट होता है कि पूर्ववर्ती सहायक आयुक्त ने उपरोक्त उल्लिखित तारीख 26 फरवरी, 2008 के संसूचना उपाबंध 10 द्वारा याची के मामले की अनुग्रहपूर्वक सिफारिश की थी । इस प्रकार, यह बहुत ही दयनीय स्थिति है कि याची को लगभग तीन वर्ष पहले ही इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए था जब इस मामले को उक्त वर्षों बाद अंतिम निपटान के लिए लिया गया था और संबंधित प्राधिकारियों ने तारीख 8 जुलाई, 2014 के आदेश द्वारा इस न्यायालय में वर्तमान में बने रहने के लिए निदेश दिया था, जिसे पूर्वोक्त कारण के लिए इस न्यायालय और देवस्थान विभाग, बीकानेर के सहायक आयुक्त द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता है, वर्तमान पदधारी ने स्पष्ट रूप से यह दलील दी है कि यदि यह न्यायालय समुचित निदेश देता है तो उन्हें उनको स्वीकार करना होगा और याची को उपयुक्त अनुतोष देना होगा । इस प्रकार, इस न्यायालय ने अपना मत व्यक्त किया है कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी विभाग द्वारा बहुत बड़ा अन्याय किया है और याची कतिपय रूप से संदेह के परे सभी निर्धारण के साथ चतुर्थ वर्ग के नियमित वेतनमान का हकदार था और नियमों के अनुसार वेतन का पुनरीक्षण जिसमें छठे वेतन आयोग की सिफारिश पर वेतन का पुनरीक्षण भी सम्मिलित है तद्नुसार परिकलित

और संदत्त किए जाने योग्य है । चूंकि याची को प्रत्यर्थी विभाग की चूक से अधिवर्षिता बकाया में से सेवानिवृत्ति के बाद एक फूटी कौडी का संदाय नहीं किया गया है, याची कुछ प्रतिकर का भी हकदार है । वर्तमान रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है और उसे मंजूर किया जाता है । प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे याची से देवस्थान विभाग द्वारा निधि नियम, 1959 के अधीन उसके द्वारा अनुरक्षित और प्रशासित मंदिरों में चपरासी/चौकीदार के रूप में लिए गए कार्य पर ध्यान देते हुए याची को सतत् रूप से चतुर्थ वर्ग कर्मचारी अर्थात् चपरासी के रूप में नियोजित समझे और वेतन निर्धारित करने के लिए उपयुक्त आदेश पारित करने के बाद, चूंकि यदि याची ने शुरू से ही चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के रूप में कार्य किया था जिसमें संदाय का पुनरीक्षण और उसको पहले संदाय की जा चुकी धनराशि समायोजन करने के बाद सम्मिलित है, उसको गलती से अंशकालिक चौकीदार मानते हुए शेष धनराशि आज की तारीख से तीन मास के भीतर संदत्त की जाए । संदाय और अधिवर्षिता लाभ के बकाया पर ब्याज की हानि के लिए प्रत्यर्थी आज की तारीख से तीन मास के भीतर याची को एक लाख रुपए की एकमुश्त धनराशि प्रतिकर के रूप में संदाय करेंगे । याची को चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के रूप में पेंशन देने के मामले में निधि नियम, 1959 के नियम 25 के अनुसार भविष्य निधि का सदस्य होना उसके तथ्य पर निर्भर करेगा या नहीं । यदि याची ने भविष्य निधि खाता नहीं खोला था और उसके व विभाग द्वारा अभिदाय कभी नहीं दिया गया है तो वह पेंशन नियम, 1996 के अनुसार एक चतुर्थ वर्ग सेवक के रूप में पेंशन पाने का हकदार हो सकता है चूंकि इसमें 1959 निधि नियम के अधीन राज्य सरकार के चतुर्थ वर्ग के लिए पेंशन देने के विरुद्ध निषेध नहीं है । इस प्रकार, इस पहलू पर, प्रत्यर्थी सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर याची या उसके अधिकृत प्रतिनिधि को सुनने का अवसर देने के बाद आज से तीन माह की अवधि के भीतर समुचित आदेश पारित करेगा । तथापि, यदि वह भविष्य निधि का सदस्य था और ऐसे भविष्य निधि बकाया को उसकी सेवानिवृत्ति के समय उसे संदत्त किया गया तो याची किसी प्रकार की पेंशन का हकदार नहीं होगा । यदि उसका भविष्य निधि खाता खुला है किन्तु उसका बकाया संदत्त नहीं किया है तो उसे आज की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर संदत्त किया जाए । (पैरा 8, 9, 10, 11, 14, 15, 16 और 17)

आरंभिक (सिविल) रिट अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 8906.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याचियों की ओर से श्री राजीव पुरोहित

देवस्थान की ओर से श्री राजेश चौधरी

पेंशन विभाग की ओर से श्री नरेन्द्र सिंह, राजपुरोहित

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – वर्तमान याची सांगीलाल चंगानी ने अपनी सेवानिवृत्ति के बाद वर्तमान रिट याचिका फाइल करते हुए यह अनुरोध किया है कि उसने चपरासी/चौकीदार के रूप में चतुर्थ वर्ग काडर में 40 वर्ष से अधिक कार्य किया था, उसे तारीख 13 जुलाई, 1966 को स्वीकृत पद के विरुद्ध चपरासी के रूप में नियुक्त किया गया, उसकी सेवानिवृत्ति के समय, उसे चतुर्थ वर्ग सेवक के नियमित वेतनमान के बदले केवल 1,000/- रुपए की एक छोटी राशि संदत्त की गई थी और उसको कोई सेवानिवृत्ति लाभ नहीं दिया गया है और इस प्रकार, वर्तमान रिट याचिका इस संबंध में समुचित अनुतोष पाने के लिए प्रत्यर्थी देवस्थान विभाग के विरुद्ध फाइल की गई है ।

2. याची द्वारा रिट याचिका तारीख 20 सितम्बर, 2011 को 66 वर्ष की आयु में फाइल की गई थी । नोटिस जारी करने पर, प्रत्यर्थियों ने रिट याचिका का उत्तर फाइल किया और एक जैसी दलील दी गई ।

3. प्रथमतः संक्षेप में इस प्रकार है । तारीख 13 जुलाई, 1966 के नियुक्ति आदेश उपाबंध 1 द्वारा देवस्थान विभाग के सहायक आयुक्त ने चपरासी के रूप में वर्तमान याची की नियुक्ति के लिए सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर के पक्ष में स्वीकृति दी थी । तत्पश्चात्, याची को तारीख 6 अक्तूबर, 1969 को देवस्थान विभाग के सहायक आयुक्त ने आदेश पारित करके उपाबंध 2 द्वारा उक्त पद पर स्थायी कर दिया और देय ग्रेड वेतनवृद्धि भी तारीख 2 दिसम्बर, 1971 के आदेश उपाबंध 3 द्वारा उसको दी गई थी ।

4. उपाबंध 4 में याची द्वारा, प्रत्यर्थी विभाग को यह अभ्यावेदन किया है कि बिना किसी कारण के उसकी 60/- रुपए के प्रतिमास वेतन में से 5 रुपए प्रतिमास काटे गए हैं और तद्नुसार सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, जोधपुर ने तारीख 10 दिसम्बर, 1975 के उपाबंध द्वारा देवस्थान विभाग बीकानेर के निरीक्षक को पुनः उसको वेतन का संदाय देने को स्वीकृत किया जिसमें यह स्पष्ट रूप से यह अभिकथन किया है कि याची

सांगीलाल चंगानी, चौकीदार को अपने पूर्व पद पर पुनः तैनात कर दिया । तथापि, यह स्पष्ट होता है कि देवस्थान विभाग के निरीक्षक, बीकानेर के आदेशों के अधीन याची के अभ्यावेदन (उपाबंध 7) का पैरा 3 में हवाला दिया है, याची ने जगन्नाथ मंदिर, बीकानेर में चौकीदार के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए पूछा था, यद्यपि वह चपरासी के मूल पद पर नियुक्त था और चूंकि उसने वर्ष 1975 के जनवरी माह में सबसे पहले चौकीदार के रूप में अपने कर्तव्यों का निर्वहन करने के लिए पूछा था जब उसके वेतन से 5 रुपए प्रतिमास काटे गए थे उसे चौकीदार के रूप में निर्धारित मासिक राशि ही संदत्त की गई, जैसा याची ने पूर्वोक्त अभ्यावेदन में दिया है । किसी न किसी तरह यह प्रतीत होता है कि याची चौकीदार के रूप में ही अपने कर्तत्यों का निर्वहन निरंतर करता रहा तब से उसे श्रेणी चतुर्थ काडर में चपरासी के नियमित वेतनमान के बदले निर्धारित मासिक राशि ही संदत्त की गई और कि उसने तारीख 27 दिसम्बर, 2007 को वर्ष 2007 में देवस्थान विभाग के आयुक्त को उल्लेखित अभ्यावेदन क्यों नहीं दिया जिसमें एक प्रतिलिपि उपाबंध 7 पर रखी गई है जिसमें उसने अपनी सेवा काल के ब्यौरे का वर्णन किया है और विद्वान् आयुक्त को 595/- रुपए की मासिक राशि के बदले चपरासी के नियमित वेतनमान के लिए अनुरोध किया था । उक्त अभ्यावेदन की प्रतिलिपि संबंधित माननीय मंत्री और राज्य के मुख्यमंत्री को भी भेजी गई थी ।

5. इस संबंध में उच्च प्राधिकारियों से ऊपर की गई टिप्पणियां मांगी गईं जिसमें सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग बीकानेर ने तारीख 26 फरवरी, 2008 के पत्राचार उपाबंध 10 द्वारा नियमित वेतनमान देने के लिए याची के मामले में सिफारिश करते हुए इसमें कहा कि याची की सेवा चौकीदार के पद पर वर्ष 1975 में आमेलित की गई थी और तब से वह "रशिकशिरोमणि" बीकानेर के मंदिर में चौकीदार के रूप में कार्य कर रहा था और संदाय के लिए देवस्थान विभाग के लिए निधि सृजित की गई थी । विद्वान् आयुक्त ने सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर से याची के पूर्वोक्त अभ्यावेदन पर तारीख 8 अगस्त, 2008 के उपाबंध 11 द्वारा अपने स्तर पर की गई समुचित कार्रवाई के बारे में पूछा था, तारीख 13 अगस्त, 2008 के उपाबंध 12 द्वारा सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग ने याची को सूचित किया था कि चूंकि उसका मामला पुराना और जटिल है और उसमें कुछ समय लगेगा । लेकिन फिर भी कोई विनिश्चय नहीं लिया, तारीख 24 जून, 2009 के पत्राचार उपाबंध 15 द्वारा देवस्थान विभाग

के आयुक्त ने पुनः सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग से कुछ जानकारी देने के लिए पूछा । उक्त पत्राचार का तारीख 20 नवम्बर, 2009 के उपाबंध 16 द्वारा जवाब दिया । इसमें तारीख 27 अक्तूबर, 2010 (उपाबंध 17) के पत्र द्वारा सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर की प्रतिक्रिया यहां उल्लेख करना सुसंगत होगा और अन्य सुसंगत दस्तावेज जैसकि उपाबंध 10, 11, 12, 15 और 16 जो इस प्रकार उद्धृत किए गए हैं ।

उपाबंध-10

*"**कार्यालय सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर** ।

क्रमांक : 584 दिनांक : 26.02.2008

प्रेषिति :

उपायुक्त महोदय,
देवस्थान विभाग,
राजस्थान, उदयपुर

विषय – सांगीलाल चंगानी स्थायी चपरासी को पूर्व में मिल रहे चपरासी पद का वेतन का वेतनमान बदलकर चौकीदार का वेतनमान दिया जाने व अंशकालीन फिक्स वेतन भुगतान के संबंध में ।

प्रसंग – आपका पत्र क्रमांक एफ 6(3) संस्था/देव/2008/488 दिनांक 10.1.2008

महोदय,

उपरोक्त विषयान्तर्गत एवं प्रासंगिक पत्र के साथ संलग्न प्रार्थी श्री सांगीलाल चंगानी द्वारा प्रस्तुत प्रार्थना पत्र के संदर्भ में तथ्यात्मक रिपोर्ट इस प्रकार है कि प्रार्थी की नियुक्ति फण्ड चपरासी के रिक्त पद पर दिनांक 13.7.1966 को नियुक्ति दी गई थी । बाद में आत्मनिर्भर मंदिर में एक चौकीदार के अवकाश पर जाने पर प्रार्थी को चौकीदार के पद पर लगा दिया गया । चूंकि पूर्व में निधि सेवाओं में फण्ड चपरासी व चौकीदारों का वेतन समान था । वर्तमान में फण्ड चपरासी के नियमित वेतन शृंखला निधि नियमों के अंतर्गत देय हैं मंदिर चौकीदारों की सेवाओं को अंशकालीन मानते हुए फिक्स मानदेय ही भुगतान किया जाता है ।

---

* मूल निर्णय से यथावत लिया गया है ।

प्रार्थी की सेवाओं को सन् 1975 में ही चौकीदार के पद पर सेवा समायोजित की गई है । तब से लेकर वर्तमान में भी प्रार्थी आत्मनिर्भर मंदिर श्री रशिकशिरोमणिजी में चौकीदार के पद पर कार्यरत है । जहां तक प्रार्थी की मांग है कि उसे नियुक्ति दिनांक से फण्ड च.श्रे.क. का वेतनमान व अन्य समस्त पदों का वेतनमान राज्य सरकार द्वारा ही निर्धारित किया जाता है ।

उपरोक्त तथ्यों से प्रकट होता है कि श्री सांगीलाल की नियुक्ति चपरासी पद पर हुई थी किन्तु समय-समय पर कार्यालय व मंदिरों की व्यवस्थाओं के अधीन उसे विभिन्न पदों पर लगाए जाते रहने से उसका मूल पद चपरासी का ध्यान नहीं रखा जा सका । ऐसे में उसके द्वारा चपरासी पद का वेतन परिलाभ के संबंध में प्रस्तुत परिवेदन उचित प्रतीत होता है ।

भवदीय''

उपाबंध-11

कार्यालय आयुक्त, देवस्थान विभाग, राजस्थान, उदयपुर ।

क्रमांक : एफ 12(3) संस्था/देव/2008/9571 दिनांक : 8.8.2008

वास्ते,

सहायक आयुक्त,
देवस्थान विभाग,
बीकानेर ।

विषय – श्री सांगीलाल चंगानी निधि चौकीदार देवस्थान विभाग, बीकानेर का अभ्यावेदन बाबत चपरासी पद पर मान कर वेतन भत्ते संबंधी समस्त परिलाभ दिलाने बाबत ।

प्रसंग – आपका पत्र संख्या 584 दिनांक 26.2.2008 एवं 2694 दिनांक 7.8.2008

प्रासंगिक पत्र द्वारा प्रस्तुत तथ्यात्मक प्रतिवेदन एवं श्री चंगानी की सेवा संबंधी पत्रावली का अवलोकन किया गया । श्री सांगीलाल चंगानी की नियुक्ति तत्कालीन सहायक आयुक्त के पत्र संख्या 3621 दिनांक 13.7.1966 द्वारा दी गई स्वीकृति से निधि चपरासी के पद पर की गई थी । वर्ष 1975 में निधि बजट में चपरासी का पद कम कर दिया गया तब उसे निधि चपरासी के पद से हटा कर चौकीदार के पद पर समायोजित कर

लिया गया । चाहे समस्त कार्यवाही सहायक आयुक्त के स्तर से ही की गई है ।

वर्ष 1998 में श्री चंगानी द्वारा निधि चपरासी के पद पर पुनः नियुक्त करने बाबत प्रार्थना पत्र प्रस्तुत किया जिसे सहायक आयुक्त द्वारा श्री चंगानी को कारण बताते हुए उनके पत्र संख्या 1265 दिनांक 26.5.1998 द्वारा निरस्त कर दिया गया ।

देवस्थान निधि सेवा नियम, 1959 के नियम 20 के अनुसार उक्त नियमों के नियम 11 से 17 में वर्णित पदों एवं तत्समान पदों पर नियुक्त करने के लिए सहायक आयुक्त ही सक्षम है । अतः श्री चंगानी द्वारा प्रस्तुत अभ्यावेदन पर आप अपने स्तर पर निर्णय लेकर नियमानुसार कार्यवाही करें एवं की गई कार्यवाही से अविलम्ब अवगत कराएं । आप द्वारा भेजा गया अभिलेख आपके कार्यालय के श्री संजय ओबेराय निधि लिपिक के साथ वापस भेजा जा रहा है ।

आयुक्त,

उपाबंध -12

कार्यालय सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर ।

क्रमांक : दिनांक : 13.8.2008

प्रेषिति :

श्री सांगीलाल चंगानी,
बिट्ठल नाथजी का मंदिर,
तेलीवाड़ा चौक, बीकानेर ।

विषय – सांगीलाल चंगानी चपरासी को वेतन भत्ते व अन्य परिलाभ करने के संबंध में ।

विषयान्तर्गत लेख है कि आपके चपरासी के पद के वेतन भत्ते व अन्य परिलाभ के संबंध में प्रस्तुत परिवेदना के क्रम में इस कार्यालय के पत्र क्रमांक 584/26.02.2009 के परिवेदना को उचित मानते हुए तथ्यात्मक टिप्पणी आयुक्त महोदय, देवस्थान विभाग, उदयपुर को प्रेषित की गई ।

वर्तमान में आयुक्त, देवस्थान विभाग से पत्र इस आशय का प्राप्त हुआ है कि प्रार्थी के प्रार्थना पत्र पर निर्णय सहायक आयुक्त के स्तर पर ही लिया जाना है ।

चूंकि आयुक्त महोदय का पत्र दो दिन पूर्व ही प्राप्त हुआ है एवम् प्रार्थी का प्रकरण पुराना एवं जटिल होने के कारण संबंधित सेवा नियमों के परिप्रेक्ष्य में परीक्षण कर निस्तारण किया जाना है जिसमें समय लगने की संभावना है ।

हस्ता./
सहायक आयुक्त,
देवस्थान विभाग, बीकानेर ।

उपाबंध-14

कार्यालय सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर ।

क्रमांक : एफ 4 संस्था/देव/08/84 दिनांक : 14.1.2009

प्रेषिति :

आयुक्त महोदय,
देवस्थान विभाग,
उदयपुर ।

विषय – सांगीलाल चंगानी चपरासी को वेतन भत्ते व अन्य परिलाभ देने के संबंध में ।

प्रसंग – आपका पत्रांक एफ 12(3)संस्था/देव/08/13815 दिनांक 5.9.2008 के संबंध में ।

महोदय,

उपरोक्त विषयक प्रासंगिक पत्र के संदर्भ में निवेदन है कि श्री सांगीलाल चंगानी की नियुक्ति तत्कालीन सहायक आयुक्त के पत्र संख्या 3621 दिनांक 13.7.1966 द्वारा निधि चपरासी के पद पर की गई थी । वर्ष 1975 में निधि बजट में चपरासी का पद समाप्त कर दिए जाने के कारण उसे निधि चपरासी के पद से हटाकर चौकीदार के पद पर समायोजित कर दिया गया था तब से श्री चंगानी इस पद पर नियमित रूप से कार्य करते रहे हैं और इसी पद का वेतन नियमित रूप से उठाते रहे हैं । वर्ष 1988 में 23 वर्ष पश्चात् प्रार्थना पत्र तत्कालीन सहायक आयुक्त को प्रस्तुत किया जिसे यहां के पत्रांक 1265 दिनांक 26.5.1998 का कारण स्पष्ट करते हुए निरस्त कर दिया गया था । आज भी श्री चंगानी चौकीदार के पद पर कार्यरत हैं । जहां तक प्रार्थी की मांग है कि उसे नियुक्ति दिनांक से फण्ड

च.श्रे. कर्मचारी का वेतनमान व अन्य परिलाभ दिलवाए जाएं जबकि निधि सेवा नियमों के अंतर्गत दिए जाने वाले समस्त पदों का वेतनमान राज्य सरकार द्वारा ही निर्धारित किया जाता है ।

चूंकि फण्ड च.श्रे.क. का पद पूर्व में ही समाप्त किया जा चुका है । अतः ऐसी स्थिति में निर्देशित कराएं कि फण्ड नियम, 1959 के अनुसार प्रार्थी का फण्ड च.श्रे.क. देवस्थान के पद के परिलाभ दिए जा सकते हैं अथवा नहीं ? इस संबंध में नियमों की व्यवस्था के संदर्भ में उपविधि परामर्शी एवं लेखाधिकारी की राय ली जानी उचित प्रतीत होती है । अतः भविष्य में कार्यवाही करने हेतु आवश्यक मार्गदर्शन प्रदान कराने का कष्ट कराएं ।

भवदीय,

हस्ता./
सहायक आयुक्त,
देवस्थान विभाग,
बीकानेर ।

उपाबंध-15

कार्यालय सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, उदयपुर ।

क्रमांक : एफ 12(3) संस्था/देव/2008/7467 दिनांक : 24.6.2009

प्रेषिति :

सहायक आयुक्त,
देवस्थान विभाग,
बीकानेर ।

विषय – श्री सांगीलाल चंगानी (च.श्रे.क.) को अंशकालीन फिक्स वेतन के स्थान पर वेतन शृंखला में वेतन भत्ते व अन्य परिलाभ भुगतान बाबत ।

उपरोक्त विषयान्तर्गत श्री सांगीलाल चंगानी, निधि चौकीदार, देवस्थान विभाग, बीकानेर के संबंध में निम्नानुसार सूचना भिजवाते हुए तथ्यात्मक टिप्पणी मय आदेशों की प्रतियों के शीघ्र भिजवाएं –

1. क्या श्री सांगीलाल चंगानी स्थायी निधि कर्मचारी थे ?
2. क्या पद समाप्त होने के बाद श्री चंगानी की सेवा समाप्ति

निधि कार्मिक के रूप में औपचारिक आदेश से की गई ?

3. क्या श्री चंगानी को चौकीदार के पद पर (स्थायी निधि कर्मचारी से) समायोजित करने का कोई आदेश जारी किया गया ?

हस्ता./

(बजरंग लाल शर्मा)
आयुक्त
देवस्थान विभाग,
राजस्थान, उदयपुर ।

उपाबंध-16

कार्यालय सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर ।

क्रमांक : 3200

दिनांक : 20.11.2009

प्रेषिति :

आयुक्त महोदय,
देवस्थान विभाग,
राजस्थान, उदयपुर ।

विषय – श्री सांगीलाल चंगानी (च.श्रे.क.) को अंशकालीन फिक्स वेतन के स्थान पर वेतन शृंखला में वेतन भत्ते व अन्य भुगतान बाबत ।

प्रसंग – आपका पत्रांक एफ 13(3)संस्था/देव/08/7467 दिनांक 24.06.2009

महोदय,

उपरोक्त विषयान्तर्गत एवं प्रासंगिक पत्र के संदर्भ में चाही गई सूचना बिन्दुवार प्रेषित है :–

1. श्री सांगीलाल को निरीक्षक देवस्थान विभाग, बीकानेर द्वारा निधि सेवा में चपरासी के रिक्त पद पर चपरासी की वेतन शृंखला में नियुक्ति की अनुशंसा करने के आधार पर सहायक आयुक्त देवस्थान विभाग, जोधपुर द्वारा पत्र क्रमांक 3621 दिनांक 13.07.1966 के द्वारा स्वीकृति प्रदान की गई ।

2. पद समाप्त होने के उपरान्त श्री चंगानी की सेवा समाप्त

करने संबंधी कोई आदेश पत्रावली में उपलब्ध नहीं है एवं समय-समय पर कार्य की आवश्यकता अनुसार चौकीदार, भितरिया के पद पर लगाया जाता रहा ।

3. श्री चंगानी को चौकीदार के पद पर समायोजित करने का कोई आदेश पत्रावली में उपलब्ध नहीं है ।

भवदीय,

हस्ता./-
सहायक आयुक्त,
देवस्थान विभाग, राजस्थान,
बीकानेर ।

उपाबंध-17

कार्यालय सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर ।

क्रमांक : 3091

दिनांक : 27.10.2010

प्रेषिति :

आयुक्त महोदय,
देवस्थान विभाग,
राजस्थान, उदयपुर ।

विषय – श्री सांगीलाल चंगानी (च.श्रे.क.) को अंशकालीन फिक्स वेतन के स्थान पर नियमित वेतन शृंखला में वेतन भत्ते व अन्य परिलाभ भुगतान बाबत ।

प्रसंग – आपका पत्रांक एफ 12(3) संस्था/देव/08/5575 दिनांक 20.4.2010

महोदय,

उपरोक्त विषयान्तर्गत प्रासंगिक पत्र के संदर्भ में निवेदन है कि श्री सांगीलाल चंगानी भितरिया मंदिर श्री राजरतन बिहारीजी बीकानेर में सहायक आयुक्त महोदय, जोधपुर के आदेश क्रमांक 3407 दिनांक 10.10.1975 के अनुसार चौकीदार के पद पर नियुक्त किया । चौकीदार का पद अंशकालीन पर था तभी से श्री चंगानी को अंशकालीन माना

गया । वर्तमान में श्री चंगानी की नियुक्ति मंदिर श्री रशिकशिरोमणिजी बीकानेर में अंशकालीन चौकीदार के पद पर है एवं इनको नियमानुसार एक हजार रुपए प्रतिमाह भुगतान किया जा रहा है ।

भवदीय,

हस्ता./-
सहायक आयुक्त,
देवस्थान विभाग, राजस्थान,
बीकानेर' ।

6. पूर्वोक्त स्थिति से व्यथित होकर, याची ने पुनः विद्वान् आयुक्त देवस्थान विभाग को ब्यौरेवार अभ्यावेदन फाइल किया जो फाइल की गई वर्तमान रिट याचिका के समक्ष रखे गए उपाबंध 17 का भाग है और तत्पश्चात् वर्तमान रिट याचिका इस न्यायालय में याची द्वारा फाइल की गई थी । अपने उत्तर में प्रत्यर्थियों द्वारा लिए गए आधार इस प्रकार नीचे दिए गए हैं :–

> "8 ..... इस संबंध में, यह अनुरोध किया है कि निरीक्षक द्वारा सहायक आयुक्त को तारीख 2 अक्तूबर, 1974 के पत्र संख्या 1354 लिखा गया गया था, इसमें यह सूचित किया गया था कि चपरासी के पद की उपलब्धता न होने के कारण, याची को चपरासी के पद पर नियुक्त किया गया है, याची को श्री रशिकशिरोमणिजी मंदिर में चौकीदार के पद पर नियुक्त किया गया है । चपरासी के पद की उपलब्धता के बाद, किसी भी समय ऐसा नहीं किया गया कि याची ने उक्त पद पर अपनी नियुक्ति के लिए आवेदन किया हो । दरअसल में, याची ने इन वर्षों में शुरुआत से ही चौकीदार के पद के अपने कर्तव्यों का निरन्तर निर्वहन किया है ।
>
> 9. यह कि रिट याचिका के पैरा संख्या 9 में किए गए प्रकथनों को ब्यौरेवार ऊपर उल्लिखित दलील में दिए गए कारणों से इनकार किया है । पुनरावृत्ति की लागत पर, यह सम्मानपूर्वक दलील दी गई है कि तारीख 10 दिसम्बर, 1975 के पत्र द्वारा सहायक आयुक्त ने भितरिया के प्रस्तावित पद के बदले में चौकीदार के पद पर याची की नियुक्ति के लिए निरीक्षक से पूछा था । याची चौकीदार के पद पर पहले से कार्य कर रहा था । तद्नुसार, निरीक्षक, देवस्थान विभाग ने चौकीदार के पद पर याची की नियुक्ति को तारीख 10 दिसम्बर, 1975

के आदेश और तारीख 15 दिसम्बर, 1975 का अनुपालन किया था ।

19. यह कि रिट याचिका के पैरा संख्या 9 में किए गए प्रकथनों में कोई विवाद नहीं है जहां तक वे सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग द्वारा आयुक्त, देवस्थान विभाग को लिखे गए तारीख 20 नवम्बर, 2009 के अनुरूप हैं । तथापि, यह दोहराया गया है कि याची को शुरुआत में चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के पद पर तदर्थ आधार पर नियुक्त किया गया था किन्तु चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के पद की उपलब्धता न होने के कारण, उसे परिणामस्वरूप चौकीदार के पद पर नियुक्त किया गया था जिस नियुक्ति को याची ने स्वीकार किया था । तत्पश्चात्, तारीख 10 दिसम्बर, 1975 द्वारा, सहायक आयुक्त ने भितरिया के प्रस्तावित पद के बदले चौकीदार के पद पर याची को नियुक्त करने के लिए निरीक्षक को पूछा था । याची चौकीदार के पद पर पहले से कार्य कर रहा था । तद्नुसार, निरीक्षक, देवस्थान विभाग ने चौकीदार के पद पर याची की नियुक्ति को तारीख 10 दिसम्बर, 1975 के आदेश और तारीख 15 दिसम्बर, 1975 का अनुपालन किया था । यह सम्मानपूर्वक दलील भी दी गई है कि वर्ष 1975 के बाद, याची ने चौकीदार के पद पर अपनी नियुक्ति के बारे में किसी भी समय कोई विरोध नहीं किया है ।"

7. मैंने विद्वान् काउंसेलों को विस्तार से सुना और अभिलेख और सुसंगत नियमों का परिशीलन किया ।

8. आश्चर्य की बात यह है कि प्रत्यर्थी विभाग ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान मामले में पूर्ण रूप से न टिक पाने वाला आधार लिया है । प्रत्यर्थियों के उत्तर के उद्धरण भाग से यह स्पष्ट होता है कि प्रत्यर्थियों ने संपूर्ण गलत अवधारणा पर यह कार्यवाहियां की हैं कि याची को वर्ष 1966 में पहले तदर्थ आधार पर चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के पद पर नियुक्त किया था और आगे चलकर वर्ष 1975 में उसे अंशकालिक चौकीदार के रूप में नियुक्त किया था क्योंकि देवस्थान विभाग, राजस्थान, नियंत्रण और अधीक्षण के अधीन कार्य कोर्ट आफ वर्ड्स टेम्पल स्वयं समर्थित (निधि) के कर्मचारिवृन्द से संबंधित सेवा नियम, 1959 (जिसे इसे संक्षिप्त में "1959 का नियम" कहा गया है) चपरासी का पद नियमित न होने के कारण स्वयं समर्थित (निधि) द्वारा शासित वर्ग में चपरासी का कोई नियमित पद उपलब्ध नहीं है । यह प्रतीत होता है कि प्रत्यर्थियों ने अपने स्वयं के आदेश तारीख 13 जुलाई, 1966 (उपाबंध 1) को पूरी तरह नकार दिया है और

याची को चपरासी के पद पर तारीख 6 अक्तूबर, 1969 के उपाबंध 2 द्वारा स्थायी कर दिया गया । जब किसी व्यक्ति को चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के रूप में किसी रिक्त पद पर वास्तविक रूप से नियुक्त किया जाता है तो हम यह समझने में असमर्थ हैं कि उसे, उसके विरुद्ध की अनुशासनात्मक कार्रवाई के माध्यम से विधि के प्राधिकार का उपयोग के सिवाय अंशकालिक चौकीदार के पद से वापस किया जा सकता है । वर्ष 1975 में सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग द्वारा पारित आदेश में अंशकालिक चौकीदार के कर्तव्यों के निर्वहन के बारे में उसे कुछ नहीं बताया है किन्तु चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी/चौकीदार के रूप में कर्तव्य के स्वभाव को बदलने का एक आदेश था । इसमें उसके वेतन कम करने का कोई प्रश्न नहीं था या उसको नियमित वेतनमान नहीं दिया गया और निधि नियमों के अधीन अंशकालिक चौकीदार के रूप में केवल उसको निर्धारित मासिक वेतन दिया गया । यह हो सकता है कि क्योंकि अंशकालिक चौकीदार का संदाय वर्ष 1975 में चपरासी के नियमित वेतन 60/- रुपए प्रतिमास से केवल 5 रुपए प्रतिमास कम था जब याची ने तारीख 17 जनवरी, 1975 को पूर्वोक्त अभ्यावेदन उपाबंध 5 फाइल किया था किन्तु समय की अवधि में बहुत बड़ा अन्तर हो गया था यदि नियमित वेतनमान याची को दे दिया गया था तो उसने चतुर्थ वर्ग सेवक के सामान्य वेतन को प्राप्त किया होगा या किसी चपरासी के बजाय निधि नियम, 1959 के अधीन अंशकालिक चौकीदार का निर्धारित वेतन था । इसमें निधि नियम, 1959 के अधीन चपरासी के पद को विशिष्ट रूप से समाप्त करने को अभिलेख पर कोई आदेश नहीं है । इसके विपरीत चपरासियों के वेतनमानों के पुनरीक्षण को 2002 और 2010 में वेतनमानों के पुनरीक्षण के अधीन समय-समय पर दिया गया है ।

9. यहां याची से चौकीदार के रूप में कार्य लेने के लिए प्रत्यर्थियों ने पूर्ण रूप से न्यायसंगत नहीं किया है यद्यपि उसे चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के मूल पद पर विधिवत और नियमित रूप से तथा निर्धारित मासिक वेतन के लिए याची को दिए जा रहे नियमित वेतनमान बदलने के लिए नियुक्त किया था जैसा कि वर्तमान मामले में किया था और प्रत्यर्थी विभाग के भाग पर बकाया निष्क्रियता, याची अपनी सेवानिवृत्ति की तारीख तक केवल 1,000/- रुपए प्रतिमास प्राप्त कर रहा था जबकि अन्य उसके समान लगे हुए चतुर्थ वर्ग पद पर कार्य कर रहे को लगभग 10,000/- रुपए या उससे अधिक दिया जा रहा है ।

10. याची ने अपनी पूरी जिन्दगी भगवान के मंदिर में बिताई है किन्तु भगवान की नाक के नीचे नौकरशाहों के द्वारा विधिविरुद्ध और शरारती कार्य किए गए, उसे 595/- रुपए की न्यूनतम नियत मासिक वेतन से परेशान किया गया या जिसके विरुद्ध उसने विभाग और सरकार के उच्च प्राधिकारी को भी अनेक अभ्यावेदन दिए थे किन्तु यह प्रतीत होता है और चूंकि यह प्रायः संयोग होता है, किसी ने गरीब आदमी की आवाज को नहीं सुना और याची की सही बात को अनसुना कर दिया, जब विद्वान् आयुक्त ने याची के अभ्यावेदन पर इस संबंध में सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग से सुसंगत जानकारी की ईप्सा की थी तो उसके द्वारा विशिष्ट रूप से विलंब किए जाने के तरीके अपनाए गए थे जैसाकि उपरोक्त उल्लिखित उपाबंध 12, 14, 16 और 17 से यह स्पष्ट होता है और सहायक आयुक्त ने यह अभिकथित किया कि चूंकि याची का मामला पुराना और उलझा हुआ था, इसमें उसके मामले का विनिश्चय करने के लिए समय की आवश्यकता होगी । यद्यपि यह प्रकट होता है कि पूर्ववर्ती सहायक आयुक्त ने उपरोक्त उल्लिखित तारीख 26 फरवरी, 2008 के संसूचना उपाबंध 10 द्वारा याची के मामले की अनुग्रहपूर्वक सिफारिश की थी ।

11. इस प्रकार, यह बहुत ही दयनीय स्थिति है कि याची को लगभग तीन वर्ष पहले ही इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाना चाहिए था जब इस मामले को उक्त वर्षों बाद अंतिम निपटान के लिए लिया गया था और संबंधित प्राधिकारियों ने तारीख 8 जुलाई, 2014 के आदेश द्वारा इस न्यायालय में वर्तमान में बने रहने के लिए निदेश दिया था, जिसे पूर्वोक्त कारणों से इस न्यायालय और देवस्थान विभाग, बीकानेर के सहायक आयुक्त द्वारा स्वीकार नहीं किया जा सकता है, वर्तमान पदधारी ने स्पष्ट रूप से यह दलील दी है कि यदि यह न्यायालय समुचित निदेश देता है उन्हें उनको स्वीकार करना होगा और याची को उपयुक्त अनुतोष देना होगा । इस न्यायालय द्वारा तारीख 8 जुलाई, 2014 का अंतरिम आदेश इस प्रकार है :–

> "यह एक विशिष्ट मामला है जहां एक गरीब व्यक्ति है, जो वर्ष 1966 से प्रत्यर्थी राजस्थान सरकार के देवस्थान विभाग में सेवा करता था और वह वर्ष 2010 में सेवानिवृत्त हो गया, चूंकि किसी चपरासी/चौकीदार को किसी प्रकार की पेंशन और अन्य सेवानिवृत्ति

लाभ संदत्त नहीं किए जाते हैं और इसके विपरीत, यद्यपि उसे शुरुआती रूप में चपरासी और चतुर्थ वर्ग सेवक के रूप में नियमित रूप से नियुक्ति दी जाती है किन्तु बाद में, चौकीदार के रूप में 500/- रुपए की धनराशि मासिक रूप से निर्धारित की गई थी । उसे बीकानेर में एक मंदिर में चौकीदार के रूप में कार्य करने की अनुमति दी गई थी । तात्पर्यित आधार यह है कि चूंकि वह एक अंशकालीन चौकीदार था, इस प्रकार, उसे राज्य सरकार के नियमित कर्मचारी के रूप में नहीं माना गया और पेंशन संबंधी लाभ भी उसे संदत्त नहीं किए गए । उसके द्वारा किए गए अभ्यावेदन से कोई समर्थन नहीं मिलता है और इसलिए, वर्तमान रिट याचिका उसके द्वारा फाइल की गई थी ।

प्रथमदृष्ट्या, इससे इस न्यायालय के विवेक को धक्का लगा है । याची के विरुद्ध एक गंभीर न्याय-हत्या होना प्रतीत होता है । इस प्रकार, प्रत्यर्थी देवस्थान विभाग, बीकानेर के सहायक आयुक्त और बीकानेर में पेंशन विभाग से उत्तरदायी अधिकारी को अगली तारीख को इस न्यायालय के समक्ष पेश होने का निदेश दिया है और कारण बताओ कि याची को क्यों न राज्य सरकार के नियमित कर्मचारी के रूप में मानते हुए पेंशनरी और अन्य अधिवर्षिता फायदे देने का हकदार अभिनिर्धारित किया जाए ।

पेंशन विभाग के काउंसेल श्री नरेन्द्र सिंह राजपुरोहित के नाम दर्शाने के बाद तारीख 16 जुलाई, 2014 को प्रस्तुत किया गया और दोनों काउंसेल को अगली तारीख को विभाग के संबंधित अधिकारियों को निश्चय ही सूचना देने का निदेश दिया है ।"

12. प्रत्यर्थियों की ओर से यह दलील दी गई है कि चूंकि "नियंत्रण और देवस्थान विभाग के अधीक्षण, 1959 के अधीन वर्ल्ड मंदिर के स्वयं समर्थित (निधि) के कर्मचारिवृन्द से संबंधित सेवा नियम" चपरासी का पद समाप्त कर दिया और इस प्रकार, याची को अंशकालिक चौकीदार के कर्तव्य दिए गए थे और बिल्कुल ठीक नहीं है, स्वीकृततः, न तो कोई विशिष्ट आदेश उक्त निधि नियम, 1959 के अधीन पद को समाप्त करने के लिए पारित किया और न ही अंशकालिक चौकीदार के रूप में उसकी नियुक्ति का कोई विशिष्ट आदेश प्रत्यर्थी विभाग के किसी सक्षम प्राधिकारी द्वारा पारित किया है । चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के काडर को 1959 के उक्त

निधि नियम के अधीन सम्मिलित करके स्वीकार किया है और इन निधि नियमों के द्वारा कर्मचारियों के वेतन का पुनरीक्षण समय-समय पर किया जाता है तथा इस न्यायालय का ध्यान अधिसूचना संख्या प.4.(1)देव/96 तारीख 18/1/2002 और अधिसूचना संख्या प.4.(4)देव/10 तारीख 30.8.2010 द्वारा देवस्थान निधि कर्मचारी (पुनरीक्षण वेतनमान) के अधीन जारी की गई कतिपय अधिसूचना की ओर खींचा है । परिणामस्वरूप, यद्यपि याची 1959 के उक्त निधि नियम के अंतर्गत आता है तो अंशकालिक चौकीदार अपनी अधिवर्षिता की आयु तक बना रहना न्यायोचित नहीं है और उसे उक्त नियम के अधीन चतुर्थ वर्ग सेवक के रूप में आमेलित किया जाना चाहिए ।

इसमें यह भी कहा जा सकता है कि यदि याची को कभी भविष्य निधि का सदस्य नहीं बनाया गया है और न तो उक्त भविष्य निधि के अंशदान और न ही प्रत्यर्थी राज्य ने उसके भविष्य निधि के लिए उसके अंश का अंशदान काटा है, बजाय इसके उसे प्रत्यर्थी राज्य से भविष्य निधि देय राशि प्राप्त हुई है । याची चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के लिए पेंशन संदत्त पाने का हकदार होगा और याची को भविष्य निधि बकाया या वैकल्पिक पेंशन में से उनमें से किसी एक से वंचित नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार, प्रत्यर्थियों की दलील को खारिज करते हुए, यह निदेश दिया है कि प्रत्यर्थी विभाग, याची द्वारा जमा किए गए भविष्य निधि को वापस करने के लिए समुचित आदेश पारित करेगा, यदि ऐसी धनराशि याची के वेतन से काटी गई थी याची के पेंशन मामले को तैयार करेगा और उसे याची को नियमित पेंशन के संदाय के लिए पेंशन विभाग को आज की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर प्रेषित करे ।

13. यदि याची ने सुसंगत समय पर भविष्य निधि में अंशदान किया तो केवल पेंशन स्कीम उसको लागू नहीं हो सकती है । लेकिन उस मामले में वह अपनी भविष्य निधि बकाया ब्याज सहित पाने का हकदार होगा । निधि नियम, 1959 का नियम 25 यह उपबंध करता है कि स्टाफ का प्रत्येक स्थायी सदस्य भविष्य निधि के लिए चंदा देने के लिए अपेक्षित होगा । नियम, 1959 का नियम 25 इस प्रकार है :–

> "25. सेवानिवृत्ति लाभ – (क) स्टाफ भविष्य निधि में चंदा देगा ।

(ख) इन नियमों के आरंभ होने की तारीख के बाद स्टाफ का प्रत्येक स्थायी सदस्य मंदिर या संस्था के लिए भविष्य निधि हेतु चंदा देने के लिए अपेक्षित होगा जिसके अधीन वह छह के अनुपात में नियोजित है और नियमानुसार उसके मूल वेतन का एक तिहाई प्रतिशत उसके अधीन किया गया है । मंदिर या संस्था उसके चंदे की धनराशि के बराबर धनराशि प्रत्येक चंदाकर्ता के भविष्य निधि में अंशदान करेगा ।

(ग) वह सेवानिवृत्त सरकारी सेवक जो पुनः नियोजित हुआ है भविष्य निधि में चंदा देने का हकदार नहीं होगा ।"

चूंकि अभिलेख पर रखी गई सामग्री से यह स्पष्ट नहीं होता है कि क्या याची उक्त विभाग के भविष्य निधि का कभी सदस्य था या नहीं, निदेश दिए गए ।

14. इस प्रकार, इस न्यायालय ने अपना मत व्यक्त किया है कि वर्तमान मामले में प्रत्यर्थी विभाग द्वारा बहुत बड़ा अन्याय किया है और याची कतिपय रूप से संदेह के परे सभी निर्धारण के साथ चतुर्थ वर्ग के नियमित वेतनमान का हकदार था और नियमों के अनुसार वेतन का पुनरीक्षण जिसमें छठे वेतन आयोग की सिफारिश पर वेतन का पुनरीक्षण भी सम्मिलित है तद्नुसार परिकलित और संदत्त किए जाने योग्य है । चूंकि याची को प्रत्यर्थी विभाग की चूक से अधिवर्षिता बकाया में से सेवानिवृत्ति के बाद एक फूटी कौड़ी का संदाय नहीं किया गया है, याची कुछ प्रतिकर का भी हकदार है ।

15. तद्नुसार, वर्तमान रिट याचिका मंजूर किए जाने योग्य है और उसे मंजूर किया जाता है । प्रत्यर्थियों को यह निदेश दिया जाता है कि वे याची से देवस्थान विभाग द्वारा निधि नियम, 1959 के अधीन उसके द्वारा अनुरक्षित और प्रशासित मंदिरों में चपरासी/चौकीदार के रूप में लिए गए कार्य पर ध्यान देत हुए याची को सतत रूप से चतुर्थ वर्ग कर्मचारी अर्थात् चपरासी के रूप में नियोजित समझे और वेतन निर्धारित करने के लिए उपयुक्त आदेश पारित करने के बाद, चूंकि यदि याची ने शुरू से ही चतुर्थ वर्ग काडर में चपरासी के रूप कार्य किया था जिसमें संदाय का पुनरीक्षण और उसको पहले संदाय की जा चुकी धनराशि समायोजन करने के बाद

सम्मिलित है, उसको गलती से अंशकालिक चौकीदार मानते हुए शेष धनराशि आज की तारीख से तीन मास के भीतर संदत्त की जाए । संदाय और अधिवर्षिता लाभ के बकाया पर ब्याज की हानि के लिए प्रत्यर्थी आज की तारीख से तीन मास के भीतर याची को एक लाख रुपए की एकमुश्त धनराशि प्रतिकर के रूप में संदाय करेंगे ।

16. याची को चतुर्थ वर्ग कर्मचारी के रूप में पेंशन देने के मामले में निधि नियम, 1959 के नियम 25 के अनुसार भविष्य निधि का सदस्य होना उसके तथ्य पर निर्भर करेगा या नहीं । यदि याची ने भविष्य निधि खाता नहीं खोला था और उसके व विभाग द्वारा अभिदाय कभी नहीं दिया गया है तो वह पेंशन नियम, 1996 के अनुसार एक चतुर्थ वर्ग सेवक के रूप में पेंशन पाने का हकदार हो सकता है चूंकि इसमें 1959 निधि नियम के अधीन राज्य सरकार के चतुर्थ वर्ग के लिए पेंशन देने के विरुद्ध निषेध नहीं है ।

17. इस प्रकार, इस पहलू पर, प्रत्यर्थी सहायक आयुक्त, देवस्थान विभाग, बीकानेर याची या उसके अधिकृत प्रतिनिधि को सुनने का अवसर देने के बाद आज से तीन माह की अवधि के भीतर समुचित आदेश पारित करेगा । तथापि, यदि वह भविष्य निधि का सदस्य था और ऐसे भविष्य निधि बकाया को उसकी सेवानिवृत्ति के समय उसे संदत्त किया गया तो याची किसी प्रकार की पेंशन का हकदार नहीं होगा । यदि उसका भविष्य निधि खाता खुला है किन्तु उसका बकाया संदत्त नहीं किया है तो उसे आज की तारीख से तीन माह की अवधि के भीतर संदत्त किया जाए ।

18. तद्नुसार रिट याचिका मंजूर की जाती है । खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की प्रति संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

रिट याचिका मंजूर की गई ।

मही./पा.

जयपुर विकास प्राधिकरण

बनाम

श्री बाबू लाल सैनी और अन्य

तथा

छोटे लाल

बनाम

राजस्थान राज्य और अन्य

तारीख 31 जुलाई, 2015

मुख्य न्यायमूर्ति सुनील अंबवानी और न्यायमूर्ति वीरेन्द्र सिंह सिरधाना

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 [सपठित सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 11 तथा राजस्थान भूमि अर्जन अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6] – भू-स्वामी द्वारा भूमि अर्जन की कार्यवाहियों को लगभग तीन दशक पश्चात् चुनौती देते हुए रिट याचिका फाइल किया जाना – याचिका अतिविलंब और कतिपय तथ्यों को छिपाने के आधार पर एकल न्यायपीठ, खंड न्यायपीठ और उच्चतम न्यायालय तक खारिज हो जाना – भूमि के अर्जन की कार्यवाहियों को चुनौती देते हुए पुनः रिट याचिका फाइल किया जाना – एकल न्यायपीठ द्वारा रिट याचिका मंजूर किया जाना – पूर्ववर्ती रिट याचिका खारिज हो जाने और निर्णय उच्चतम न्यायालय तक अंतिम हो जाने के पश्चात् उसी याची या उसके हित-उत्तराधिकारी को मामला पुनः उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 114 [सपठित राजस्थान भूमि अर्जन अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6] – पुनर्विलोकन आवेदन – भू-स्वामी द्वारा भूमि अर्जन की कार्यवाहियों को लगभग तीन दशक पश्चात् चुनौती देते हुए रिट याचिका फाइल करना – रिट याचिका अतिविलंब और कतिपय तथ्यों को छिपाने के आधार पर उच्चतम न्यायालय तक खारिज हो जाना – याची द्वारा खंड न्यायपीठ के निर्णय के पुनर्विलोकन के लिए आवेदन फाइल किया जाना – याची द्वारा खंड न्यायपीठ के निर्णय को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय के समक्ष

रखे गए आधारों पर उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा पुनर्विलोकन आवेदन में पुनः विचार करना उचित नहीं है और न ही वह इसके लिए स्वतंत्र है ।

वर्तमान मामले में तथ्य यह हैं कि जयपुर विकास प्राधिकरण द्वारा जयपुर में एक स्टेडियम और उच्च न्यायालय के नए भवन के निर्माण के लिए भूमि का अर्जन करने हेतु राजस्थान भूमि अर्जन अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6 के अधीन क्रमशः तारीख 13 मई, 1960 और 3 मई, 1961 को अधिसूचनाएं जारी की गईं थीं और जिसके लिए तारीख 9 जनवरी, 1964 को एक अधिनिर्णय किया गया था । भू-स्वामी द्वारा अधिनिर्णय के अधीन की संपूर्ण रकम प्रत्याहृत कर ली गई और प्राधिकरण द्वारा संपूर्ण भूमि का कब्जा ले लिया गया । भू-स्वामी द्वारा उस करार को, जिसके अधीन भू-स्वामी को प्रतिकर के बदले में कुछ भूखंड दिए जाने का करार हुआ था, कार्यान्वित करने के लिए अधिनियम की धारा 18 के अधीन आवेदन के साथ-साथ एक सिविल वाद भी फाइल किया गया था । उसके द्वारा भूमि के अर्जन के 28 वर्ष पश्चात् एक रिट याचिका फाइल की गई, जो अतिविलंब तथा सिविल वाद फाइल करने के तथ्य को छिपाने के आधार पर तारीख 15 मार्च, 1994 को खारिज कर दी गई । उसके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय के विरुद्ध डी. बी. सिविल विशेष अपील (रिट) फाइल की गई, जिसे तारीख 12 मई, 1994 को खारिज कर दिया गया । याची (बाबू लाल पुत्र छोटे लाल) द्वारा डी. बी. सिविल विशेष अपील में तारीख 12 मई, 1994 को पारित किए गए खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए उच्चतम न्यायालय में विशेष इजाजत याचिका भी फाइल की गई, जिसे तारीख 15 सितम्बर, 1995 को खारिज कर दिया गया । इसके पश्चात्, उच्च न्यायालय में खंड न्यायपीठ के उक्त निर्णय के विरुद्ध डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन, निर्णय का पुनर्विलोकन करने के लिए, फाइल किया गया । पुनर्विलोकन आवेदन आदेशों के लिए एक खंड न्यायपीठ के समक्ष आया, जिस पर नोटिस जारी किए गए । खंड न्यायपीठ ने तारीख 18 मई, 2000 को पुनर्विलोकन आवेदन एकल न्यायपीठ में आसीन न्यायाधीश के समक्ष रखे जाने का निदेश दिया और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह आवेदन ग्रहण किया गया और यह निदेश दिया गया कि पुनर्विलोकन आवेदन को भूमि अर्जन की कार्यवाहियों के मूल अभिलेख के साथ अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 18 मई, 2000

के आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका फाइल की गई, जिसे सिविल अपील में परिवर्तित किया गया । उच्चतम न्यायालय ने तारीख 9 जनवरी, 2001 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि पुनर्विलोकन आवेदन केवल खंड न्यायपीठ द्वारा सुना जा सकता था न कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा और तद्नुसार, अपील मंजूर करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पुनर्विलोकन आवेदन पर तारीख 18 मई, 2000 और 2 जून, 2000 को पारित किए गए आक्षेपित आदेशों को अपास्त कर दिया और मामला खंड न्यायपीठ द्वारा सुने जाने का निदेश दिया । इस पुनर्विलोकन आवेदन के लंबित रहने के दौरान श्री बाबू लाल पुत्र छोटे लाल द्वारा भूमि के अर्जन की कार्यवाहियों को इस आधार पर चुनौती देते हुए एक रिट याचिका फाइल की गई कि अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6 के अधीन जारी की गई अधिसूचनाओं में गांव भोजपुरा, जयपुर में स्थित खसरा सं. 35 का संपूर्ण क्षेत्र सम्मिलित नहीं था । संपूर्ण भूमि के लिए प्रतिकर का अवधारण अनवधानता से किया गया था और याची अभी भी यह चुनौती देने का हकदार है कि खसरा सं. 35 में से 3 बीघा, 10 बिस्वा माप की भूमि का कभी अर्जन नहीं किया गया था और उस भूमि के कब्जे के लिए दावा किया । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 4 फरवरी, 2000 के निर्णय द्वारा रिट याचिका इस निष्कर्ष के साथ मंजूर की कि पूर्ववर्ती दौर की मुकदमेबाजी में रिट याचिका, डी. बी. सिविल विशेष अपील और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील के लिए विशेष इजाजत याचिका गुणागुण के आधार पर विनिश्चित नहीं की गई थी । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने रिट याचिका मंजूर करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि खसरा सं. 35 के 3 बीघा, 10 बिस्वा माप वाले भाग के लिए भूमि अर्जन अधिनियम की न तो धारा 4 के अधीन और न ही इसके बाद अधिनियम की धारा 6 के अधीन कोई अधिसूचना जारी की गई है या जारी की गई थी । अधिसूचना केवल 6 बिस्वा भूमि के लिए जारी की गई थी और इस प्रकार खसरा सं. 35 में की 3 बीघा, 10 बिस्वा माप की भूमि कदापि अर्जन कार्यवाहियों की विषयवस्तु नहीं बनी थी और याची प्रत्यर्थियों की किसी कार्यवाही से आबद्ध नहीं है । जयपुर विकास प्राधिकरण ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के उक्त निर्णय को एक डी. बी सिविल विशेष अपील फाइल करके इस आधार पर चुनौती दी कि विद्वान् एकल न्यायाधीश संपूर्ण मामले को पुनः नहीं खोल सकता था, क्योंकि उन्हीं अधिसूचनाओं के विरुद्ध फाइल की गई पूर्ववर्ती

रिट याचिका खारिज कर दी गई थी और अतिविलंब तथा तथ्यों को छिपाने के आधार पर रिट याचिका खारिज होने के पश्चात् याची उस संपूर्ण मुकदमेबाजी को पुनः खोलने का हकदार नहीं है, जिसका उच्चतम न्यायालय तक निपटान हो गया है । उच्च न्यायालय द्वारा सिविल विशेष अपील मंजूर करते हुए और पुनर्विलोकन आवेदन खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया था कि छोटे लाल को अर्जन की कार्यवाहियों की पूरी जानकारी थी, जिनका अधिनियम, 1953 की धारा 6 के अधीन तारीख 3 मई, 1961 को जारी की गई अधिसूचना और तारीख 9 जनवरी, 1964 को किए गए उस अधिनिर्णय के साथ समापन हुआ था, जिसके द्वारा प्रतिकर भी प्रत्याहृत कर लिया गया था और अधिनियम, 1953 की धारा 18 के अधीन कार्यवाही की गई थी । श्री छोटे लाल ने 1000 वर्ग गज और 2000 वर्ग गज के भूखंडों के आबंटन और कब्जे के लिए जयपुर विकास प्राधिकरण के साथ हुए करार के प्रवर्तन के लिए सिविल वाद फाइल करने के तथ्य को भी छिपाया था । अर्जन की कार्यवाहियों की पूर्ण जानकारी होते हुए उसने रिट याचिका फाइल करने के लिए 28 वर्षों तक प्रतीक्षा की और इस अंतराल में उसने अर्जन की गई भूमि के टुकडों का क्रय करने के लिए पक्षकारों के साथ कई करार किए । रिट याचिका अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर भी खारिज की गई थी, क्योंकि श्री छोटे लाल ने संपूर्ण भूमि के लिए प्रतिकर स्वीकार किया था और वह उच्चतम न्यायालय तक मुकदमा हार चुका था और इस प्रकार वह अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6 के अधीन अधिसूचनाओं को भूमि, जिसका अर्जन किया गया था, के क्षेत्र के संबंध में कुछ त्रुटियों के आधार पर चुनौती नहीं दे सकता था । रिट याचिका, जो अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर खारिज की गई थी, वह तीन दशकों के बाद अधिसूचनाओं को इस आधार पर चुनौती देते हुए कि पूर्व में मामला गुणागुण के आधार पर विनिश्चित नहीं किया गया था, अलग से एक रिट याचिका फाइल करके संपूर्ण मामले को पुनः उठाने का आधार नहीं हो सकती है । नागरिकों को रिट याचिका फाइल करने का असाधारण उपचार इस शर्त के अध्यधीन उपलब्ध है कि रिट याचिका युक्तियुक्त समयावधि के भीतर फाइल की जाए । यद्यपि, इस पर परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होता है, फिर भी न्यायनिर्णीत विधि से यह स्पष्ट होता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका ऐसी अयुक्तियुक्त अवधि के पश्चात् ग्रहण नहीं की जा

सकती है, जिसके लिए याची द्वारा कोई विधिमान्य कारण न दिया जाए । जब एक बार रिट याचिका अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर खारिज कर दी गई थी और विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय की अभिपुष्टि खंड न्यायपीठ और उसके पश्चात् माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कर दी गई थी, फिर उसी याची या उसके हित-उत्तराधिकारी को मामला एकल न्यायाधीश के समक्ष पुनः उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । आन्वयिक प्राङ न्याय के सिद्धांतों में सन्निविष्ट पुरोबंद के सिद्धांत मामले को पुनः खोलने का प्रयत्न करने पर लागू होते हैं । जब एक बार रिट याचिका खारिज कर दी गई थी और निर्णय उच्चतम न्यायालय तक अंतिम हो गया था, फिर उसी व्यक्ति या उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति को, उसी भूमि का विक्रय करने का करार करके उसके द्वारा किए गए कपटपूर्ण संव्यवहारों को बचाने हेतु, मामले को पुनः उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने भूमि के अर्जन की कार्यवाहियों को 37 वर्षों की अवधि के पश्चात् त्रुटिपूर्ण घोषित करके और कार्यवाहियों को अभिखंडित करके भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता के बाहर जाकर कार्य किया है । न्यायालय का यह भी निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उस विलंब को निर्दिष्ट नहीं किया और यहां तक कि टीका-टिप्पणी तक नहीं की, जिसके साथ याची पूर्ववर्ती मुकदमेबाजी के दौर में इस न्यायालय के समक्ष आया था और न ही वह दूसरे दौर की मुकदमेबाजी में ऐसे लंबे विलंब की निरंतरता को माफ कर सकते थे । इस न्यायालय द्वारा पूर्व में अभिलिखित किए गए यह निष्कर्ष कि अतिविलंब के लिए पर्याप्ततः स्पष्टीकरण नहीं दिए गए हैं, विद्वान् एकल न्यायाधीश पर समान रूप से आबद्धकर थे और फाइल की गई द्वितीय रिट याचिका भी अतिविलंब द्वारा वर्जित थी जिसके लिए, अधिसूचनाओं में औपचारिक त्रुटि होने के सिवाय, कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया । याची को, भूमि के लिए किए गए अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर स्वीकार कर लेने के पश्चात्, अधिसूचना में त्रुटि होने का अभिवाक् करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और उसने प्रतिकर के बदले कुछ भूखंडों का आबंटन करने के लिए जयपुर विकास प्राधिकरण के साथ करार किया था और जिसके लिए उसने एक सिविल वाद फाइल किया था जो तारीख 14 फरवरी, 1992 के निर्णय और डिक्री द्वारा 1000 वर्ग गज का भूखंड आबंटन करने के लिए डिक्रीत किया गया था,

जिसके विरुद्ध एक प्रथम अपील फाइल की गई थी और उसे भी तारीख 2 जून, 1992 को खारिज कर दिया गया था । (पैरा 18, 19, 20 और 21)

जहां तक 1997 की डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन का संबंध है, यह न्यायालय उस निर्णय का पुनर्विलोकन करने के लिए कोई ठोस आधार नहीं पाता है, जिसके द्वारा इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 12 मई, 1994 को विशेष अपील खारिज कर दी गई थी । यह पुनर्विलोकन आवेदन उन्हीं आधारों पर, अर्थात् यह निष्कर्ष गलत है कि याची न्यायालय में निर्दोष नहीं आया है और अतिविलंब के लिए दोषी है और यह कि भूमि का कब्जा याची के पास है, फाइल किया गया है । इस न्यायालय के मत में, जब एक बार खंड न्यायपीठ के तारीख 12 मई, 1994 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका, जो अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 19954/95- बाबू लाल बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य थी, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितम्बर, 1995 को, कोई पुनर्विलोकन आवेदन फाइल करने की स्वतंत्रता दिए बिना, खारिज कर दी गई थी, तो फिर याची खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध पुनर्विलोकन आवेदन फाइल करने के लिए स्वतंत्र नहीं था, और न ही उच्च न्यायालय के लिए यह उचित है कि वह पुनर्विलोकन आवेदन पर उन्हीं आधारों पर विचार करे जो खंड न्यायपीठ के निर्णय को चुनौती देते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष बताए गए थे । इस न्यायालय ने यह नहीं पाया है कि पुनर्विलोकन आवेदन में कोई नया आधार लिया गया है और इस प्रकार खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका खारिज होने के पश्चात् इस बात की स्वतंत्रता नहीं रह जाती है कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा निर्णय का पुनर्विलोकन किया जाए । (पैरा 22 और 23)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2000 की डी.बी. सिविल विशेष अपील सं. 55 और इसके साथ 1997 की डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन सं. 1997.

1996 की सिविल रिट याचिका (एस. बी.) सं. 2383 में एकल न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध सिविल विशेष अपील (डी. बी.) और 1994 की विशेष रिट अपील सं. 245 में खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध पुनर्विलोकन आवेदन ।

अपीलार्थी की ओर से श्री महेन्द्र गोयल

प्रत्यर्थी सं. 5 की ओर से श्री आर. एन. विजय

आवेदकों की ओर से श्री शशि शेखर गौड़

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति वीरेन्द्र सिंह सिरधाना ने दिया ।

न्या. सिरधाना – हमने पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

2. इस न्यायालय की एकल खंड न्यायपीठ द्वारा 1994 की डी. बी. विशेष अपील (रिट) सं. 245 में तारीख 12 मई, 1994 को पारित किए गए निर्णय से उद्भूत 1997 की डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन सं. 200 विचार करने के लिए इस न्यायालय के समक्ष लंबित है ।

3. चूंकि अंतर्वलित विवाद्यक लगभग समान हैं, इसलिए हमने इस न्यायालय के समक्ष लंबित 2000 की डी. बी. सिविल विशेष अपील सं. 55 की भी सुनवाई की, जो 1996 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 2383 में तारीख 4 फरवरी, 2000 को पारित किए गए विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है और भूमि के अर्जन के लिए उन्हीं कार्यवाहियों के संबंध में है ।

4. इस मामले के तथ्य संक्षेप में यह हैं कि स्टेडियम और उच्च न्यायालय के नए भवन के निर्माण के लिए भूमि का अर्जन करने हेतु राजस्थान भूमि अर्जन अधिनियम, 1953 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "अधिनियम, 1953" कहा गया है) की धारा 4 और 6 के अधीन क्रमशः तारीख 13 मई, 1960 और 3 मई, 1961 को अधिसूचनाएं जारी की गईं थीं और जिसके लिए तारीख 9 जनवरी, 1964 को एक अधिनिर्णय किया गया था । अधिनिर्णय के अधीन की संपूर्ण रकम प्रत्याहृत कर ली गई और संपूर्ण भूमि का कब्जा ले लिया गया । उच्च न्यायालय के नए भवन तथा स्टेडियम का पहले ही निर्माण हो चुका है और उपयोग में है । भू-स्वामी द्वारा उस करार को, जिसके अधीन भू-स्वामी को प्रतिकर के बदले में कुछ भूखंड दिए जाने का करार हुआ था, कार्यान्वित करने के लिए अधिनियम, 1953 की धारा 18 के अधीन आवेदन के साथ-साथ एक सिविल वाद भी फाइल किया गया ।

5. भूमि के अर्जन के 28 वर्ष पश्चात् एक रिट याचिका (1992 की एस. बी. सिविल रिट याचिका सं. 2935) फाइल की गई । यह रिट

याचिका अतिविलंब तथा सिविल वाद फाइल करने के तथ्य को छिपाने, जिसमें भूखंडों का आबंटन करने तथा कब्जा देने के लिए हुए करार का निष्पादन करने के अनुतोष की ईप्सा की गई थी, के आधार पर तारीख 15 मार्च, 1994 को खारिज कर दी गई ।

6. विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 15 मार्च, 1994 के निर्णय के विरुद्ध 1994 की डी. बी. सिविल अपील (रिट) सं. 245 फाइल की गई, जिसे रिट याचिका को अतिविलंब तथा तथ्यों को छिपाने दोनों के आधार पर खारिज करने के आदेश को कायम रखते हुए तारीख 12 मई, 1994 को खारिज कर दिया गया । श्री बाबू लाल पुत्र छोटे लाल (याची) ने राजस्थान राज्य के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में 1994 की डी. बी. सिविल विशेष अपील सं. 254 में तारीख 12 मई, 1994 को पारित किए गए खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका, 1995 की अपील (सिविल) सं. 19954, भी फाइल की, जिसे तारीख 15 सितम्बर, 1995 को खारिज कर दिया गया । अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका को खारिज करने वाला आदेश नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"विशेष इजाजत याचिका खारिज की जाती है ।"

7. खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध 1997 की डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन निर्णय का पुनर्विलोकन करने के लिए फाइल किया गया, जो अब सुनवाई के लिए आया है ।

8. अपील करने के लिए इजाजत याचिका तारीख 15 सितम्बर, 1995 को खारिज होने के पश्चात्, पुनर्विलोकन आवेदन आदेशों के लिए एकल खंड न्यायपीठ के समक्ष आया, जिसमें यह आक्षेप किया गया कि अपील करने के लिए इजाजत याचिका खारिज होने के पश्चात् पुनर्विलोकन आवेदन अब कायम रखने योग्य नहीं है । पुनर्विलोकन आवेदन विचार करने के लिए एकल खंड न्यायपीठ के समक्ष आया, जिस पर नोटिस जारी किए गए और उसके पश्चात् मामला तत्कालीन माननीय कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश की अध्यक्षता वाली एक अन्य खंड न्यायपीठ के समक्ष आया, जिसमें साथी न्यायाधीश वह थे जो उस खंड न्यायपीठ में एक न्यायाधीश थे जिन्होंने पुनर्विलोकनाधीन निर्णय दिया था । खंड न्यायपीठ, जिसकी अध्यक्षता माननीय कार्यकारी मुख्य न्यायाधीश द्वारा की गई, ने तारीख 18 मई, 2000 को राजस्थान उच्च न्यायालय नियम, 1952 के

नियम 64 के प्रतिनिर्देश करते हुए पुनर्विलोकन आवेदन को एकल न्यायपीठ में आसीन माननीय न्यायाधीश अर्जुन मदान के समक्ष रखे जाने का निदेश दिया और विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा यह आवेदन तारीख 2 जून, 2000 को ग्रहण किया गया और यह निदेश दिया गया कि पुनर्विलोकन आवेदन को भूमि अर्जन की कार्यवाहियों के मूल अभिलेख के साथ अंतिम सुनवाई के लिए सूचीबद्ध किया जाए । विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 18 मई, 2000 के आदेश के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 11350/2000 फाइल की गई, जिसे 2001 की सिविल अपील सं. 339 जयपुर विकास प्राधिकरण बनाम छोटे लाल (मृत) और अन्य, में परिवर्तित किया गया । उच्चतम न्यायालय ने तारीख 9 जनवरी, 2001 के अपने आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित किया कि पुनर्विलोकन आवेदन केवल खंड न्यायपीठ द्वारा सुना जा सकता था न कि विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा और तद्नुसार, अपील मंजूर करते हुए विद्वान् एकल न्यायाधीश द्वारा पुनर्विलोकन आवेदन पर तारीख 18 मई, 2000 और 2 जून, 2000 को पारित किए गए आक्षेपित आदेशों को अपास्त कर दिया और मामला खंड न्यायपीठ द्वारा सुने जाने का निदेश दिया ।

9. इस पुनर्विलोकन आवेदन के लंबित रहने के दौरान श्री बाबू लाल पुत्र छोटे लाल द्वारा भूमि के अर्जन की कार्यवाहियों को इस आधार पर चुनौती देते हुए एक रिट याचिका फाइल की गई कि अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6 के अधीन जारी की गई अधिसूचनाओं में गांव भोजपुरा, जयपुर में स्थित खसरा सं. 35 का संपूर्ण क्षेत्र सम्मिलित नहीं था । संपूर्ण भूमि के लिए प्रतिकर का अवधारण अनवधानता से किया गया था और याची अभी भी यह चुनौती देने का हकदार है कि खसरा सं. 35 में से 3 बीघा, 10 बिस्वा माप की भूमि का कभी अर्जन नहीं किया गया था और उस भूमि के कब्जे के लिए दावा किया ।

10. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने तारीख 4 फरवरी, 2000 के निर्णय द्वारा रिट याचिका इस निष्कर्ष के साथ मंजूर की कि पूर्ववर्ती दौर की मुकदमेबाजी में रिट याचिका, डी. बी. सिविल विशेष अपील और माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील के लिए विशेष इजाजत याचिका गुणागुण के आधार पर विनिश्चित नहीं की गई थी । पूर्ववर्ती रिट याचिका अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर खारिज की गई थी । यह भी अभिनिर्धारित किया गया कि प्राङ न्याय का सिद्धांत लागू नहीं होता है, क्योंकि पूर्ववर्ती रिट याचिका में निर्णय पक्षकारों के मध्य गुणागुण के आधार

पर नहीं किया गया था । विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि खसरा सं. 35 के 3 बीघा, 10 बिस्वा माप वाले भाग के लिए भूमि अर्जन अधिनियम की न तो धारा 4 के अधीन और न ही इसके बाद अधिनियम की धारा 6 के अधीन कोई अधिसूचना जारी की गई है या जारी की गई थी । अधिसूचना केवल 6 बिस्वा भूमि के लिए जारी की गई थी और इस प्रकार खसरा सं. 35 में की 3 बीघा, 10 बिस्वा माप की भूमि का भाग कदापि अर्जन कार्यवाहियों की विषयवस्तु नहीं बना था । अतः, उक्त खसरा संख्या और क्षेत्र के संबंध में किया गया कोई अधिनिर्णय या संदत्त किया गया कोई प्रतिकर स्वयमेव अकृत है और याची, प्रत्यर्थियों की किसी कार्रवाई से आबद्ध नहीं है । तद्नुसार, रिट याचिका, राज्य सरकार को इस बात के लिए स्वतंत्र करते हुए मंजूर की गई कि राज्य यदि अभी भी भूमि का अर्जन करना चाहता है तो वह भूमि अर्जन अधिनियम के उपबंधों का पालन करने के पश्चात्, विधि के अनुसार, भूमि का अर्जन करने के लिए भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 4 के अधीन अधिसूचना जारी करने के लिए स्वतंत्र होगा ।

11. जयपुर विकास प्राधिकरण ने विद्वान् एकल न्यायाधीश के तारीख 4 फरवरी, 2000 के निर्णय को इस आधार पर चुनौती दी कि विद्वान् एकल न्यायाधीश संपूर्ण मामले को पुनः नहीं खोल सकता था, क्योंकि उन्हीं अधिसूचनाओं के विरुद्ध फाइल की गई पूर्ववर्ती रिट याचिका खारिज कर दी गई थी और अतिविलंब तथा तथ्यों को छिपाने के आधार पर रिट याचिका खारिज होने के पश्चात् याची उस संपूर्ण मुकदमेबाजी को पुनः खोलने का हकदार नहीं है, जिसका उच्चतम न्यायालय तक निपटान हो गया है । विद्वान् एकल न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय तक निपटाए गए मामले का इस आधार पर कि मुकदमेबाजी के पूर्ववर्ती दौर में मामले के गुणागुण नहीं देखे गए थे और एक त्रुटियुक्त अधिसूचना को विधिमान्य नहीं ठहराया जा सकता है, पुनर्विलोकन करने की अधिकारिता नहीं थी ।

12. यहां यह उल्लेख करना उपयोगी होगा कि रिट याचिका, डी. बी. सिविल विशेष अपील और उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील के लिए विशेष इजाजत याचिका खारिज होने के पश्चात् आवेदक श्री बाबू लाल सैनी, जो हमारे समक्ष पुनर्विलोकन आवेदक है, द्वारा अर्जन कार्यवाहियों के रद्दकरण के लिए किए गए आवेदन पर भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा एक आदेश पारित किया गया । भूमि अर्जन अधिकारी द्वारा आवेदन पर सुनवाई तारीख 25 मई, 1994 को की गई और अभिलेखों का परिशीलन करने के पश्चात्

उसने यह आदेश पारित किया कि भूमि अर्जन अधिनियम का अनुपालन किए बिना भूमि का अर्जन किया गया था, इसलिए न तो किसी भूमि का अर्जन किया जा सकता था और न ही उसका कब्जा लिया जा सकता था । इसलिए उसने यह घोषित किया कि केन्द्रीय भूमि अर्जन अधिनियम की धारा 11क के अधीन भूमि अर्जन की कार्यवाहियां अकृत हो गईं हैं और अर्जन की कार्यवाहियां स्वतः व्यपगत होने के कारण बंद की जाती हैं ।

13. जयपुर विकास प्राधिकरण ने भूमि अर्जन अधिकारी के विरुद्ध यह अभिकथन करते हुए एक अवमान याचिका फाइल की कि उन्हीं अधिसूचनाओं के विरुद्ध रिट याचिका, विशेष अपील और अपील के लिए विशेष इजाजत याचिका खारिज हो जाने के पश्चात् उसे ऐसी शक्ति या प्राधिकार नहीं था कि यह घोषित करे कि भूमि के अर्जन की कार्यवाहियां अकृत हो गईं हैं और अर्जन की कार्यवाहियां व्यपगत होने के कारण बंद की जाती हैं । उच्च न्यायालय ने तारीख 30 सितम्बर, 1994 को श्री हरिनाथ शर्मा (आर. ए. एस.), भूमि अर्जन अधिकारी के विरुद्ध कार्यवाहियों में निष्कर्ष निकालने के पश्चात् उसे न्यायालय अवमान अधिनियम के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया और उसे न्यायालय परिसर से सीधे ही कारागार में भेज दिया । श्री हरिनाथ शर्मा ने अवमान कार्यवाहियों में उच्च न्यायालय द्वारा पारित किए गए निर्णय को माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष 1994 की सिविल अपील सं. 6501 में चुनौती दी, जिसका तारीख 25 अप्रैल, 1995 को विनिश्चय किया गया । उच्चतम न्यायालय ने अपील मंजूर की और आक्षेपित आदेश को इस आधार पर अपास्त कर दिया कि भले ही यह ऐसा मामला था जहां दो मत संभव थे, तो भी अधिकारी ने न्यायालय के आदेश की जानबूझकर अवज्ञा करते हुए कार्य नहीं किया था ताकि उसे अवमान के लिए घसीटा जाए । ऐसी स्थिति में, न्यायालय को उसकी क्षमा याचना को स्वीकार और मामले को समाप्त कर देना चाहिए था, बजाय इसके उसको न केवल दंडित किया गया अपितु यह भी देखा कि वह न्यायालय से सीधे कारागार में जाए ।

14. हमने जयपुर विकास प्राधिकरण की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल तथा प्रत्यर्थी सं. 5, जिसने भूमि के भाग का क्रय करने के लिए श्री बाबू लाल सैनी के साथ करार किया था, की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल को सुना ।

15. पुनर्विलोकन आवेदन और विशेष अपील लंबी अवधि से लंबित थे और पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले काउंसेलों द्वारा लिए गए अनेक

स्थगनों के कारण सुनवाई नहीं हो सकी थी । श्री बाबू लाल सैनी का पूर्व में जिस काउंसेल द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया था, उसे राजस्थान राज्य द्वारा पहले ही अपर महाधिवक्ता नियुक्त किया जा चुका है और इस प्रकार श्री बाबू लाल सैनी को पुनः नोटिस दिए जाने का निदेश दिया गया, जिनकी लंबे समय तक उस पर तामीली नहीं हो सकी । अंततः, जयपुर विकास प्राधिकरण से श्री बाबू लाल सैनी पर नोटिस तामील करने की अपेक्षा की गई और नोटिस तामील होने पर वह तारीख 18 मई, 2015 को व्यक्तिगत तौर पर न्यायालय में उपसंजात हुआ और अधिवक्ता मुकर्रर करने के लिए समय देने की प्रार्थना की, क्योंकि पूर्व में मुकर्रर उसके अधिवक्ता को राज्य का काउंसेल नियुक्त किया गया है । उसे इसके लिए दो सप्ताह का समय मंजूर किया गया ।

16. श्री बाबू लाल सैनी ने न तो कोई काउंसेल मुकर्रर किया और न ही मामले का प्रतिवाद करने के लिए उसके पश्चात् उपसंजात हुआ ।

17. पक्षकारों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात् हमारा यह निष्कर्ष है कि श्री बाबू लाल सैनी के पिता श्री छोटे लाल द्वारा फाइल की गई रिट याचिका 28 वर्षों के अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर खारिज होने के पश्चात् विद्वान् एकल न्यायाधीश ने मामले के गुणागुण पर विचार करके अपनी अधिकारिता से बाहर जाकर कार्य किया था ।

18. विद्वान् एकल न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया था कि छोटे लाल को अर्जन की कार्यवाहियों की पूरी जानकारी थी, जिनका अधिनियम, 1953 की धारा 6 के अधीन तारीख 3 मई, 1961 को जारी की गई अधिसूचना और तारीख 9 जनवरी, 1964 को किए गए उस अधिनिर्णय के साथ समापन हुआ था, जिसके द्वारा प्रतिकर भी प्रत्याहृत कर लिया गया था और अधिनियम, 1953 की धारा 18 के अधीन कार्यवाही की गई थी । श्री छोटे लाल ने 1000 वर्ग गज और 2000 वर्ग गज के भूखंडों के आबंटन और कब्जे के लिए जयपुर विकास प्राधिकरण के साथ हुए करार के प्रवर्तन के लिए सिविल वाद फाइल करने के तथ्य को भी छिपाया था । अर्जन की कार्यवाहियों की पूर्ण जानकारी होते हुए उसने रिट याचिका फाइल करने के लिए 28 वर्षों तक प्रतीक्षा की और इस अंतराल में उसने अर्जन की गई भूमि के टुकडों का क्रय करने के लिए पक्षकारों के साथ कई करार किए । रिट याचिका अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर भी खारिज की गई थी, क्योंकि श्री छोटे लाल ने संपूर्ण भूमि के लिए

प्रतिकर स्वीकार किया था और वह उच्चतम न्यायालय तक मुकदमा हार चुका था और इस प्रकार वह अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6 के अधीन अधिसूचनाओं को भूमि, जिसका अर्जन किया गया था, के क्षेत्र के संबंध में कुछ त्रुटियों के आधार पर चुनौती नहीं दे सकता था ।

19. रिट याचिका, जो अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर खारिज की गई थी, वह तीन दशकों के बाद अधिसूचनाओं को इस आधार पर चुनौती देते हुए कि पूर्व में मामला गुणागुण के आधार पर विनिश्चित नहीं किया गया था, अलग से एक रिट याचिका फाइल करके संपूर्ण मामले को पुनः उठाने का आधार नहीं हो सकती है । नागरिकों को रिट याचिका फाइल करने का असाधारण उपचार इस शर्त के अध्यधीन उपलब्ध है कि रिट याचिका युक्तियुक्त समयावधि के भीतर फाइल की जाए । यद्यपि, इस पर परिसीमा अधिनियम लागू नहीं होता है, फिर भी न्यायनिर्णीत विधि से यह स्पष्ट होता है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 और 227 के अधीन रिट याचिका ऐसी अयुक्तियुक्त अवधि के पश्चात् ग्रहण नहीं की जा सकती है, जिसके लिए याची द्वारा कोई विधिमान्य कारण न दिया जाए । जब एक बार रिट याचिका अतिविलंब और तथ्यों को छिपाने के आधार पर खारिज कर दी गई थी और विद्वान् एकल न्यायाधीश के निर्णय की अभिपुष्टि खंड न्यायपीठ और उसके पश्चात् माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा कर दी गई थी, फिर उसी याची या उसके हित-उत्तराधिकारी को मामला एकल न्यायाधीश के समक्ष पुनः उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है । आन्वयिक प्राङ न्याय के सिद्धांतों में सन्निविष्ट पुरोबंध के सिद्धांत मामले को पुनः खोलने का प्रयत्न करने पर लागू होते हैं । जब एक बार रिट याचिका खारिज कर दी गई थी और निर्णय उच्चतम न्यायालय तक अंतिम हो गया था, फिर उसी व्यक्ति या उसके अधीन दावा करने वाले व्यक्ति को, उसी भूमि का विक्रय करने का करार करके उसके द्वारा किए गए कपटपूर्ण संव्यवहारों को बचाने हेतु, मामले को पुनः उठाने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है ।

20. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, हमारा यह निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने भूमि के अर्जन की कार्यवाहियों को 37 वर्षों की अवधि के पश्चात् त्रुटिपूर्ण घोषित करके और कार्यवाहियों को अभिखंडित करके भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन अपनी अधिकारिता के बाहर जाकर कार्य किया है ।

21. हमारा यह भी निष्कर्ष है कि विद्वान् एकल न्यायाधीश ने उस

विलंब को निर्दिष्ट नहीं किया और यहां तक कि टीका-टिप्पणी तक नहीं की, जिसके साथ याची पूर्ववर्ती मुकदमेबाजी के दौर में इस न्यायालय के समक्ष आया था और न ही वह दूसरे दौर की मुकदमेबाजी में ऐसे लंबे विलंब की निरंतरता को माफ कर सकते थे । इस न्यायालय द्वारा पूर्व में अभिलिखित किए गए यह निष्कर्ष कि अतिविलंब के लिए पर्याप्ततः स्पष्टीकरण नहीं दिए गए हैं, विद्वान् एकल न्यायाधीश पर समान रूप से आबद्धकर थे और फाइल की गई द्वितीय रिट याचिका भी अतिविलंब द्वारा वर्जित थी जिसके लिए, अधिसूचनाओं में औपचारिक त्रुटि होने के सिवाय, कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया । याची को, भूमि के लिए किए गए अधिनिर्णय के अधीन प्रतिकर स्वीकार कर लेने के पश्चात्, अधिसूचना में त्रुटि होने का अभिवाक् करने के लिए अनुज्ञात नहीं किया जा सकता है और उसने प्रतिकर के बदले कुछ भूखंडों का आबंटन करने के लिए जयपुर विकास प्राधिकरण के साथ करार किया था और जिसके लिए उसने एक सिविल वाद फाइल किया था जो तारीख 14 फरवरी, 1992 के निर्णय और डिक्री द्वारा 1000 वर्ग गज का भूखंड आबंटन करने के लिए डिक्रीत किया गया था, जिसके विरुद्ध एक प्रथम अपील फाइल की गई थी और उसे भी तारीख 2 जून, 1992 को खारिज कर दिया गया था ।

22. जहां तक 1997 की डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन का संबंध है, हम उस निर्णय का पुनर्विलोकन करने के लिए कोई ठोस आधार नहीं पाते हैं, जिसके द्वारा इस न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 12 मई, 1994 को विशेष अपील खारिज कर दी गई थी । यह पुनर्विलोकन आवेदन उन्हीं आधारों पर, अर्थात् यह निष्कर्ष गलत है कि याची न्यायालय में निर्दोष नहीं आया है और अतिविलंब के लिए दोषी है और यह कि भूमि का कब्जा याची के पास है, फाइल की गई है ।

23. हमारे मत में, जब एक बार खंड न्यायपीठ के तारीख 12 मई, 1994 के निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई विशेष इजाजत याचिका, जो अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका (सिविल) सं. 19954/95-बाबू लाल बनाम राजस्थान राज्य और एक अन्य थी, माननीय उच्चतम न्यायालय द्वारा तारीख 15 सितम्बर, 1995 को, कोई पुनर्विलोकन आवेदन फाइल करने की स्वतंत्रता दिए बिना, खारिज कर दी गई थी, फिर याची खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध पुनर्विलोकन आवेदन फाइल करने के लिए स्वतंत्र नहीं था, और न ही उच्च न्यायालय के लिए यह उचित है कि वह पुनर्विलोकन आवेदन पर उन्हीं आधारों पर विचार करे जो खंड न्यायपीठ

के निर्णय को चुनौती देते हुए माननीय उच्चतम न्यायालय के समक्ष बताए गए थे । हम यह नहीं पाते हैं कि पुनर्विलोकन आवेदन में कोई नया आधार लिया गया है और इस प्रकार खंड न्यायपीठ के निर्णय के विरुद्ध अपील करने के लिए विशेष इजाजत याचिका खारिज होने के पश्चात् इस बात की स्वतंत्रता नहीं रह जाती है कि उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा निर्णय का पुनर्विलोकन किया जाए ।

24. कुछ आवेदन पक्षकार बनाने के लिए उन व्यक्तियों द्वारा फाइल किए गए हैं जिन्होंने श्री बाबू लाल सैनी के साथ करार किया था, और देवता के 'महंत' द्वारा भी एक आवेदन यह अभिकथन करते हुए फाइल किया गया है कि उसी सुसंगत समय पर कुछ संपत्तियां 'मुआफी' भूमि के रूप में देवता के नाम में अभिलिखित की गईं थीं । इन भूमियों का राज्य सरकार द्वारा अधिनियम, 1953 की धारा 4 और 6 के अधीन तारीख 13 जून, 1960 और 3 मई, 1961 की अधिसूचनाओं द्वारा पहले ही अर्जन कर लिया गया था और जिनकी बाबत तारीख 9 जनवरी, 1964 को एक अधिनिर्णय किया गया था । जिस अवधि के दौरान उच्च न्यायालय के भवन और स्टेडियम का निर्माण किया गया था, तब से लेकर 50 वर्ष से अधिक की अवधि बीत चुकी है और वे उपयोग में हैं, अतः विक्रय करार के अधीन दावा करने वाले व्यक्तियों द्वारा किए गए, या देवता के 'महंत' द्वारा किया गया आवेदन कायम रखने योग्य नहीं है और न ही कोई न्यायनिर्णयन करने की आवश्यकता है । तद्नुसार, सभी आवेदन नामंजूर किए जाते हैं ।

25. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, 2000 की डी. बी. सिविल विशेष अपील सं. 55 मंजूर की जाती है और विद्वान् एकल न्यायाधीश का तारीख 4 फरवरी, 2000 का निर्णय अपास्त किया जाता है ।

26. तद्नुसार, 1997 का डी. बी. सिविल पुनर्विलोकन आवेदन खारिज किया जाता है ।

27. इस निर्णय की एक प्रति संबद्ध फाइल में रखी जाएगी ।

सिविल विशेष अपील मंजूर की गई और
पुनर्विलोकन आवेदन खारिज किया गया ।

जस.

———————

ओम प्रकाश

बनाम

श्रीमती शशि और एक अन्य

तारीख 21 सितम्बर, 2015

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 और आदेश 39 [सपठित सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम, 1882 की धारा 5 और विनिर्दिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 की धारा 12] – सम्पत्ति का विभाजन – समझौता – समझौते के अनुसार सम्पत्ति का विभाजन न होना – पक्षकारों द्वारा समझौते के अनुसरण में सम्पत्तियों का कब्जा नहीं सौंपना – विनिर्दिष्ट अनुपालन – यदि किसी सम्पत्ति के बारे में पक्षकारों के बीच आपसी समझौते द्वारा बंटवारा कर लिया जाता है तो उक्त समझौते के अनुसार ही उक्त सम्पत्ति का बंटवारा विनिर्दिष्टतः अनुज्ञेय है यदि कोई पक्षकार इसका पालन नहीं करता है तो पीड़ित पक्षकार उक्त समझौते के अनुसार सम्पत्ति का बंटवारा करने और कब्जा प्राप्त करने के लिए विनिर्दिष्टतः अनुपालन करवा सकता है ।

वर्तमान मामले में, वादियों ने इस आधार पर कब्जे के लिए वाद फाइल किया कि भूखंड सं. 27 माप 90 × 60 फुट को तीन अन्य भूखंडों सं. 1, 18, 22 और 27 के साथ वादी-श्रीमती शशि के पति, स्वर्गीय श्री नरेन्द्र कुमार और उसके भाई लखपतराज द्वारा अपने पिता पुखराज के माध्यम से तारीख 30 मई, 1966 को 4,500/- रुपए की राशि से रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख प्रदर्श 1 और प्रदर्श 2 त्यजन विलेख द्वारा क्रय किया गया था, की उक्त भूखंडों में पिता पुखराज, माता श्रीमती सुमित्रा देवी और भाई लखपतराज के हिस्से को वादी संख्या 1 श्रीमती शशि जैन के पक्ष में त्यजन किया गया था, दुर्भाग्यवश, जिसके पति नरेन्द्र कुमार की मृत्यु 23 वर्ष की युवा आयु में उनके विवाह के दो वर्ष पश्चात् ही हो गई थी । त्यजन विलेख तारीख 18 मई, 1987 को निष्पादित हुई थी । वादियों ने यह भी दावा किया कि प्रतिवादी-ओमप्रकाश को चौकीदार/केयरटेकर के रूप में उक्त भूखंड सं. 27 के एक भाग का अनुज्ञेय कब्जा प्रदान किया गया था, जिस पर वर्ष 1985 में पिता श्री पुखराज द्वारा दो कमरों का

निर्माण भी कर लिया गया था, किन्तु बाद में, ऐसी अनुज्ञप्ति या अनुज्ञा के प्रतिसंहरण होने पर जब भूखंड सं. 27 के उक्त भाग के कब्जे का प्रतिवादी से दावा किया गया था तब उसने उस दावे को विवादित किया और उससे इनकार किया था और इसलिए वर्ष 1989 में कब्जे की ईप्सा करते हुए वर्तमान वाद फाइल किया गया । दूसरी ओर प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वह भूखंड सं. 27 के उक्त भाग के अनुज्ञेय कब्जे में नहीं था अपितु उसने अपने दोनों पुत्रों अर्थात् ललित सिंह और हिम्मत सिंह की ओर से मुख्तारनामा करते हुए, श्रीमती शीला कुमारी से भूखंड सं. 27-ए 60 × 45 फुट क्रय किया था । उक्त श्रीमती शीला कुमारी श्री तख्त सिंह की पत्नी थी और स्वामी होने के नाते उन्होंने 12,000/- रुपए की राशि के प्रतिफल में उसके पक्ष में तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख प्रदर्श ए/1ए निष्पादित किया था, इसलिए वह वादियों को कब्जा सौंपने के लिए दायी नहीं है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर आठ विवाद्यक विरचित किए थे और अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्, जिसमें दोनों वादियों और प्रतिवादी के पक्ष में विक्रय विलेख सम्मिलित हैं, उक्त विवाद्यकों को वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया, सिवाय पिता पुखराज अर्थात् सिविल वाद सं. 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज में चौकीदार के रूप में दिए गए उसके कब्जे को स्वीकार करते हुए, तारीख 6 अगस्त, 1985 को प्रतिवादी-ओम प्रकाश के शपथपत्र से संबंधित विवाद्यक सं. 3 के, जो अन्ततोगत्वा वादियों और प्रतिवादी के कुटुंब सदस्यों के बीच समझौते के उपरान्त विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह पाया कि अभिकथित भूखंड सं. 27 और 27-बी, वादियों द्वारा दावाकृत भूखंड सं. 27 से भिन्न भूखंड नहीं है और तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को प्रतिवादी-ओमप्रकाश के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख एक जाली दस्तावेज है और ऐसे नास्ति दस्तावेज का आधार पर कोई अधिकार प्रदत्त नहीं होता है और प्रतिवादी के अनुज्ञेय कब्जे को वादियों द्वारा प्रतिसंहरण कर दिया गया है, प्रतिवादी, भूखंड सं. 27 माप 60 × 45 फुट के माप के पश्चिमी भाग को वादियों को सौंपने के लिए आबद्ध है । इससे व्यथित होकर, प्रतिवादी ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान प्रथम अपील फाइल की । न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस न्यायालय के सुविचारित राय में, प्रतिवादी-ओम प्रकाश की वर्तमान अपील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि प्रतिवादी-ओम

प्रकाश ने श्रीमती शीला कुमारी द्वारा, उसके पुत्रों अर्थात् ललित सिंह और हिम्मत सिंह के मुख्तारनामे के रूप में तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को तात्पर्यित रूप से उसके पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख के बहाने भूखंड सं. 27 के एक भाग पर अपना हक स्थापित करने का एक निरर्थक प्रयास किया है । तारीख 30 मई, 1983 को वादियों के पिता श्री पुखराज के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख प्रदर्श-1 के मात्र परिशीलन से यह पता चलता है कि उक्त विक्रय विलेख श्री तख्त सिंह द्वारा अपनी पत्नी श्रीमती शीला कुमारी, अपने अवयस्क पुत्र हिम्मत सिंह के अभिभावक की हैसियत में निष्पादित की गई थी । उक्त विक्रय विलेख भूखंड सं. 27 माप 90 × 60 फुट के अलावा चार भूखंड सं. 1, 18, 22 और 27 के साथ ही अन्य भूखंडों और आस-पास के पड़ोसियों का पूरा ब्यौरा दिया गया था और उक्त विक्रय विलेख को कभी भी किसी पक्षकार ने चुनौती नहीं दी है । तारीख 18 मई, 1987 के पश्चात्वर्ती त्यजन विलेख, प्रदर्श 2 में, कुटुंब सदस्यों के अधिकारों का भी स्वर्गीय नरेन्द्र कुमार की पत्नी वादी सं. 1 श्रीमती शशि जैन के पक्ष में त्यजन कर दिए गए थे । पड़ोसियों के मिलान के बारे में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष स्वयं के समक्ष उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित होने के नाते पूर्णतः सही हैं । जैसाकि वादियों के पक्ष में समय के पूर्ववर्ती बिन्दु पर निष्पक्ष और सुस्पष्ट हक के विरुद्ध, प्रतिवादी-ओम प्रकाश धोबी जो उक्त भूखंड के चौकीदार/केयरटेकर के रूप में अनुज्ञात्मक कब्जा था, श्री ललित सिंह और श्री हिम्मत सिंह को पावर ऑफ अटर्नी के रूप में श्रीमती शीला कुमारी पत्नी श्री तख्त सिंह द्वारा निष्पादित 12,000/- रुपए के लिए तारीख 5 अक्तूबर, 1983 का विक्रय विलेख प्रदर्श-ए-1ए का दावा करते हुए, उक्त भूखंड और उसके भाग पर अपना स्वयं का हक स्थापित करने का प्रत्यन किया । न तो ऐसी कोई पावर ऑफ अटर्नी विचारण न्यायालय और न ही स्वामी श्री ललित सिंह और हिम्मत सिंह के समक्ष प्रस्तुत की गई जिन्होंने वर्ष 1993 से वयस्क होना स्वीकृत किया था, जिनके उक्त विक्रय विलेख पर हस्ताक्षर थे । स्वयं डी. डब्ल्यू. 1 ओम प्रकाश के अभिकथन से, वह पूर्ण रूप से यह स्थापित करने में असफल रहा कि उसने श्रीमती शीला कुमारी को किसी प्रकार का प्रतिफल दिया । उसके अभिकथन वास्तव में विसंगतियों की पहेली और झूठे अभिकथन हैं । मुख्य परीक्षा में, उसने यह अभिकथित किया है कि वह वर्ष 1984 से भूखंड सं. 27-ए में रह रहा है, जो उसने तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को श्रीमती शीला कुमारी से खरीदा था । तत्पश्चात् उसने इसमें पत्थर की पट्टियों से

चारदीवारी और दो कमरे, प्रसाधन और स्नानागार तथा रसोई बनवाई थी, जिसका निर्माण कार्य लगभग तीन वर्ष चला था; बाद में उसने उक्त भूखंड पर अपने नाम पर पावर और पानी का कनेक्शन लिया था । किन्तु अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसके दावे स्वयं परस्पर विरोधी हैं कि वह वायु सेना में सेवारत था और वायु सेना आफिसर के मेस सेवक क्वाटर्स में रहता था और जुलाई, 1983 में उसने श्रीमती शीला कुमारी को किस्तों में उक्त धनराशि का संदाय किया था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि पत्थर पट्टियां का निर्माण अकेले महावीर कुमार मेहता ने किया था । उसने यू. आई. टी. या नगरपालिका से निर्माण के लिए कोई अनुमति नहीं ली थी । प्रश्नगत भूखंड वर्ष 1983 से 1986 तक खाली पड़ा था । उसे नहीं मालूम कि कब उसने उक्त भूखंड को श्रीमती शीला कुमारी से क्रय किया था, क्या उसने सामाजिक जीवन छोड़ दिया था और वह साध्वी बन गई थी और कि उसने वर्ष 1986 में उक्त भूखंड का कब्जा लिया था और तत्पश्चात् उसपर चारदीवारी का निर्माण कराया था । उपर्युक्त साक्ष्य का सम्पूर्ण परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रतिवादी का भूखंड सं. 27, भेरु विलास नजदीक सरदार क्लब, जोधपुर का कब्जा मात्र अनुज्ञेय कब्जा था और वह भूखंड 27-ए का स्वामी नहीं था जैसाकि उसके द्वारा दावा किया गया है तथा तारीख 5 अक्तूबर, 1983 का प्रदर्श-ए-1ए, उसके पक्ष में तात्पर्यित विक्रय विलेख एक बनावटी और जाली दस्तावेज है । वादियों ने वर्ष 1966 से उक्त भूखंड सं. 27 पर अपना कब्जा साबित कर दिया और अनुज्ञप्ति या अनुज्ञा के प्रतिसंहरण के बावजूद, प्रतिवादी प्रश्नगत भूखंड का कब्जा, वादियों को वापस सौंपने में असफल रहे हैं । इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादियों का वाद डिक्री करने में पूरी तरह से न्यायानुमत है । यहां यह न्यायालय यह भी मत व्यक्त करना चाहता है कि प्रतिवादी-ओमप्रकाश के तारीख 6 अगस्त, 1985 के शपथपत्र को साबित करने में वादियों की असफलता के बारे में विवाद्यक सं. 3 पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । पिता श्री पुखराज, अभि. सा. 2 ने न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त उद्धरित अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह कथित किया है कि उक्त शपथपत्र पर ओम प्रकाश ने हस्ताक्षर किए थे और उसकी पुत्रवधू द्वारा फाइल पूर्ववर्ती सिविल वाद सं. 313/1985- श्रीमती शशि बनाम पुखराज में उसे दिया गया था, जो पक्षकारों के बीच समझौते को ध्यान में रखते हुए अंतिम रूप से विनिश्चय हुआ था और श्री पुखराज के इस कथन का खंडन

नहीं किया गया है तथा तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए, शपथ आयुक्त के समक्ष सशपथ में सम्यक् रूप से शपथपत्र न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था और इसे न्यायालय द्वारा प्रदर्श-3 के रूप में चिन्हित किया गया था, इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि वादी, प्रतिवादी के उक्त शपथपत्र को साबित करने में असफल रहे हैं, जिनमें उसने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसे मात्र वह ही चौकीदार के रूप में भूखंड सं. 27 पर रहता था जिसकी अनुज्ञा पुखराज द्वारा दी गई थी । इसलिए, विवाद्यक सं. 3 पर निकाले गए निष्कर्ष उलटे जाने योग्य है और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रतिवादी-ओम प्रकाश द्वारा भूखंड सं. 27 के चौकीदार के रूप में अनुज्ञेय कब्जे भी हैं । सक्षम सिविल न्यायालय ने स्वीकार करते हुए, तारीख 6 अगस्त, 1985 को दिया गया शपथपत्र समुचित है और पश्चात्वर्ती वर्तमान वाद में उसे इससे मुकरने नहीं दिया जा सकता है जिसे उसके द्वारा कब्जा सौंपने से इनकार करने पर वादी द्वारा फाइल किया जाना अपेक्षित था । प्रतिवादी-ओम प्रकाश के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. आर. नागोरी द्वारा अवलंब लिए गए निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में उनकी कोई सहायता नहीं करते हैं, क्योंकि इन निर्णयों में से कोई भी रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख की संरचना से संबंधित नहीं है और वर्ष 1966 से पहले रजिस्ट्रीकृत उक्त विक्रय विलेख की सत्यता के बारे में प्रबल उपधारणा बनती है । इसकी सत्यता की उपधारणा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 90 के अनुसार भी की जा सकती है, क्योंकि विचारण न्यायालय को उक्त दस्तावेज विचार किए 30 वर्ष से अधिक का समय बीत चुका है, क्योंकि वर्ष 1999 में अपील के अधीन डिक्री पारित हुई थी और इसलिए, न्यायालय को उक्त दस्तावेजों प्रदर्श-1 विक्रय विलेख का अवलंब लेने का हक था और इसकी अन्तर्वस्तुएं भी साबित हो गई हैं । इसके अतिरिक्त इस न्यायालय की यह राय है कि अनुज्ञेय कब्जे में किसी केयरटेकर या व्यक्ति के आग्रह पर, जिसने स्वयं अपने पक्ष में मिथ्या हक स्थापित किया है, वादियों के हक के बारे में जांच-पड़ताल नहीं किए जा सकते हैं क्योंकि वादी स्वयं ही अपने हक की घोषणा करने का दावा कर रहे हैं । इस प्रकार, प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान अपील खर्चों के साथ खारिज किए जाने योग्य है । तद्नुसार, प्रतिवादी-ओम प्रकाश द्वारा फाइल द्वितीय अपील को खर्चों के साथ खारिज की जाती है, जो वादियों-प्रत्यर्थियों को प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा संदत्त किए जाने के लिए 10,000/- रुपए निर्धारित की गई

है । प्रतिवादी, वादियों द्वारा दावा किए गए मध्यवर्ती लाभ के बकाया का भी संदाय करेगा और पूर्णतया इस अवधि तक, जो अब से अक्तूबर, 2015 मास से 5,000/- रुपए प्रतिमास की दर से प्रश्नगत भूखंड सं. 27 जिसमें तथाकथित भूखंड सं. 27 मापन 60 × 45 फुट है का कब्जा उसे सौंपने तक आज की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर वादियों को विद्वान् विचारण न्यायालय ने निदेश दिया । तद्नुसार, तत्काल ही विचारण न्यायालय कब्जे और मध्यवर्ती लाभ की डिक्री प्रत्याहृत करेगा । यदि प्रतिवादी कब्जा सौंपने और मध्यवर्ती लाभ या लागत का संदाय करने में असफल रहता है तो जैसा निदेश दिया गया है, वादी/प्रत्यर्थी डिक्री के शीघ्र निष्पादन के अलावा इस न्यायालय की अवमानना अधिकारिता का अवलंब लेने के भी हकदार होंगे । (पैरा 12, 14, 18, 19, 20, 25 और 26)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) डब्ल्यू. एल. सी. (राजस्थान) 798 : **श्री नरेन्द्र कुमार** बनाम **श्रीमती शान्ता कोठारी** ;	10
[2013]	2013 (130) ए. आई. सी. 765 : **छज्जू और अन्य** बनाम **ज्ञान चन्द और अन्य** ;	10
[2013]	2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 447 : **हरदेविन्दर सिंह** बनाम **परमजीत सिंह और अन्य** ;	10
[2012]	(2012) 5 एस. सी. सी. 370 : **मारिया मरगार्डिया सेक्यूरिया फर्नाडीज और अन्य** बनाम **इराश्मो जैक दे सेक्यूरिया** ;	10,22
[2012]	(2012) 2 एस. सी. सी. 548 : **रामदास बंसल (मृत)** मार्फत **विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **खड़क सिंह बैद और अन्य** ;	10
[2011]	ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 941 : **पोरमानन और अन्य** बनाम **पी. थियागराजन** ;	10
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 497 : **जगदीश सिंह** बनाम **माधुरी देवी** ;	10

[2009] 2009 (4) डब्ल्यू. एल. सी. (राजस्थान) 366 :
कन्हैयालाल मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण**
बनाम **नानाग्राम** मार्फत **इसके प्रतिनिधिगण** ; 8

[2008] ए. आई. आर. 2008 इलाहाबाद 1 :
श्याम लाल और एक अन्य बनाम **विजय सिंह**
उर्फ **बिजेन्द्र सिंह और अन्य** ; 10

[2004] 2004 (3) सिविल कोर्ट मामले 69 (बाम्बे) :
शोभा सत्यनारायण बिरला बनाम **जानाबाई**
परशुराम पवार ; 8

[1994] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 853 :
एस.पी. चंगेलवारैया नायडू (मृत) मार्फत **इसके**
विधिक प्रतिनिधिगण बनाम **जगन्नाथ (मृत)**
मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य** ; 8

[1991] ए. आई. आर. 1991 मध्य प्रदेश 15 :
श्रीमती ललिता जेम्स और अन्य बनाम **अजीत**
कुमार और अन्य ; 8

[1983] ए. आई. आर. 1983 बाम्बे 1 :
ओम प्रकाश बेरलिया और एक अन्य बनाम **यूनिट**
ट्रस्ट ऑफ इंडिया और अन्य ; 8

[1982] ए. आई. आर. 1982 बाम्बे 387 :
प्रकाश कॉटन मिल्स प्रा. लि. बनाम **म्युनिसिपल**
कमिश्नर फॉर ग्रेटर बॉम्बे और अन्य ; 8

[1981] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 2085 :
रामजी दयावाला एंड सन्स (प्रा.) लि. बनाम
इन्वेस्ट ईम्पोर्ट ; 8

[1971] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1949 :
बिश्वनाथ राय बनाम **सच्चिदानंद सिंह** ; 8

[1968] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1413 :
गोपाल कृष्णजी केटकर बनाम **मोहम्मद हाज़ी**
लतिफ और अन्य ; 8

[1968] ए. आई. आर. 1968 बाम्बे 112 :
सर मोहम्मद युसुफ और एक अन्य बनाम **डी. और एक अन्य** ; 8

[1955] ए. आई. आर. 1955 राजस्थान 186 :
पुसाराम और अन्य बनाम **मानमल और अन्य** ; 10

[1954] ए. आई. आर. 1954 बाम्बे 305 :
माधोलाल सिंधु बनाम **एशियन एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड** । 8

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2011 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 646.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

प्रतिवादी-अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री आर. आर. नागोरी, ज्येष्ठ अधिवक्ता के साथ अलकेश अग्रवाल और वी. एल. थानवी, अधिवक्ता

वादियों/प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अशोक छंगानी

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – प्रतिवादी-ओम प्रकाश ने सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के अधीन वर्तमान प्रथम अपील वादियों/डिक्री-धारकों श्रीमती शशि पत्नी स्वर्गीय नरेन्द्र कुमार और उसके पुत्र शलिन्द्र कुमार के विरुद्ध विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 3 जोधपुर द्वारा सिविल मूल वाद संख्या 120/89-श्रीमती शशि और अन्य बनाम ओम प्रकाश, में पारित तारीख 13 दिसम्बर, 1999 के कब्जे से व्यथित होकर फाइल की है, जो भूखंड सं. 27 के पश्चिमी की तरफ के भाग माप 60 × 45 फुट भेरु विलास, नजदीक सरदार क्लब, जोधपुर के संबंध में था ।

2. वादियों ने इस आधार पर कब्जे के लिए वाद फाइल किया कि भू-खंड सं. 27 माप 90 × 60 फुट को तीन अन्य भूखंडों सं. 1, 18, 22 और 27 के साथ वादी-श्रीमती शशि के पति, स्वर्गीय श्री नरेन्द्र कुमार और उसके भाई लखपतराज द्वारा अपने पिता पुखराज के माध्यम से तारीख 30 मई, 1966 को 4,500/- रुपए की राशि से रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख प्रदर्श 1 और प्रदर्श 2 त्यजन विलेख द्वारा क्रय किया गया था, की उक्त भूखंडों में पिता पुखराज, माता श्रीमती सुमित्रा देवी और भाई लखपतराज के हिस्से को वादी संख्या 1 श्रीमती शशि जैन के पक्ष में त्यजन किया गया था, दुर्भाग्यवश, जिसके पति नरेन्द्र कुमार की मृत्यु 23 वर्ष की युवा आयु

में उनके विवाह के दो वर्ष पश्चात् ही हो गई थी । त्यजन विलेख तारीख 18 मई, 1987 को निष्पादित हुई थी । वादियों ने यह भी दावा किया कि प्रतिवादी-ओम प्रकाश को चौकीदार/केयरटेकर के रूप में उक्त भूखंड सं. 27 के एक भाग का अनुज्ञेय कब्जा प्रदान किया गया था, जिस पर वर्ष 1985 में पिता श्री पुखराज द्वारा दो कमरों का निर्माण भी कर लिया गया था, किन्तु बाद में, ऐसी अनुज्ञप्ति या अनुज्ञा के प्रतिसंहरण होने पर जब भूखंड सं. 27 के उक्त भाग के कब्जे का प्रतिवादी से दावा किया गया था तब उसने उस दावे को विवादित किया और उससे इनकार किया था और इसलिए वर्ष 1989 में कब्जे की ईप्सा करते हुए वर्तमान वाद फाइल किया गया ।

3. दूसरी ओर प्रतिवादी ने यह दावा किया कि वह भूखंड सं. 27 के उक्त भाग के अनुज्ञेय कब्जे में नहीं था अपितु उसने अपने दोनों पुत्रों अर्थात् ललित सिंह और हिम्मत सिंह की ओर से मुख्तारनामा करते हुए, श्रीमती शीला कुमारी से भूखंड सं. 27-ए 60 × 45 फुट क्रय किया था । उक्त श्रीमती शीला कुमारी श्री तख्त सिंह की पत्नी थी और स्वामी होने के नाते उन्होंने 12,000/- रुपए की राशि के प्रतिफल में उसके पक्ष में तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख प्रदर्श ए/1ए निष्पादित किया था, इसलिए वह वादियों को कब्जा सौंपने के लिए दायी नहीं है ।

4. विद्वान् विचारण न्यायालय ने पक्षकारों के अभिवचनों के आधार पर आठ विवाद्यक विरचित किए थे और अभिलेख पर मौखिक और दस्तावेजी साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात्, जिसमें दोनों वादियों और प्रतिवादी के पक्ष में विक्रय विलेख सम्मिलित हैं, उक्त विवाद्यकों को वादियों के पक्ष में विनिश्चित किया, सिवाय पिता पुखराज अर्थात् सिविल वाद सं. 313/1985 -श्रीमती शशि बनाम पुखराज में चौकीदार के रूप में दिए गए उसके कब्जे को स्वीकार करते हुए, तारीख 6 अगस्त, 1985 को प्रतिवादी-ओम प्रकाश के शपथपत्र से संबंधित विवाद्यक सं. 3 के, जो अन्ततोगत्वा वादियों और प्रतिवादी के कुटुंब सदस्यों के बीच समझौते के उपरान्त विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा विनिश्चित किया गया था । विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह पाया कि अभिकथित भूखंड सं. 27 और 27-बी, वादियों द्वारा दावाकृत भूखंड सं. 27 से भिन्न भूखंड नहीं है और तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को प्रतिवादी-ओम प्रकाश के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख एक जाली दस्तावेज है और ऐसे नास्ति दस्तावेज का आधार पर कोई अधिकार प्रदत्त नहीं होती है और प्रतिवादी के अनुज्ञेय कब्जे को वादियों द्वारा प्रतिसंहरण

कर दिया गया है, प्रतिवादी, भूखंड सं. 27 माप 60 × 45 फुट के पश्चिमी भाग को वादियों को सौंपने के लिए आबद्ध है ।

5. इस संबंध में, विवाद्यक संख्या 4 और 6 पर विद्वान् विचारण न्यायालय के सुसंगत निष्कर्ष वर्तमान संदर्भ के लिए, जो इस प्रकार हैं :–

"**12. तनकी नम्बर 4 और 6**

तनकी नम्बर 4 को सिद्ध करने का भार वादिनी पर व तनकी सं. 6 को सिद्ध करने का भार प्रतिवादी पर है । इन दोनों तनकीयात की साक्ष्य एक दूसरे से इस प्रकार संबद्ध हैं कि इन दोनों तनकीयात का एक साथ निर्णय किया जाना उचित प्रतीत होता है । वादी साक्ष्य से बेचाननामा प्रदर्श 1 व हकतर्कनामा प्रदर्श 2 को अपने पक्ष में निष्पादित होना प्रमाणित किया गया है जिस संबंध में किसी प्रकार का कोई विवाद प्रतिवादी पक्ष की ओर से नहीं किया गया है । वादीगण द्वारा वादग्रस्त प्लाट सं. 27 होना बताया गया है व प्रतिवादी की ओर से वादग्रस्त प्लाट को प्लाट सं. 27-ए होना कहा गया है व प्रतिवादी की ओर से यह बहस की गई वादी पक्ष की ओर से जो बेचाननामा प्रदर्श 1 प्रस्तुत किया गया है उसमें जो वादग्रस्त प्लाट का आशा-पाशा अंकित किया गया है वह वादपत्र में चरण सं. 1 में जो वादग्रस्त प्लाट का आशा-पाशा अंकित किया गया है उन दोनों में विरोधाभास है । वादपत्र में वादग्रस्त प्लाट के उत्तर में 20 फुट सड़क व पूर्व में भी 20 फुट का रास्ता होना बताया गया है जबकि विक्रय पत्र प्रदर्श 1 में पृष्ठ 7 पर पूर्व में 30 फुट चौड़ी सड़क व उत्तर में 50 फुट चौड़ी सड़क होना बताया गया है । इस प्रकार उत्तर व पूर्व की सड़क व आम रास्ते के बाबत वादपत्र में अंकित सीमांकन व विक्रय पत्र प्रदर्श 1 में अंकित सीमांकन में अंतर है । विक्रय पत्र में जो प्लाट सं. 27 विक्रय करना दिखाया गया है वह प्लाट वादपत्र के चरण सं. 1 में अंकित भूखंड नहीं है ।

इसमें प्रतिवादी द्वारा प्रस्तुत विक्रय पत्र दिनांक 5.10.83 का अवलोकन किया गया । इस विक्रय पत्र से जो भूखंड प्रतिवादी द्वारा खरीदना बताया गया है उसके उत्तर में 20 फुट का आम रास्ता होना बताया गया है व वादी पक्ष की ओर से भी अपने वादपत्र में वादग्रस्त भूखंड के उत्तर में 20 फुट सड़क होना बताई गई है । वादी के विक्रय पत्र प्रदर्श 1 में उत्तर में 50 फुट सड़क होना कहा गया है व

इस संबंध में जिरह के दौरान वादी साक्षी 1 शैलेन्द्र सिंह द्वारा यह कहा गया है कि इस रास्ते में भिन्नता का कारण यह है कि सामने वाली जमीन पर कब्जा हो गया है प्लाट कट गए व मकान बन गए । वादी साक्ष्य में वादी ने अपने साक्ष्य के दौरान यह कथन किया है कि प्लाट संख्या 27 के उन्होंने दो भाग नहीं किए व प्रतिवादी द्वारा स्वयं का प्लाट संख्या 27-ए होना बताया गया है किन्तु वादपत्र व वादी व प्रतिवादी के विक्रय पत्र क्रमशः प्रदर्श 1 व प्रदर्श ए-1 को देखने से यह बगैर किसी संदेह के पूर्णरूपेण स्पष्ट हो रहा है कि इन दोनों विक्रय पत्रों व वादपत्र में जिस जायदाद के हदूद अंकित किए गए हैं वे एक ही जायदाद है । इस सभी में वादग्रस्त प्लाट के दक्षिण में प्लाट सं. 26 होना व पश्चिमी में प्लाट सं. 18 होना अंकित किया गया है । विवाद केवल मात्र इस भूखंड के उत्तर व पूर्व में स्थित सड़क की चौड़ाई के संबंध में है । प्रतिवादी के विक्रय पत्र से भी यह स्पष्ट हो रहा है कि प्रतिवादी द्वारा जो प्लाट सं. 27-ए माप 45 × 60 फुट खरीद करना बताया गया है उसके पूर्व में प्लाट सं. 27-बी बताते हुए आम रास्ता बताया गया है व वादी पक्ष की ओर से वादपत्र व उसके पक्ष में निष्पादित हुए विक्रय पत्र में इस समस्त भूखंड को 90 × 60 फुट का होना बताते हुए वही सीमांकन बताया गया है जो कि प्रतिवादी के विक्रय पत्र में है अंतर केवल मात्र यह है कि वादी के पक्ष में जो विक्रय पत्र निष्पादित किया गया है वह भूखंड 90 × 60 फुट का है व उसी भूखंड के पश्चिमी आधे भाग को प्लाट सं. 27-ए बताते हुए प्रतिवादी के पक्ष में विक्रय पत्र निष्पादित किया गया है व शेष बचे हुए आधे भाग को प्लाट सं. 27-बी होना दिखा दिया गया है जिससे यह स्पष्ट है कि प्रतिवादी द्वारा जिस भूखंड को प्लाट सं. 27-ए व 27-बी होना दर्शित किया गया है वास्तव में वह भूखंड प्लाट सं. 27 के ही 45 × 60 फुट, 45 × 60 फुट के दो भाग करते हुए पश्चिमी भाग को प्लाट सं. 27-ए व पूर्वी भाग को प्लाट सं. 27-बी होना दिखाया गया है ।

आदेश 7, नियम 3 व्य. प्र. सं. के अनुसार यदि अचल संपत्ति के संबंध में सीमांकन के अलावा अन्य किसी आधार पर भी उसकी पहचान की जा सकती है तो इसकी सीमाओं को इनकोरपोरेट किया जाना आवश्यक नहीं है । हस्तगत प्रकरण में वादग्रस्त प्लाट की संख्या व उसके दक्षिण व पश्चिमी में आए हुए भूखंडों के नम्बर व

स्थिति को देखते हुए भी वादग्रस्त प्लाट की पहचान में किसी प्रकार का कोई संदेह नहीं रहता है । यह तथ्य निर्विवाद है कि उक्त दोनों विक्रय पत्र श्रीमती शीला कुमारी द्वारा निष्पादित किया जाना बताया गया है व इस संबंध में किसी प्रकार का कोई विवाद नहीं है कि इन दोनों विक्रय पत्रों पर शीला कुमारी के हस्ताक्षर नहीं हों । प्रतिवादी द्वारा वादग्रस्त भूखंड को प्लाट संख्या 27-ए होना बताया गया है किन्तु प्लाट सं. 27-ए होने से पूर्व किसी प्लाट का संख्या 27 होना भी आवश्यक है । प्लाट सं. 27 होने के पश्चात् ही प्लाट सं. 27-ए व 27-बी का क्रम आता है । प्रतिवादी प्लाट सं. 27 के बाबत किसी प्रकार का कोई तथ्य न्यायालय के समक्ष रखने में पूर्णतया असमर्थ रहा है ।

वादी साक्षी 2 पुखराज की साक्ष्य में भी यह कथन किया गया है कि क्योंकि वह इस भूखंड के जरिए विक्रय पत्र दिनांक 30.5.66 के अनुसार इसका स्वामी था अतः दिनांक 5.10.83 को इस भूखंड को विक्रय करने का शीला कुमारी को किसी प्रकार का कोई अधिकार नहीं था । प्रतिवादी द्वारा भूखंड सं. 27-ए दिनांक 5.10.83 को शीला कुमारी से 12,000/- रुपए में खरीदना कहा है किन्तु प्रतिपरीक्षा के दौरान प्रतिवादी स्वयं के यह कथन रहे हैं कि इस प्लाट की राशि का भुगतान उसने जुलाई 83 में शीला कुमारी को किया था । उस समय एग्रीमेंट हुआ या नहीं उसे पता नहीं व इस प्लाट को खरीदने से पूर्व उसने शीला कुमारी से पूछा था और किसी से पूछताछ नहीं की । इस प्लाट के मालिक कौन है इस संबंध में उसकी ओर किसी से बात नहीं हुई केवल शीला कुमारी से बातचीत हुई थी व ललित सिंह व हिम्मत सिंह, तखत सिंह को नहीं जानता । शीला कुमारी से पहले इस प्लाट मालिक कौन थे उसे पता नहीं व शीला कुमारी ने यह प्लाट किससे खरीदा था या किसके पट्टा किया था उसे पता नहीं । शीला कुमारी ने किसी न्यायालय से प्लाट खरीदने का अधिकार लिया या नहीं उसे पता नहीं । शीला कुमारी के नाम का रजिस्ट्री पट्टा या किसी न्यायालय का आदेश उसने नहीं देखा । इस प्लाट संख्या 27-ए उसे शीला कुमार व महावीर मेहता ने बताए थे । उसने किसी सरकारी विभाग से इस प्लाट नम्बर के बारे में पता नहीं किया । प्लाट सं. 1 से 27 किसके नाम थे उसे पता नहीं उसने यह भी पता नहीं किया कि वादग्रस्त प्लाट सं. 27-ए पहले किसी का हुआ है या नहीं ।

उसने रजिस्ट्री विभाग के रिकार्ड का निरीक्षण भी नहीं किया व प्लाट सं. 27-ए के बाबत किसी न्यायालय में चल रहे मुकदमे बाबत भी पता नहीं किया ।

सन् 1983 में ललित सिंह व हिम्मत सिंह बालिग थे या नहीं उसे पता नहीं व शीला कुमारी ने रजिस्ट्री के वक्त वादग्रस्त सम्पत्ति प्लाट सं. 27-ए से संबंधित कोई भी दस्तावेज नहीं दिया व उसे पता नहीं है कि ललित सिंह व हिम्मत सिंह ने शीला कुमारी को प्लाट सं. 27-ए बेचने का कोई अधिकार दिया या नहीं । इस संबंध में शीला कुमारी ने उसे कोई दस्तावेज नहीं दिखाए न ही दिए व न ही उसने मांगे । इस साक्षी द्वारा यह भी कहा गया है कि रजिस्ट्री की लिखत किसके द्वारा लिखी गई उसे पता नहीं उसके सामने प्रदर्श ए-1 बेचाननामा टाइप नहीं हुआ व इस बेचाननामा पर हस्ताक्षर हुए उस समय वह मौजूद नहीं था वह रजिस्ट्री विभाग में नहीं गया व उसने रकम 12,000/- रुपए तीन किस्तों में अदा किए व किसी किस्त में कितनी राशि दी उसे पता नहीं है ।

इस प्रकार प्रतिवादी स्वयं की साक्ष्य में यह स्पष्ट है कि उसने विक्रेता के टाईटल व टाईटल दस्तावेज एवं विक्रेता के विक्रय करने के अधिकार के संबंध में किसी प्रकार की कोई पूछताछ नहीं की । हमारी राय में क्रेता का यह पावन कर्तव्य है कि वह विक्रेता के टाईटल के संबंध में पूर्ण जानकारी करे व विक्रेता का टाईटल प्रमाणित करने का उत्तरदायित्व स्वयं क्रेता का है । वादग्रस्त प्लाट विक्रेता शीला कुमारी द्वारा सन् 1966 में ही वादी पक्ष को विक्रय कर दिया गया था तत्पश्चात् सन् 1983 में इस प्लाट के आधे भाग को प्रतिवादी को विक्रय करने का कोई अधिकार शीला कुमारी के पास नहीं था अतः अवैध व शून्य की परिभाषा में आता है । प्रतिवादी द्वारा वादग्रस्त प्लाट पर स्वयं को चौकीदार के तौर पर काबिज होने के तथ्य को अस्वीकार किया गया है व जिस विक्रय पत्र प्रदर्श ए-1 के आधार पर प्रतिवादी अपना स्वामित्व होना बता रहा है वह विक्रय पत्र बिना अधिकार होने के कारण प्रतिवादी के पक्ष में कोई अधिकार उत्पन्न नहीं करता है । अतः ऐसी अवस्था में वादिनी प्रतिवादी से वादग्रस्त प्लाट का कब्जा प्राप्त करने की अधिकारी होना पाई जाती है व यह भी तय किया जाता है कि वादग्रस्त प्लाट सं. 27-ए नहीं होकर प्लाट सं. 27 का ही भाग है अतः उपरोक्त दोनों तनकीयात का निर्णय वादिनी के पक्ष में व प्रतिवादी के विरुद्ध किया जाता है ।

आदेश

अतः वादीगण का वाद विरुद्ध प्रतिवादी मय खर्चा डिक्री किया जाता है व प्रतिवादी को आदेश दिया जाता है कि वादग्रस्त भूखंड सं. 27 के पश्चिमी भाग क्षेत्रफल 60 × 45, जिसके उत्तर में 20 फुट का रास्ता, दक्षिण में प्लाट सं. 26, पूर्व में प्लाट सं. 27 का बाकी हिस्सा व पश्चिमी में प्लाट सं. 18 है, का खाली कब्जा वादीगण को सुपुर्द करे । वादीगण प्रतिवादी से तारीख दायरी दावा से तामिलने कब्जा प्रतिवादी से 750/- रुपए प्रतिमाह की दर से मीन प्रोफिट्स भी प्राप्त करने के अधिकारी होंगे । तद्नुसार डिक्री पर्चा मुर्तिब हो ।

हस्ताक्षर
(एस. सी. सिंघल)
अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश संख्या 3,
जोधपुर"

6. व्यथित होकर, प्रतिवादी ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान प्रथम अपील फाइल की थी, जिसकी आरंभतः, 33 दिनों परिसीमा वर्जित होने की रिपोर्ट की गई थी । स्वयं इस विलंब के प्रश्न पर, इस मामले को इस न्यायालय की वृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट किया गया था और वृहत्तर न्यायपीठ द्वारा वर्तमान निर्देश में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियों में उत्तर दिया गया :–

"24. विद्वान् न्यायाधीश ने मूलचन्द सोनी **बनाम** विरेन्द्र कुमार (1981 आर. एल. डब्ल्यू. 121) वाले मामले में निम्नलिखित मत व्यक्त किया है –

.....

30. इस प्रकार, हमें यह अभिनिर्धारित करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि **मूलचन्द** (उपर्युक्त) वाले मामले का विनिश्चय सही विधि अधिकथित करने में असफल रहा है । सुरेश कुमार शर्मा **बनाम** आइडोल लक्ष्मणजी महाराज (1973 आर. एल. डब्ल्यू. 160) वाले मामले के विनिश्चय में साधारण नियमों के नियम 234 और 235 के संबंध में विधि की सही स्थिति को अधिकथित किया गया है ।

वास्तव में, जो प्रश्न हमें निर्दिष्ट किए गए हैं उन पर, इस

न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने राम लाल **बनाम** भंवरी देवी (1984 आर. एल. डब्ल्यू. 605) वाले मामले में पहले ही न्यायनिर्णय और उत्तर दे दिया है, अतएव विवाद्यक का कोई और न्यायनिर्णयन करना अपेक्षित नहीं है ।

चूंकि इस न्यायपीठ को निर्देश किया गया है अतएव राम लाल **बनाम** भंवरी देवी (उपर्युक्त) वाले मामले में अधिकथित विधि के निबंधनों में उत्तर दिया जाता है ।

विधि के अनुसरण में अपील का निपटारा करने के लिए इसे विद्वान् एकल न्यायपीठ के समक्ष सूचीबद्ध की जाए । अपील का शीघ्र निपटारा अत्यधिक अपेक्षित है क्योंकि यह अपने प्राथमिक प्रक्रम पर वर्ष 2000 से लंबित है ।

हस्ता./- हस्ता./- हस्ता./-

(अरुण भंसाली), न्या. (गोपाल कृष्ण व्यास), न्या. (गोविन्द माथुर), न्या.''

7. अपील के गुणागणों पर, प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. आर. नागोरी ने निम्नलिखित निवेदन किए हैं :–

(i) वादियों के पक्ष में कि तारीख 30 मई, 1966 को विक्रय विलेख प्रदर्श-1 द्वारा भूखंड सं. 27 को विक्रय किया जाना वादियों द्वारा साबित नहीं किया है और यद्यपि विक्रय विलेख पर हस्ताक्षरों को साबित किया जाना कहा जा सकता है, उक्त विक्रय विलेख की अन्तर्वस्तु विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष साबित नहीं की गई है और इसलिए, भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 67 को ध्यान में रखते हुए, वादियों के पक्ष में भूखंड संख्या 27 का पश्चात्वर्ती विक्रय को वादियों के पक्ष में साबित नहीं हुआ है और इस प्रकार शीला कुमारी द्वारा प्रतिवादी-ओम प्रकाश के पक्ष में भूखंड सं. 27 का पश्चात्वर्ती विक्रय को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा नास्ति और शून्य अभिनिर्धारित नहीं किया जा सका था और अपील के अधीन कब्जे की डिक्री अपास्त किए जाने योग्य है ।

(ii) यह कि वादी प्रतिवादी-ओम प्रकाश ने तारीख 5 अक्तूबर, 1983 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा उक्त भूखंड संख्या 27 क्रय किया था और उस पर उसका स्वामी के रूप में कब्जा है और यह दावा के रूप में वर्ष 1985 में वादियों या पिता पुखराज द्वारा दिया

गया अनुज्ञेय कब्जा का मामला नहीं था जैसा कि दावा किया है और इसलिए कब्जे की डिक्री नहीं दी जा सकी थी ।

(iii) यह कि वादी शशि द्वारा तारीख 6 अगस्त, 1985 का शपथपत्र प्रतिवादी ओम प्रकाश द्वारा दिए गए तात्पर्यित अपने ससुर पुखराज के विरुद्ध वादी शशि द्वारा फाइल पूर्ववर्ती सिविल वाद सं. 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज, जो एक व्यादेश था, उसके द्वारा नहीं दिया गया था और वादी उक्त तथ्य को साबित करने में असफल रहे तथा प्रतिवादी-ओम प्रकाश ने स्वयं अपने भूखंड सं. 27ए पर निर्माण कराया था और वर्ष 1984 से इसमें निवास कर रहा था और उक्त भूखंड पर अपने नाम पर बिजली और पानी के कनेक्शन ले लिए थे और इस शपथपत्र के संबंध में विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा प्रतिवादी के पक्ष में निकाले निष्कर्ष सही हैं और इसलिए, वाद खारिज किए जाने योग्य है ।

8. उसने अपनी दलील के समर्थन में कोई निर्णयज विधियों का अवलंब लिया है, मुख्यत: मुख्य इस निवेदन पर कि दस्तावेज अर्थात् तारीख 30 मई, 1996 के विक्रय विलेख प्रदर्श 1 की अन्तर्वस्तुओं सबूत के अभाव में, जिसे वादियों द्वारा साबित नहीं किया गया है, वादी अपने पक्ष में कब्जे का दावा करने और डिक्री पाने के हकदार नहीं थे । प्रतिवादी-अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री आर. आर. नगोड़ी, ने कई मामलों का अवलंब लिया है जो वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे दिए गए हैं :–

(क) **ओम प्रकाश बेरलिया और एक अन्य** बनाम **यूनिट ट्रस्ट ऑफ इंडिया और अन्य**[1] **;**

(ख) **रामजी दयावाला एण्ड सन्स (प्रा.) लि.** बनाम **इन्वेस्ट ईम्पोर्ट**[2] **;**

(ग) **बिश्वनाथ राय** बनाम **सच्चिदानंद सिंह**[3] **;**

(घ) **माधोलाल सिंधु** बनाम **एशियन एश्योरेंस कंपनी लिमिटेड**[4] **;**

---

[1] ए. आई. आर. 1983 बाम्बे 1.

[2] ए. आई. आर. 1981 एस. सी. 2085.

[3] ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 1949.

[4] ए. आई. आर. 1954 बाम्बे 305.

(ङ) **सर मोहम्मद युसुफ और एक अन्य** बनाम **डी. और एक अन्य**[1] ;

(च) **प्रकाश कॉटन मिल्स प्रा. लि.** बनाम **म्युनिसिपल कमिश्नर फॉर ग्रेटर बाम्बे और एक अन्य**[2] ;

(छ) **श्रीमती ललिता जेम्स और अन्य** बनाम **अजीत कुमार और अन्य**[3] ;

(ज) **गोपाल कृष्णजी केटकर** बनाम **मोहम्मद हाज़ी लतिफ और अन्य**[4] ;

(झ) **एस. पी. चंगेलवारैया नायडू (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **जगन्नाथ (मृत)** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण और एक अन्य**[5] ;

(ञ) **कन्हैयालाल** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **नानाग्राम** मार्फत **इसके विधिक प्रतिनिधिगण**[6] ;

(ट) **शोभा सत्यनारायण बिरला** बनाम **जानाबाई परशुराम पवार**[7] ।

9. इसके विपरीत, प्रत्यर्थियों-वादियों/डिक्री धारकों के विद्वान् काउंसेल श्री अशोक छंगानी, ने यह जोरदार तर्क दिया है कि चौकीदार/केयरटेकर-ओम प्रकाश को दिया गया अनुज्ञेय कब्जा, वाद संपत्ति अर्थात् जोधपुर के मुख्य स्थान में स्थित भूखंड सं. 27 के भाग के ऊपर मिथ्या हक स्थापित करके दुरुपयोग करने की ईप्सा थी और प्रतिवादी, उक्त भूखंड सं. 27-ए को क्रय करने के लिए 12,000/- रुपए की राशि या अन्यथा श्रीमती शीला को उसके द्वारा दिए जाने को किसी प्रकार से साबित करने में असफल रहा है और उक्त अधिकथित संविदा, संविदा अधिनियम, 1872 की धारा 25 का अतिक्रमण करती है । श्री अशोक छंगानी ने यह भी निवेदन किया है कि प्रतिवादी द्वारा यथा दावाकृत भूखंड

---

[1] ए. आई. आर. 1968 बाम्बे 112.
[2] ए. आई. आर. 1982 बाम्बे 387.
[3] ए. आई. आर. 1991 मध्य प्रदेश 15.
[4] ए. आई. आर. 1968 एस. सी. 1413.
[5] ए. आई. आर. 1994 एस. सी. 853.
[6] 2009 (4) डब्ल्यू. एल. सी. (राजस्थान) 366.
[7] 2004 (3) सिविल कोर्ट मामले 69 (बाम्बे).

सं. 27-ए या 27-बी नहीं थे, जबकि वादियों के पक्ष में क्रमशः विक्रय विलेख के साथ त्यजन विलेख प्रदर्श 1 और 2 स्पष्टतः वर्ष 1966 से उनके हक और विधिक कब्जे को अधिकार सिद्ध होते हैं और प्रतिवादी ओमप्रकाश ने सिविल वाद संख्या 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज में दिए गए तारीख 6 अगस्त, 1985 के अपने शपथपत्र प्रदर्श 3 और 4 में स्वयं स्वीकार किया है, जिसमें यह समझौता हुआ था कि वह उक्त भूखंड सं. 27 पर वर्ष 1985 से पिता श्री पुखराज के माध्यम से अनुज्ञेय कब्जे में था और इसलिए, उसे अपने स्वयं के शपथपत्र से मुकरने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती है ।

10. श्री अशोक छंगानी ने यह भी तर्क दिया है कि इस संबंध में विवाद्यक सं. 3 पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को इस न्यायालय द्वारा उलटे जाने के योग्य है क्योंकि वादियों ने सिविल वाद संख्या 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज में प्रतिवादी-ओमप्रकाश द्वारा उक्त शपथपत्र में सशपथ, विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष इसे अच्छी तरह से साबित कर दिया है । उसने अपनी दलील के समर्थन में निम्नलिखित निर्णयों का भी अवलंब लिया है :–

(क) **जगदीश सिंह** बनाम **माधुरी देवी**[1] **;**

(ख) **श्री नरेन्द्र कुमार** बनाम **श्रीमती शान्ता कोठारी**[2] **;**

(ग) **हरदेविन्दर सिंह** बनाम **परमजीत सिंह और अन्य**[3] **;**

(घ) **पुसाराम और अन्य** बनाम **मानमल और अन्य**[4] **;**

(ङ) **रामदास बंसल (मृत)** मार्फत **विधिक प्रतिनिधिगण** बनाम **खड़क सिंह बैद्य और अन्य**[5] **;**

(च) **पोरमानन और अन्य** बनाम **पी. थियागराजन**[6] **;**

(छ) **श्याम लाल और एक अन्य** बनाम **विजय सिंह** उर्फ **बिजेन्द्र**

---

[1] (2009) 10 एस. सी. सी. 497.
[2] (2014) डब्ल्यू. एल. सी. (राजस्थान) 798.
[3] 2013 ए. आई. आर. एस. सी. डब्ल्यू. 447.
[4] ए. आई. आर. 1955 राजस्थान 186.
[5] (2012) 2 एस. सी. सी. 548.
[6] ए. आई. आर. 2011 एस. सी. 941.

सिंह और अन्य[1] ;

(ज) **छज्जू और अन्य** बनाम **ज्ञान चन्द और अन्य**[2] ;

(झ) **मारिया मरगार्डिया सेक्यूरिया फर्नाडीज और अन्य** बनाम **इराश्मो जैक दे सेक्यूरिया**[3] ।

11. मैंने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया साथ ही न्यायालय के समक्ष उद्धृत निर्णयों, जिनकी सुसंगत सीमा तक के लिए नीचे चर्चा की जानी हो ।

12. इस न्यायालय के सुविचारित राय में, प्रतिवादी-ओम प्रकाश की वर्तमान अपील खारिज किए जाने योग्य है क्योंकि प्रतिवादी-ओम प्रकाश ने श्रीमती शीला कुमारी द्वारा, उसके पुत्रों अर्थात् ललित सिंह और हिम्मत सिंह के मुख्तारनामे के रूप में तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को तात्पर्यित रूप से उसके पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख के बहाने भूखंड सं. 27 के एक भाग पर अपना हक स्थापित करने का एक निरर्थक प्रयास किया है । तारीख 30 मई, 1983 को वादियों के पिता श्री पुखराज के पक्ष में निष्पादित विक्रय विलेख प्रदर्श 1 के मात्र परिशीलन से यह पता चलता है कि उक्त विक्रय विलेख श्री तख्त सिंह द्वारा अपनी पत्नी श्रीमती शीला कुमारी, अपने अवयस्क पुत्र हिम्मत सिंह के अभिभावक की हैसियत में निष्पादित की गई थी । उक्त विक्रय विलेख भूखंड सं. 27 माप 90 × 60 फुट के अलावा चार भूखंड सं. 1, 18, 22 और 27 के साथ ही अन्य भूखंडों और आस-पास के पड़ोसियों का पूरा ब्यौरा दिया गया था और उक्त विक्रय विलेख को कभी भी किसी पक्षकार ने चुनौती नहीं दी है । तारीख 18 मई, 1987 के पश्चात्वर्ती त्यजन विलेख, प्रदर्श 2 में, कुटुंब सदस्यों के अधिकारों का भी स्वर्गीय नरेन्द्र कुमार की पत्नी वादी सं. 1-श्रीमती शशि जैन के पक्ष में त्यजन कर दिए गए थे । पड़ोसियों के मिलान के बारे में विचारण न्यायालय के निष्कर्ष, स्वयं के समक्ष उपलब्ध साक्ष्य पर आधारित होने के नाते पूर्णतः सही हैं ।

13. सिविल वाद सं. 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज में प्रतिवादी-ओम प्रकाश के तारीख 6 अगस्त, 1985 के शपथपत्र प्रदर्श-3 का परिशीलन रुचिकर है और इसलिए, इसे वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे

---

[1] ए. आई. आर. 2008 इलाहाबाद 1.

[2] 2013 (130) ए. आई. सी. 765.

[3] (2012) 5 एस. सी. सी. 370.

विस्तार में उद्धृत किया जाता है :–

"श्रीमान् अति. मुन्सिफ मजिस्ट्रेट सं.1 जोधपुर ।
सिविल वाद सं. 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज"
शशि जैन बनाम पुखराज वगैरह

शपथपत्र

मैं ओम प्रकाश पुत्र श्री राजाराम जी जाति धोबी निवासी प्लाट सं. 27, भेरुविलास सरदार क्लब के पास, जोधपुर शपथ पूर्वक बयान करता हूं कि :–

कि प्लाट सं. 27 शहर जोधपुर में भेरुविलास की जमीन में जो कि सरदार क्लब के पास आई हुई है । उक्त प्लाट पर चारों तरफ पट्टियों महावीर कुमार मेहता ने खड़े रहकर लगवाई थी । इस प्लाट पर एक कमरा बना हुआ है ।

कि मैं यहां प्लाट सं. 27 पर पिछले छह मास से रह रहा हूं । मैंने कभी भी उपरोक्त प्लाट पर श्रीमती शशि जैन का कब्जा नहीं देखा ।

कि मैं श्री पुखराज बोहरा के कहने से यहां रह रहा हूं । जिससे उनको कोई ऐतराज नहीं है । उक्त प्लाट पर रहकर चौकीदारी का कार्य करता हूं ।

हस्ता./-
शपथकर्ता

तसदीक :–

मैं ओम प्रकाश पुत्र श्री राजाराम जी जाति धोबी, निवासी प्लाट सं. 27, भेरुविलास सरदार क्लब के पास, जोधपुर में रहने वाला यह तसदीक करता हूं कि उक्त शपथपत्र संख्या 1 से 3 में निजी ज्ञान से सही है । इसका कोई हिस्सा झूठा नहीं है और न ही कुछ छुपाया है । सत्य में परमात्मा मेरी मदद करे ।

हस्ता./-
शपथकर्ता"

14. जैसाकि वादियों के पक्ष में समय के पूर्ववर्ती बिन्दु पर निष्पक्ष और सुस्पष्ट हक के विरुद्ध, प्रतिवादी-ओम प्रकाश धोबी जो उक्त भूखंड के

चौकीदार/केयरटेकर के रूप में अनुज्ञेय कब्जा था, श्री ललित सिंह और श्री हिम्मत सिंह को पावर ऑफ अटर्नी के रूप में श्रीमती शीला कुमारी पत्नी श्री तख्त सिंह द्वारा निष्पादित 12,000/- रुपए के लिए तारीख 5 अक्तूबर, 1983 का विक्रय विलेख प्रदर्श-ए-1ए का दावा करते हुए, उक्त भूखंड और उसके भाग पर अपना स्वयं का हक स्थापित करने का प्रत्यन किया । न तो ऐसी कोई पावर ऑफ अटर्नी विचारण न्यायालय और न ही स्वामी श्री ललित सिंह और हिम्मत सिंह के समक्ष प्रस्तुत की गई जिन्होंने वर्ष 1993 से वयस्क होना स्वीकृत किया था, जिनके उक्त विक्रय विलेख पर हस्ताक्षर थे । स्वयं डी.डब्ल्यू-1 ओम प्रकाश के अभिकथन से, वह पूर्ण रूप से यह स्थापित करने में असफल रहा कि उसने श्रीमती शीला कुमारी को किसी प्रकार का प्रतिफल दिया । उसके अभिकथन वास्तव में विसंगतियों की पहेली और झूठे अभिकथन हैं । मुख्य परीक्षा में, उसने यह अभिकथित किया है कि वह वर्ष 1984 से भूखंड सं. 27-ए में रह रहा है, जो उसने तारीख 5 अक्तूबर, 1983 को श्रीमती शीला कुमारी से खरीदा था । तत्पश्चात् उसने इसमें पत्थर की पट्टियों से चारदीवारी और दो कमरे, प्रसाधन और स्नानागार तथा रसोई बनवाई थी, जिसका निर्माण कार्य लगभग तीन वर्ष चला था; बाद में उसने उक्त भूखंड पर अपने नाम पर पावर और पानी का कनेक्शन लिया था । किन्तु अपनी प्रतिपरीक्षा में, उसके दावा स्वयं परस्पर विरोधी हैं कि वह वायु सेना में सेवारत था और वायु सेना आफिसर के मेस सेवक क्वार्टर्स में रहता था और जुलाई, 1983 में उसने श्रीमती शीला कुमारी को किस्तों में उक्त धनराशि का संदाय किया था । उसने यह भी स्वीकार किया है कि पत्थर पट्टियों का निर्माण अकेले महावीर कुमार मेहता ने किया था । उसने यू. आई. टी. या नगरपालिका से निर्माण के लिए कोई अनुमति नहीं ली थी । प्रश्नगत भूखंड वर्ष 1983 से 1986 तक खाली पड़ा था । उसे नहीं मालूम कि कब उसने उक्त भूखंड को श्रीमती शीला कुमारी से क्रय किया था, क्या उसने सामाजिक जीवन छोड़ दिया था और वह साध्वी बन गई थी और कि उसने वर्ष 1986 में उक्त भूखंड का कब्जा लिया था और तत्पश्चात् उस पर चारदीवारी का निर्माण कराया था ।

15. तारीख 24 सितम्बर, 1998 की उसकी प्रति-परीक्षा के सुसंगत सार इस प्रकार नीचे दिया गया है :–

> "..... मैंने इस प्लाट को खरीदने से पहले शीला कुमारी से पूछा था और किसी से पूछताछ नहीं की । इस प्लाट के मालिक कौन हैं

इस बाबत मेरी और किसी से बातचीत नहीं हुई केवल शीला कुमारी से ही बातचीत हुई थी । शीला कुमारी के कुल कितने प्लाट इस क्षेत्र में हैं मुझे मालूम नहीं । मैं ललित सिंह व हिम्मत सिंह पुत्र तख्त सिंह को नहीं जानता । इन व्यक्तियों से न तो मैं मिला हूं न जानता हूं न ही मुझे इनकी उम्र के बारे में पता है । शीला कुमारी के पहले इन प्लाटों का मालिक कौन था मुझे पता नहीं । शीला कुमारी ने यह प्लाट किसी से खरीदे थे या इसे पट्टे पर लिया था मुझे पता नहीं । शीला कुमारी से किसी न्यायालय से प्लाट खरीदने का अधिकार लिया या नहीं मुझे पता नहीं । शीला कुमारी के नाम की रजिस्ट्री पट्टा या किसी न्यायालय का आदेश मैंने नहीं देखा । इस प्लाट के सं. 27-ए मुझे शीला कुमारी व महावीर मेहता ने बताए थे । मैंने किसी भी सरकारी विभाग यू. आई. टी. या नगर निगम से मालूम नहीं किया कि इस प्लाट के नंबर किसके नाम के थे मुझे पता नहीं । मैंने रजिस्ट्री विभाग में यह मालूम किया था कि वादग्रस्त प्लाट सं. 27-ए पहले से बिका हुआ है या नहीं । मैंने रजिस्ट्री विभाग से मौखिक पूछताछ की थी लिखत में प्रार्थना पत्र नहीं दिया था मैंने रजिस्ट्री विभाग के रिकार्ड का निरीक्षण नहीं किया था । मैंने यह पूछताछ इस प्लाट सं. 27-ए के बाबत नहीं की, इसका कोई मुकदमा न्यायालय में चल रहा है या नहीं । प्रदर्श-4 पर मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं । महावीर कुमार मेहता से मेरा कोई झगड़ा नहीं है ।

यह गलत है कि मैंने अति. मुंसिफ मजिस्ट्रेट नंबर एक जोधपुर में शशि बनाम पुखराज के मुकदमे में यह शपथपत्र दिया हो कि मैं प्लाट नंबर 27 पर रहकर चौकीदारी का कार्य कर रहा हूं । प्रदर्श-4 आज से पहले कभी नहीं देखा । मैंने इस मुकदमे के होने के बाद में भी मैंने यह जानकारी प्राप्त नहीं की कि प्लाट नंबर 27-ए के बारे में पहले कोई मुकदमा चल रहा था या नहीं । मैंने अपने जवाब दावे में पद संख्या पांच में ए से बी हिस्सा लिखाया था । जो सही है । जवाब दावे के पद संख्या पांच में ए से बी हिस्से में सी से डी हिस्सा गलत है । प्लाट नंबर 27-ए खरीदने के बाद मैंने उस पर निर्माण कार्य किया था । छीणे महावीर कुमार मेहता ने खड़े होकर लगवाई थी । यू. आई. टी. व नगर निगम में मैं परमीशन भी लेने गया था तो बताया कि इस एरिये का नक्शा बना हुआ नहीं है । मैंने यू. आई. टी.

में भवन निर्माण हेतु कोई प्रार्थना पत्र नहीं दिया । मैंने निर्माण कार्य 1986 में शुरू किया था । 1983 से 1986 तक यह प्लाट खाली पड़ा रहा । जिस समय मैंने प्लाट खरीदा उस समय तक शीला कुमारी साधु बनी थी या नहीं मुझे पता नहीं । मुझे प्रदर्श-8 नोटिस प्राप्त हुआ था । इस नोटिस का मैंने जवाब दिलाया या नहीं मुझे मालूम नहीं । मैंने नोटिस आने के बाद में व दावा करने के बाद में मैंने रजिस्ट्री विभाग से प्लाट नंबर 27-ए की सन् 1966 में रजिस्ट्री हो चुकी है इस बाबत जानकारी प्राप्त नहीं की । प्रदर्श-1 पर के से एल शीला कुमारी के हस्ताक्षर हैं या नहीं मुझे पता नहीं । प्लाट संख्या एक अठारह व सत्ताईस वादग्रस्त प्लाट के क्षेत्र में स्थित है इसके पहले मालिक कौन था और अब कौन है मुझे मालूम नहीं । प्रदर्श-1 रजिस्ट्री मैंने आज पहली बार देखी है ।

मुझे पता नहीं कि प्लाट नंबर ए अठारह व सत्ताईस वादग्रस्त क्षेत्र के सन् 1966 में नरेन्द्र कुमार व लखपतराज ने खरीद लिए हों । मुझे पता नहीं कि प्लाट नंबर 27-ए हिम्मत सिंह व ललित सिंह पुत्र तख्त सिंह के थे या नहीं । प्रदर्श-ए-1 बेचाननामा में सी से डी हिस्सा सही लिखा हुआ है । सन् 1983 में ललित सिंह व हिम्मत सिंह बालिग थे या नहीं मुझे मालूम नहीं । मुझे शीला कुमारी ने रजिस्ट्री के वक्त सम्पत्ति प्लाट नंबर 24-ए से संबंधित कोई दस्तावेज नहीं दिया था । मुझे यह पता नहीं कि ललित सिंह वह हिम्मत सिंह ने शीला कुमारी को प्लाट नंबर 27-ए बेचने का कोई अधिकार दिया नहीं । मुझे शीला कुमारी ने ललित सिंह व हिम्मत सिंह द्वारा शीला कुमारी को प्लाट नंबर 27-ए बेचने का अधिकार देने का कोई दस्तावेज न तो दिखाया न ही दिया और न ही मैंने मांगा । क्योंकि मुझे इस बारे में कोई जानकारी नहीं थी । रजिस्ट्री की लिखत किसी वकील द्वारा लिखी गई या नहीं मुझे पता नहीं । प्रदर्श ए-1 बेचाननामा कौन टाइप करवाकर लाया था मुझे पता नहीं । टाइप होने के कितने दिन बाद प्रदर्श ए-1 रजिस्ट्री करवाया था मुझे पता नहीं । टाइप होने के कितने दिन बाद प्रदर्श-1 रजिस्ट्री करवाया था मुझे पता नहीं । प्रदर्श ए-1 पर हस्ताक्षर ए से बी हुए उस समय मैं मौजूद नहीं था । मुझे प्रदर्श ए-1 शीला कुमारी ने दिया था । मैं रजिस्ट्री विभाग में नहीं गया था । मैं प्लाट नंबर 27-ए बारह हजार रुपए में खरीदा था । मैंने यह रकम तीन किश्तों में अदा की थी । सबसे पहले जुलाई में रुपए दिए थे

लेकिन कितने रुपए दिए थे या नहीं । जुलाई में जो मैंने शीला कुमारी को रकम दी थी उसकी कोई रसीद नहीं ली थी अगस्त में कितने रुपए दिए थे या नहीं । तीसरी किश्त सितम्बर में दी उसकी रसीद नहीं ली थी और कितने रुपए दिए यह भी याद नहीं लेकिन पूरी रकम मैंने सितम्बर में दे दी थी । अक्तूबर, 1983 में मुझे रजिस्ट्री लाकर दी थी । लेकिन रजिस्ट्री विभाग में रजिस्ट्री कब पेश की गई थी तथा शीला कुमारी को कब मिली इसकी मेरे को जानकारी नहीं है ।

प्लाट पर कब्जा मैंने 1986 में किया था और बाउंड्री बनवाई थी । 1986 में कब्जा किया उस समय शीला कुमारी मौके पर थी या नहीं मुझे पता नहीं । दावा करने के बाद में मेरे को शीला कुमारी मिली नहीं इसलिए मेरी बात नहीं हुई । मैंने शीला कुमारी को ढूंढा था लेकिन मिली नहीं । दावा होने के बाद में मैं महावीर कुमार से नहीं मिला । प्लाट नंबर 27-ए पर कोर्ट का कोई व्यक्ति नहीं आया था । 1989 में प्लाट नंबर 27-ए का किराया साढ़े सात सौ रुपए आ सकता था या नहीं मेरे को नहीं पता । मुझे यह पता नहीं कि प्लाट नंबर 27-ए के शुरू के मालिक हिम्मत सिंह व ललित सिंह की ओर से शीला कुमारी ने प्लाट संख्या 27-ए लखपतराज व नरेन्द्र कुमार को दिनांक 30 मई, 1966 को बेचा हो । नरेन्द्र कुमार व लखपतराज को मैं नहीं जानता । मुझे पता नहीं कि नरेन्द्र कुमार का स्वर्गवास हो गया हो और वादीगण नरेन्द्र की पत्नी और पुत्र हो तो मुझे पता नहीं । 1989 में वादग्रस्त प्लाट नंबर 27-ए की कीमत क्या थी मुझे पता नहीं ।"

16. इसमें पिता श्री पुखराज का अभिकथन नोटिस करने के लिए भी उपयुक्त है जिसके अभिकथन तारीख 21 फरवरी, 1998 को विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा अभिलिखित किए गए थे । उसके अभिकथन वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे विस्तार से उद्धृत हैं :–

"मैं श्रीमती शीला कुमारी को जानता हूं । मैं शीला कुमारी से अपने बच्चों के नाम जमीन खरीदी थी जो जमीन मैंने 1966 में खरीदी थी जिसकी लिखा-पढ़ी करवाई थी । असल बेचाननामा प्रदर्श-1 है । यह लिखा-पढ़ी प्रदर्श-1 गणपतराज जी टाटीया अधिवक्ता द्वारा ड्राफ्ट की गई थी । गणपतराज जी टाटीया और मैं बचपन में साथ

रहे हैं और एक ही मोहल्ले में रहे हैं । मैं इनके हस्ताक्षर देखकर बता सकता हूं । प्रदर्श-1 पर ए से बी हस्ताक्षर गणपतराज जी एडवोकेट के हैं । प्रदर्श-1 पर के से एल प्रत्येक पृष्ठ पर शीला कुमारी के एम से एन ललित सिंह के व आई से जे तख्तसिंह के हस्ताक्षर हैं । प्रदर्श-1 पर हस्ताक्षर इन लोगों द्वारा मेरे सामने किए गए थे इसलिए मैं पहचानता हूं । बेचाननामा निष्पादित होने के बाद में बेचाननामा में लेख प्लाट पर कब्जा मेरा रहा । नरेन्द्र कुमार व लखपतराज खरीददार मेरे पुत्र हैं । बेचान के समय दोनों नाबालिक थे । नरेन्द्र कुमार का स्वर्गवास हो गया है । शशि मेरी पुत्रवधु शशि व उसका लड़का शैलेन्द्र वादग्रस्त प्लाट के मालिक हैं । शशि व शैलेन्द्र को प्लाट देने की लिखा-पढ़ी कराई थी ।

मेरे द्वारा कराई गई लिखा-पढ़ी असल प्रदर्श-2 है । प्रदर्श-2 पर ए से बी मेरे हस्ताक्षर हैं सी से डी मेरी पत्नी सुमित्रा देवी के व से एफ मेरे अन्य पुत्र लखपतराज के हस्ताक्षर हैं । प्रदर्श-2 पर साक्षी रणजीत लोढा व हनवंतराज टाटीया द्वारा डाली गई थी । साक्षी के हस्ताक्षर प्रदर्श-2 पर जी से एच हनवंतराज जी टाटीया व आई से जे रणजीत लोढा के हैं । साक्षी के हस्ताक्षर प्रदर्श-2 पर जी से एच हनवंतराज जी टाटीया व आई से जे रणजीत लोढा के हैं । साक्षी के हस्ताक्षर मेरे सामने किए गए थे इसलिए मैं पहचानता हूं । प्लाट सं. 27 के बारे में मेरे व मेरी पुत्रवधु शशि वादिनी के साथ मुकदमा चला था । मेरे व मेरी पुत्रवधु के बीच जो मुकदमा चला था उसमें प्रतिवादी ओम प्रकाश ने शपथपत्र पेश किया था । शशि वादिनी द्वारा मेरे विरुद्ध पेश किए गए दावे में प्रतिवादी द्वारा शपथपत्र पेश किया गया था जो असल शपथपत्र प्रदर्श-4 है । जिस पर ए से बी हस्ताक्षर ओम प्रकाश के हैं । प्रतिवादी ओम प्रकाश को मैंने वादग्रस्त प्लाट पर चौकीदार के रूप में रखा था । प्रतिवादी वादग्रस्त प्लाट का मालिक नहीं है । प्लाट सं. 27 एक ही प्लाट है । मैंने इस प्लाट सं. 27 का कोई विभाजन नहीं किया था । वादग्रस्त प्लाट लखपतराज व नरेन्द्र द्वारा खरीदने के बाद में शीला कुमारी का भी कब्जा या मालिकाना अधिकार नहीं रहा । शीला कुमारी को वादग्रस्त प्लाट बेचने का अधिकार नहीं रहा । प्रदर्श-2 पर सुमित्रा देवी व लखपतराज द्वारा मेरे सामने हस्ताक्षर किए गए थे । 1986-87 में जब तक प्लाट मेरे कब्जे में रहा उस समय तक इस प्लाट के 60 × 45 फुट हिस्से का किराया 600-700 रुपए प्रतिमाह आ

सकता था । वादग्रस्त प्लाट के अलावा भी मेरे इस क्षेत्र में प्लाट आए हुए थे ।

***** जिरह द्वारा वकील प्रतिवादी"

प्रस्तुत वाद मैंने नहीं पढ़ा । यह सही है कि वादग्रस्त भूखंड बाबत को हदूद वादपत्र में लिखे गए हैं उसकी मुझे जानकारी नहीं है । प्रदर्श-1 में पृष्ठ संख्या छह व सात में वादग्रस्त भूखंड के विवरण पूर्व में 20 फुट चौड़ी सड़क पश्चिम में प्लाट संख्या 18 उत्तर में 50 फुट चौड़ी सड़क व उसके पश्चात् पार्क की जमीन तथा दक्षिण में प्लाट संख्या 26 दर्शाया गया है । प्रदर्श-1 जो बेचाननामा निष्पादित हुआ था वह मेरे पुत्र नरेन्द्र कुमार व लखपतराज के पक्ष में हुआ था । यह सही है कि प्रदर्श-1 बेचाननामा ने नरेन्द्र कुमार व लखपतराज मालिक थे । नरेन्द्र कुमार की मृत्यु 23 वर्ष की उम्र में हुई थी । यह सही है कि प्रदर्श-1 में बेचाननामा में मेरे और मेरी पत्नी सुमित्रा देवी के कोई हक या अधिकार नहीं थे ।

महावीर कुमार मेहता पुत्र छतरमलजी को मैं जानता हूं । यह मेरे मोहल्ले में रहता है । मेरी इनसे कोई रिश्तेदारी नहीं है । मेरे यहां इनका आना-जाना नहीं रहता था । पूर्व में जो शशि जैन ने दावा किया था उसमें उसने क्या-क्या अनुतोष मांगा था मुझे आज जुबानी याद नहीं है । उसमें पक्षकार वादिनी शशि जैन प्रतिवादी मैं था । इसका निपटारा 1987 में हो गया । वह वाद राजीनामे फैसला हुआ मेरे मेरी पुत्रवधु व पौत्र के पक्ष में हक तर्कनामा लिखा है राजीनामे के पूरे तथ्य मुझे याद नहीं हैं । यह सही है कि ओम प्रकाश उस मुकदमे में पक्षकार नहीं था । यह सही है कि प्रदर्श-4 शपथपत्र में मैंने ओम प्रकाश की पहचान नहीं की थी । इसमें ओथ कमिश्नर कौन था मेरे को याद नहीं । मैं ओम प्रकाश को चौकीदारी के रूप में माहवारी 30/- रुपए अदा करता था । इसका कोई खर्च खाता नहीं खोला । ओम प्रकाश को वर्ष 1985 में चौकीदार रखा था । महावीर कुमार पुत्र छतरमल प्रोपर्टी डीलिंग का काम करता है या नहीं मेरे को पता नहीं । यह कहना गलत है कि महावीर कुमार मेरा रिश्तेदार है । अभी महावीर कुमार कहां रहता है मुझे पता नहीं क्योंकि मैंने वह मोहल्ला 1991 में छोड़ दिया था । वादग्रस्त भूखंड पर मैं आज से पहले अंतिम बार 1986 में गया था । 1986 में वादग्रस्त प्लाट पर दो कमरों का निर्माण करवाया हुआ होगा फिर कहा एक या दो कमरों का निर्माण

करवाया हुआ होगा लेकिन वह निर्माण मेरे द्वारा करवाया गया है । मैंने निर्माण कितने फुट बाई कितने फुट के कमरों का निर्माण करवाया यह मुझे याद नहीं । कमरों पर कितनी छीणे डाली यह भी मुझे मालूम नहीं । आज खुद कहा कि कोठरी टाई बनाई थी । निर्माण कार्य का मेरे पास कोई हिसाब-किताब नहीं है । ठेकेदार व कारीगिरी के नाम भी मेरे को याद नहीं है ।

यह गलत है कि जिस प्लाट को मैं प्लाट संख्या 27 होना कहता हूं व प्लाट संख्या 27 न होकर के प्लाट सं. 27-ए हो । यह गलत है कि दिनांक 5.10.83 को प्रतिवादी ओमप्रकाश ने विवादित भूखंड 27-ए शीला कुमारी इत्यादि से खरीदा हो । क्योंकि मैं इसका मालिक था इसलिए उसको बेचने का अधिकार नहीं था । यह कहना गलत है कि विवादित भूखंड पर ओम प्रकाश ने कई महीनों तक निर्माण करवाया हो और उस पर बिजली व पानी के कनेक्शन प्रतिवादी के नाम से हो । बिजली पानी के बिल ओम प्रकाश के इसी पते पर आते हों तो मुझे पता नहीं । यह कहना गलत है कि प्रदर्श-4 पर ए से बी हस्ताक्षर प्रतिवादी ओम प्रकाश के न हों । विवादग्रस्त भूखंड के नाम के भूखंड का माहवार किराया 600-700 रुपए कहने का आधार यह है कि मेरे और भी भूखंड आए हुए थे और मैं वहां बराबर आता-जाता रहता था । यह सही है कि मेरे भूखंडों को कभी किसी व्यक्ति को किराए पर नहीं दिया । मैं मार्केट रेट के हिसाब से छह सौ सात सौ रुपए किराया बताता हूं । मार्केट रेट से मेरा मतलब है कि जो लेता है और जिस भाव से जाता है उसे मार्केट रेट कहते हैं । यह सही है कि मैंने किसी व्यक्ति को इस भाव से न तो कभी भूखंड किराए पर दिया और न ही कोई राशि वसूल ही की । यह कहना गलत है कि मैं शशि जैन जो मेरी पुत्रवधु है को लाभ पहुंचाने के उद्देश्य से झूठे बयान दे रहा हूं ।"

17. विद्वान् विचारण न्यायालय ने अभि. सा. 1, शैलेन्द्र सिंह की भी परीक्षा कराई थी और उसने भी तख्त सिंह के सभी चार कुटुंब सदस्यों द्वारा उक्त विक्रय विलेख प्रदर्श-1 के निष्पादन का समर्थन किया और इस न्यायालय ने भी उक्त विक्रय विलेख का परिशीलन किया जिसमें तख्त सिंह, शीला कुमारी और ललित सिंह जिन्होंने वर्ष 1966 में उस समय पर आयु के 18 वर्ष और 8 महीने की आयु पूरी कर ली थी जब उन्होंने विक्रय विलेख पर हस्ताक्षर किए थे । जबकि इसके विपरीत, प्रतिवादी-ओम प्रकाश

के पक्ष में तात्पर्यित विक्रय विलेख, प्रदर्श-ए-1ए पर ललित सिंह या हिम्मत सिंह ने हस्ताक्षर नहीं किए अपितु उक्त शीला कुमारी, जिसने कुछ साक्षियों के कथनानुसार समाज का त्यजन कर दिया था और दीक्षा ले ली थी तथा साध्वी बन गई थी, तात्पर्यित तौर पर हस्ताक्षर उक्त विलेख पर थे । जिसके हस्ताक्षर और जिनकी अन्तर्वस्तुएं प्रतिवादी द्वारा साबित नहीं की जा सकी थीं और दूसरी ओर, उसके अभिकथनों में अनेकों विरोधाभास हैं और प्रतिपरीक्षा से उक्त दस्तावेज अर्थात् उसके पक्ष में विक्रय विलेख के बारे में गंभीर संदेह उद्‌भूत करती है । प्रतिवादी साक्षी 3 अशोक कुमार ने अपनी प्रतिपरीक्षा में यह भी अभिकथन किया है कि वह श्रीमती शीला को वर्ष 1982-1983 से जानता है और यहां तक कि उस अवधि से जब वह साध्वी के कपड़े पहनने लगी थी । प्रतिवादी साक्षी 3 अशोक कुमार की प्रतिपरीक्षा के उक्त भाग को वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत किया जाता है :–

> "..... मैं शीला कुमारी को सन् 1982-83 से जानता हूं । शीला कुमारी उस वक्त शादीशुदा थी या नहीं मुझे पता नहीं उस वक्त वह भगवा कपड़े पहनती थी । शीला कुमारी का मकान कहां पर है मुझे पता नहीं ।....."

18. उपर्युक्त साक्ष्य का सम्पूर्ण परिशीलन करने पर इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि प्रतिवादी का भूखंड सं. 27, भेरुविलास नजदीक सरदार क्लब, जोधपुर का कब्जा मात्र अनुज्ञेय कब्जा था और वह भूखंड 27-ए का स्वामी नहीं था जैसाकि उसके द्वारा दावा किया गया है तथा तारीख 5 अक्तूबर, 1983 का प्रदर्श-ए-1ए, उसके पक्ष में तात्पर्यित विक्रय विलेख एक बनावटी और जाली दस्तावेज है । वादियों ने वर्ष 1966 से उक्त भूखंड सं. 27 पर अपना कब्जा साबित कर दिया और अनुज्ञप्ति या अनुज्ञा के प्रतिसंहरण के बावजूद, प्रतिवादी प्रश्नगत भूखंड का कब्जा, वादियों को वापस सौंपने में असफल रहे हैं । इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादियों का वाद डिक्री करने में पूरी तरह से न्यायानुमत है ।

19. यहां यह न्यायालय यह भी मत व्यक्त करना चाहता है कि प्रतिवादी-ओम प्रकाश के तारीख 6 अगस्त, 1985 के शपथपत्र को साबित करने में वादियों की असफलता के बारे में विवाद्यक सं. 3 पर विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्ष कायम रखे जाने योग्य नहीं हैं । पिता श्री पुखराज, अभि. सा. 2 ने न्यायालय के समक्ष पूर्वोक्त उद्धरित अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह कथित किया है कि उक्त शपथपत्र पर ओम प्रकाश ने

हस्ताक्षर किए थे और उसकी पुत्रवधु द्वारा फाइल पूर्ववर्ती सिविल वाद सं. 313/1985-श्रीमती शशि बनाम पुखराज में उसे दिया गया था, जो पक्षकारों के बीच समझौते को ध्यान में रखते हुए अंतिम रूप से विनिश्चय हुआ था और श्री पुखराज के इस कथन का खंडन नहीं किया गया है तथा तथ्य को भी ध्यान में रखते हुए, शपथ आयुक्त के समक्ष सशपथ में सम्यक् रूप से शपथपत्र न्यायालय के समक्ष फाइल किया गया था और इसे न्यायालय द्वारा प्रदर्श-3 के रूप में चिह्नित किया गया था, इसलिए, विद्वान् विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में त्रुटि कारित की है कि वादी, प्रतिवादी के उक्त शपथपत्र को साबित करने में असफल रहे हैं, जिनमें उसने यह स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उसे मात्र वह ही चौकीदार के रूप में भूखंड सं. 27 पर रहता था जिसकी अनुज्ञा पुखराज द्वारा दी गई थी । इसलिए, विवाद्यक सं. 3 पर निकाले गए निष्कर्ष उलटे जाने योग्य हैं और यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि प्रतिवादी-ओम प्रकाश द्वारा भूखंड सं. 27 के चौकीदार के रूप में अनुज्ञेय कब्जे भी हैं । सक्षम सिविल न्यायालय ने स्वीकार करते हुए, तारीख 6 अगस्त, 1985 को दिया गया शपथपत्र समुचित है और पश्चात्वर्ती वर्तमान वाद में उसे इससे मुकरने नहीं दिया जा सकता है जिसे उसके द्वारा कब्जा सौंपने से इनकार करने पर वादी द्वारा फाइल किया जाना अपेक्षित था ।

20. प्रतिवादी-ओम प्रकाश के विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री आर. आर. नागोरी द्वारा अवलंब लिए गए निर्णय वर्तमान मामले के तथ्यों में उनकी कोई सहायता नहीं करते हैं, क्योंकि इन निर्णयों में से कोई भी रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख की संरचना से संबंधित नहीं है और वर्ष 1966 से पहले रजिस्ट्रीकृत उक्त विक्रय विलेख की सत्यता के बारे में प्रबल उपधारणा बनती है । इसकी सत्यता की उपधारणा साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 90 के अनुसार भी की जा सकती है, क्योंकि विचारण न्यायालय को उक्त दस्तावेज विचार किए 30 वर्ष से अधिक का समय बीत चुका है, क्योंकि वर्ष 1999 में अपील के अधीन डिक्री पारित हुई थी और इसलिए, न्यायालय को उक्त दस्तावेजों प्रदर्श-1 विक्रय विलेख का अवलंब लेने का हक था और इसकी अन्तर्वस्तुएं भी साबित हो गई हैं । इसके अतिरिक्त इस न्यायालय की यह राय है कि अनुज्ञेय कब्जे में किसी केयरटेकर या व्यक्ति के आग्रह पर, जिसने स्वयं अपने पक्ष में मिथ्या हक स्थापित किया है, वादियों के हक के बारे में जांच-पड़ताल नहीं किए जा सकते हैं क्योंकि वादी स्वयं ही अपने हक की घोषणा करने का दावा कर रहे हैं ।

21. दूसरी ओर, यदि प्रतिवादी संपत्ति में अपने स्वयं के हक को सिद्ध करने में असफल रहता है वादी कब्जे की डिक्री पाने का हकदार है ।

22. हाल ही में, माननीय उच्चतम न्यायालय ने **मारिया मरगार्डिया सेक्यूरिया फर्नाडीज और अन्य** बनाम **इराश्मो जेक दे सेक्यूरिया**[1] वाले मामले में अत्यधिक विस्तार और अनुसंधान पाक निर्णय में, संपत्ति विधि, सुखाचार अधिनियम, 1882, संपत्ति अंतरण अधिनियम, 1882 और विशिष्ट अनुतोष अधिनियम, 1963 के अधीन कब्जे के चार प्रकारों की चर्चा करते हुए, गोवा के सुप्रसिद्ध और प्रतिष्ठित ईसाई परिवार के मामले को निपटाया है जहां वाद परिसर का अनुज्ञेय और स्वतंत्र कब्जा बहन द्वारा अपने भाई को केयरटेकर के रूप में दिया गया था, जबकि बहन अपने पति के साथ नौसेना में अपनी सेवा के संबंध में गोवा से बाहर थी और भाई ने 20 वर्षों से लंबे समय से अविवादित हक को उसके स्वयं के गृह में उसके कब्जे को अवैध तौर पर इनकार कर दिया था । माननीय उच्चतम न्यायालय ने 50,000,00/- रुपए खर्चे सहित आवासीय गृह के लिए 10 लाख रुपए के अन्तःकालीन लाभ देते हुए, बहन की अपील मंजूर कर लिया जिसे पैरा 32 से 36 तक में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया है :–

> "**न्यायिक प्रक्रिया में, सत्य का पता लगाने के लिए मुख्य मार्गदर्शक :**
>
> 32. इस दुर्भाग्यपूर्ण मुकदमे में, न्यायालय का गंभीर प्रयास उस तथ्य का पता लगाना है जिन पर वस्तुत: सत्य निर्भर करता है ।
>
> 33. सत्य, संपूर्ण न्यायिक प्रक्रिया में, मुख्य मार्गदर्शक के रूप में होना चाहिए । सत्य, अकेले ही न्याय का आधार होता है । संपूर्ण न्यायिक प्रणाली को वास्तविक सत्य को खोजने और पता लगाने के लिए ही सृजित किया गया है । न्यायाधीशों को सभी स्तरों पर सत्य की खोज करने में स्वयं को गंभीरता से लगाना चाहिए । यह उनका समादेश, आबद्धता और भारी कर्त्तव्य है । न्यायिक प्रणाली में केवल विश्वसनीयता होती है जब लोग इस बात से संतुष्ट होते हैं कि न्याय सत्यता पर आधारित है ।
>
> 34. मोहनलाल शामजी सोनी **बनाम** भारत संघ, (1991) (अनुपूरक) 1 एस. सी. सी. 271 वाले मामले में, इस न्यायालय ने

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 370.

यह मत व्यक्त किया है कि ऐसी स्थिति में विचार के लिए यह प्रश्न उद्भूत होता कि क्या किसी न्यायालय के पीठासीन अधिकारी को दो पक्षकारों के बीच के विवाद में केवल निर्णायक के रूप में बैठना चाहिए और मुकाबले के अन्त में घोषणा करनी चाहिए कि कौन जीता है और कौन हारा है या उसकी स्वयं की, स्वतंत्र पक्षकारों का यह कर्तव्य है कि सत्य और प्रशासनिक न्याय के लिए कार्यवाही में सक्रिय भूमिका अदा करे ? यह एक सर्वथा स्वीकार्य और सुस्थिर सिद्धांत है कि न्यायालय को अपने कानूनी कृत्यों का निर्वहन करना चाहिए – न्याय देने में विधि के अनुसार विवेकाधीन या आबद्धकारी है क्योंकि न्यायालय का यह कर्तव्य है कि न केवल न्याय करे अपितु यह भी सुनिश्चित करे कि न्याय हुआ है ।

35. लोग यह प्रत्याशा करते हैं कि अपनी इस आबद्धता का निर्वहन करना चाहिए कि वस्तुतः सत्य कहा है । न्यायिक प्रणाली के प्रारंभ से ही इसे स्वीकार किया गया है कि सत्य की खोज, दोष-निवारण और स्थापना ही न्याय न्यायालयों का मुख्य प्रयोजन रहा है ।

36. इस न्यायालय ने रितेश तिवारी और अन्य **बनाम** उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2010) 10 एस. सी. सी. 677 वाले मामले में, उद्धृत उद्धरण को पुनः दोहराया है जो इस प्रकार है –

> ' .... प्रत्येक विचारण, एक सतत खोज की यात्रा है जिसमें सत्य की तलाश होती है'
>
> .....सत्य की तलाश निरन्तर रहती है ..... इस मामले में भी ।"

23. मिथ्या दावों और प्रतिरक्षाओं की अवज्ञा करते हुए, भू-संपत्ति के मूल्यों का तीव्र गति से वृद्धि के कारण भू-संपत्ति के मुकदमेबाजी में अति गंभीर समस्याओं पर विचार किया गया है, माननीय उच्चतम न्यायालय ने पूर्वोक्त निर्णय के पैरा 81 और 82 में इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> "मिथ्या दावों और प्रतिरक्षाओं की अवज्ञा करते हुए, भू-संपत्ति के मूल्यों में तीव्र गति से वृद्धि के कारण भू-संपत्ति के मुकदमेबाजी में अति गंभीर समस्याओं पर विचार किया है । मूल्यवान भू-संपत्तियों के संबंध में वाद को इस उम्मीद से बेईमान वादियों द्वारा लाया गया है कि अन्य पक्षकार थक चुके होंगे और अंततः एक बड़ी धनराशि का

भुगतान करके उनके साथ समझौता हो जाएगा । इस कारण से न्यायालयों में मामलों के अधिनिर्णय में भारी विलंब होता है । उच्चतम न्यायालय ने **रामरामेश्वरी देवी** (2011) 8 एस. सी. सी. 249 वाले मामले में, यह उपयुक्त मत व्यक्त किया है कि जब तक कि दोषकर्ता को तुच्छ मुकदमे से लाभ लेने से इनकार नहीं किया जाता है तब तक इसे रोक पाना मुश्किल होगा । अनावश्यक अंकुश लगाने और तुच्छ मुकदमे के उद्देश्य से, न्यायालय यह सुनिश्चित करने के लिए है कि अनावश्यक मुकदमे के लिए कोई प्रोत्साहन या प्रेरणा नहीं दी जाए । इस समस्या का हल किया जा सकता है या कम से कम इसे कम किया जा सकता है यदि, अनुकरणीय खर्चे, तुच्छ मुकदमेबाजी को फाइल करने पर लगाई जाती है । समुचित मामले में वास्तविक, यथार्थवादी या उचित खर्चे का अधिरोपण और/या मुकदमे में आदेश से वादियों द्वारा मिथ्या अभिवाक् और गढ़े दस्तावेजों को प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति को नियंत्रित करने में एक लंबा रास्ता तय करना है । अत्यधिक खर्चे के अधिरोपण से भी पक्षकारों द्वारा अनावश्यक स्थगनों को नियंत्रण किया जा सकेगा । समुचित मामले में, न्यायालयों को आदेश करते समय अभियोजन पर विचार करना चाहिए अन्यथा यह न्यायिक कार्यवाहियों की शुद्धता और पवित्रता बनाए रखने के लिए संभव नहीं हो सकेगा ।'

24. और फिर अंत में, यथापूर्वोक्त बहन की अपील को मंजूर करते हुए और पैरा 97 से 101 में विधि के सिद्धांतों को अधिकथित करते हुए, माननीय उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है, जो इस प्रकार है :–

"97. विधि के सिद्धांत बिल्कुल स्पष्ट हैं जो इस मामले से उद्भूत होते हैं और ये इस प्रकार है –

1. किसी भी संपत्ति में हक अर्जित नहीं होता है, यदि उसे आनुग्राहिक तौर पर परिसर में की अनुमति दी गई थी । यहां तक कि वर्षों या दशकों से लंबा कब्जा रखने वाला व्यक्ति भी उक्त संपत्ति में कोई अधिकार या हित अर्जित नहीं करेगा ।

2. केयरटेकर, चौकीदार या सेवक, लंबे समय तक कब्जा रखने के बावजूद संपत्ति में कभी भी हित अर्जित नहीं कर सकता है । केयरटेकर या सेवक को मांग करने पर तुरन्त कब्जा सौंप देना होता है ।

3. न्यायालय, किसी ऐसे केयरटेकर, सेवक या किसी व्यक्ति के कब्जे का संरक्षण करने में न्यायानुमत नहीं होता है जिसे किसी मित्र, संबंधी, केयरटेकर या सेवक के रूप में कुछ समय के लिए परिसर में रहने के लिए अनुमति दी गई थी ।

4. न्यायालय का संरक्षण मात्र उसी व्यक्ति को मंजूर या बढ़ाया जा सकता है जिसके पक्ष में, किराया करार, पट्टा करार या लाइसेंस करार विधिमान्य है ।

5. केयरटेकर या अभिकर्ता स्वामी के एवज में ही स्वामी की संपत्ति धारित करता है । ऐसी संपत्ति में स्वयं लंबे समय तक रहने या कब्जा रखने से उसे किसी भी प्रकार का अधिकार या हित चाहे जो भी हों, अर्जित नहीं होता है ।

98. मामले में इस मत को ध्यान में रखते हुए, उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय के साथ ही के निर्णय विचारण न्यायालय भी अपास्त किए जाने योग्य और तद्नुसार, हम ऐसा करते हैं । परिणामस्वरूप, यह न्यायालय यह निदेश देता है कि वाद परिसर का कब्जा अपीलार्थी को सौंपा जाए जो स्वीकृततः वाद संपत्ति का स्वामी है ।

99. इस मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए, प्रत्यर्थी विधिक प्रतिनिधियों वाद परिसर को खाली करने के लिए तीन मास को दिया जाता है । उन्होंने यह भी निदेश दिया है कि तीन मास की अवधि समाप्त होने के बाद वाद संपत्ति को खाली करके और शांतिपूर्वक कब्जा अपीलार्थी को सौंपा जाए । इस आशय से दो सप्ताह के भीतर इस न्यायालय में प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों द्वारा फाइल किया जाए ।

100. प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधियों को तीन मास के लिए परिसर के उपयोग और अधिग्रहण के लिए प्रतिमास 1,00,000/- रुपए (एक लाख रुपए) संदाय करने का निदेश भी दिया है । उपयोग और अधिग्रहण के लिए उक्त राशि अपीलार्थियों को प्रत्येक मास की 10 तारीख से पहले दी जाए । यदि प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधि इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के रूप में उपयोग और अधिग्रहण के लिए धनराशि संदाय करने में असमर्थ है तो वे इस निर्णय की तारीख से दो सप्ताह के भीतर परिसर के कब्जे को सौंप दें । तत्पश्चात्, यदि

प्रत्यर्थी के विधिक प्रतिनिधि वाद संपत्ति का कब्जा शांतिपूर्वक नहीं सौंपते हैं तो उस स्थिति में, अपीलार्थी को पुलिस सहायता लेकर परिसर के कब्जा लेने की स्वतंत्रता होगी ।

101. परिणामस्वरूप, अपीलार्थी की अपील मंजूर की जाती है । मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में, प्रत्यर्थियों को चार सप्ताह के भीतर अपीलार्थी को 50,000/- रुपए की लागत संदाय करने का निदेश दिया जाता है । (हमने तथ्य को ध्यान में रखते हुए संतुलित लागत अधिरोपित की है कि मुख्य प्रत्यर्थी की मृत्यु हो गई है) । तद्नुसार आदेश दिया गया है ।"

25. इस प्रकार, प्रतिवादियों द्वारा फाइल वर्तमान अपील खर्चों के साथ खारिज किए जाने योग्य है ।

26. तद्नुसार, प्रतिवादी-ओम प्रकाश द्वारा फाइल द्वितीय अपील को खर्चों के साथ खारिज की जाती है, जो वादियों-प्रत्यर्थियों को प्रतिवादी-अपीलार्थी द्वारा संदत्त किए जाने के लिए 10,000/- रुपए निर्धारित की गई है । प्रतिवादी, वादियों द्वारा दावा किए गए मध्यवर्ती लाभ के बकाया का भी संदाय करेगा और पूर्णतया इस अवधि तक, जो अब से अक्तूबर, 2015 मास से 5,000/- रुपए प्रतिमास की दर से प्रश्नगत भूखंड सं. 27 जिसमें तथाकथित भूखंड सं. 27 मापन 60 × 45 फुट है का कब्जा उसे सौंपने तक आज की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर वादियों को विद्वान् विचारण न्यायालय ने निदेश दिया । तद्नुसार, तत्काल ही विचारण न्यायालय कब्जे और मध्यवर्ती लाभ की डिक्री प्रत्याहृत करेगा । यदि प्रतिवादी कब्जा सौंपने और मध्यवर्ती लाभ या लागत का संदाय करने में असफल रहता है तो जैसा निदेश दिया गया है, वादी/प्रत्यर्थी डिक्री के शीघ्र निष्पादन के अलावा इस न्यायालय की अवमानना अधिकारिता का अवलंब लेने के भी हकदार होंगे । इस निर्णय की प्रति संबंधित पक्षकारों और निचले विचारण न्यायालय को तुरन्त भेजी जाए ।

अपील खारिज की गई ।

मही./क.

आयुक्त, वाणिज्यिक कर विभाग, राजस्थान, जयपुर और अन्य

बनाम

बलवीर सिंह और अन्य

तारीख 16 दिसम्बर, 2015

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 100 – वादी द्वारा प्रश्नगत दुकान का क्रय किया जाना – वादी का अवयस्क होना – सम्पत्ति को पावर आफ अटार्नी के आधार पर विक्रय विलेख किया जाना – राजस्व कर का कपट किया जाना – यदि कोई व्यक्ति संपत्ति क्रय करता है तो वह सभी तरह के राजस्व करों का भुगतान करने के लिए दायी होगा, चाहे वह वयस्क हो या अवयस्क व्यक्ति हो ।

वर्तमान द्वितीय अपील वाणिज्यिक कर विभाग, राजस्थान (अर्थात् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी और प्रथम अपील में प्रत्यर्थी) द्वारा तारीख 9 मई, 1994 को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन उस आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में फाइल की गई है जो प्रथम अपील में पारित किया गया था उस आदेश द्वारा विद्वान् मुन्सिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी, भदरा (विचारण न्यायालय) के तारीख 2 दिसम्बर, 1991 के निर्णय और डिक्री को उलट दिया गया था और न्यायिक मजिस्ट्रेट के इस आदेश द्वारा वादी बलवीर सिंह पुत्र श्री मुंशीराम का सिविल वाद सं. 45/87 (बलवीर सिंह बनाम राजस्थान राज्य और अन्य) खारिज कर दिया गया था जो बलवीर सिंह ने वादगत दुकान के संबंध में व्यादेश के लिए फाइल किया था जिसमें यह अभिकथन किया था कि बलवीर सिंह ने यह दुकान मैसर्स सुभाष ट्रेडिंग कंपनी, भदरा के स्वत्वधारी सुभाष चन्द्र पुत्र श्री चिरंजी लाल त्यागी नाम के व्यक्ति से रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय की थी और इसी सुभाष चन्द्र ने वर्ष 1978 में वाणिज्यिक कर विभाग (अपीलार्थी) के निर्धारिती के रूप में 4,39,390.57 रुपए की सीमा तक कर का संदाय करने में व्यतिक्रम किया था । द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – विद्वान् विचारण न्यायालय ने सुस्पष्ट निष्कर्ष निकाला था कि प्रश्नगत विक्रय सद्भाविक नहीं था क्योंकि विक्रेता मुंशीराम क्रेता का

पिता था, उस समय पर अवयस्क पुत्र बलवीर सिंह केवल 15 वर्ष का था और विद्यार्थी ही था, निर्धारिती-सुभाष चन्द्र की पावर आफ अटार्नी के बल पर, जो वाणज्यिक कर विभाग के व्यतिक्रम में निर्धारिती था और उक्त पावर आफ अटार्नी विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत ही नहीं की गई थी । इसलिए, यह स्पष्ट रूप से अपनी स्वयं की पावर आफ अटार्नी के माध्यम से व्यतिक्रमी निर्धारिती द्वारा स्वयं प्रश्नगत दुकान हस्तांतरण करने से राजस्व कपट की युक्ति प्रकट होती है, मुंशीराम ने अपने स्वयं के अवयस्क पुत्र के पक्ष में जिसकी विधिमान्य संविदा में प्रवेश करने की हैसियत नहीं है । विचारण न्यायालय के ऐसे सुविवेचित और तर्कपूर्ण निर्णयों को विद्वान् अपीली न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि क्रेता बलवीर नहीं था और उसको प्रश्नगत वाद संपत्ति पर प्रथम प्रभार लगाते हुए वाणिज्यिक कर विभाग के ऐसे देयों की किसी जानकारी के बिना आरोपित नहीं किया जा सकता है । विद्वान् अपीली न्यायालय ने स्पष्ट रूप से की गई त्रुटि का मूल्यांकन नहीं किया है न ही स्थानांतरण की प्रकृति और सुसंगत तथ्यों का बल्कि 994 के अधिनियम की धारा 11-ए.ए.ए. और 11-ए.ए.ए.ए. के उपबंधों में निहित विधि के स्पष्ट आदेश का टिप्पण लेने के लिए भी चूक की है । यदि वाणिज्यिक कर विभाग के प्रथम भार के अधीन संपत्ति का विक्रय ऐसा विश्वास करना शून्य और कर राजस्वों की वसूली कपट करने के लिए अनुमति दी जाती है तो यह सरकार के ऐसे देय करों के शून्य संदाय करने के लिए व्यतिक्रमियों के लिए कर हेतु बहुत ही आसान हो जाएगा । प्रत्यक्षतः, व्यतिक्रमी निर्धारिती-फर्म के स्वत्वधारी की मुख्तारनामे द्वारा किसी अवयस्क पुत्र के पक्ष में वर्तमान मामले में तारीख 14 मई, 1980 का विक्रय विलेख को उसकी सत्यता के बारे में विद्वान् अपीली न्यायालय के मन में संदेय उद्भूत होना चाहिए । विक्रय अपने अवयस्क पुत्र के पक्ष में मुंशीराम ने पावर आफ अटार्नी द्वारा निष्पादित रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के लिए सिर्फ 6,000/- रुपए की तुच्छ राशि के लिए किया था । इन परिस्थितियों में किसी अन्य निष्कर्ष की अपेक्षा विद्वान् विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष निकाला कि स्थानांतरण द्वारा राजस्व को शून्य और उसका कपट कराना था, जिसके संबंध में विद्वान् अपीली न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला था । विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष और रीति जिसमें उसने विद्वान् विचारण न्यायालय के तर्कपूर्ण निष्कर्षों को अपास्त किया है, स्पष्ट रूप से तर्कविरुद्ध हैं और इन्हें विधि में कायम नहीं रखा जा सकता है । प्रतिवादी-

अपीलार्थी-वाणज्यिक कर विभाग वर्तमान द्वितीय अपील मंजूर किए जाने योग्य है और अपीलार्थी-वाणिज्यिक कर विभाग के पक्ष में और वादियों-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध उपर्युक्त विरचित विधि के सारवान् प्रश्न उत्तर देते हुए तथा अपने स्वत्वधारी श्री सुभाष चन्द्र के माध्यम से अन्य प्रोफार्मा प्रतिवादियों जिसमें व्यतिक्रमी निर्धारिती-मैसर्स सुभाष ट्रेडिंग कंपनी, भदरा सम्मिलित है, वर्तमान द्वितीय अपील मंजूर की जाती है । (पैरा 12, 13, 14 और 15)

निर्दिष्ट निर्णय

पैरा

[2009] (2009) 11 ए. सी. सी. 18 :
सीमा-शुल्क आयुक्त (निवारण) बनाम
आफलोट टैक्सटाइल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड । 6

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 1994 की एस. बी. सिविल द्वितीय अपील सं. 646.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन अपील ।

प्रतिवादी-अपीलार्थी-राजस्व की ओर से सर्वश्री वी. के. माथुर के साथ दिनेश गोदारा

वादी/प्रत्यर्थियों की ओर से कोई नहीं

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – वर्तमान द्वितीय अपील वाणिज्यिक कर विभाग, राजस्थान (अर्थात् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रतिवादी और प्रथम अपील में प्रत्यर्थी) द्वारा तारीख 9 मई, 1994 को सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन उस आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय में फाइल की गई है जो प्रथम अपील में पारित किया गया था उस आदेश द्वारा विद्वान् मुन्सिफ और न्यायिक मजिस्ट्रेट-प्रथम श्रेणी, भदरा (विचारण न्यायालय) के तारीख 2 दिसम्बर, 1991 के निर्णय और डिक्री को उलट दिया गया था और न्यायिक मजिस्ट्रेट के इस आदेश द्वारा वादी बलवीर सिंह पुत्र श्री मुंशीराम का सिविल वाद सं. 45/87 (बलवीर सिंह बनाम राजस्थान राज्य और अन्य) खारिज कर दिया गया था जो बलवीर सिंह ने वादगत दुकान के संबंध में व्यादेश के लिए फाइल किया था जिसमें यह अभिकथन किया था कि बलवीर सिंह ने यह दुकान मैसर्स सुभाष ट्रेडिंग

कंपनी, भदरा के स्वत्वधारी सुभाष चन्द्र पुत्र श्री चिरंजी लाल त्यागी नाम के व्यक्ति से रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा क्रय की थी और इसी सुभाष चन्द्र ने वर्ष 1978 में वाणिज्यिक कर विभाग (अपीलार्थी) के निर्धारिती के रूप में 4,39,390.57 रुपए की सीमा तक कर का संदाय करने में व्यतिक्रम किया था ।

2. वादी-बलवीर सिंह उस समय 15 वर्ष का अवयस्क था जब अपने उसके पिता मुंशीराम से वादगत दुकान अभिकथित रूप से क्रय की थी जिसने व्यतिक्रमी निर्धारिती-सुभाष चन्द्र की मुख्तारनामा होने के आधार पर तारीख 24 मई, 1980 के रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा केवल 6,000/- रुपए में ही प्रश्नगत दुकान को उस समय विक्रय किया था जब व्यतिक्रमी निर्धारिती-सुभाष चन्द्र को 4,39,390.57 रुपए की राशि का संदाय करना था जैसा पहले उल्लेख किया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वाणिज्यिक कर विभाग के विरुद्ध बलवीर सिंह द्वारा फाइल किए गए व्यादेश हेतु वाद को खारिज करते हुए दोनों विवाद्यकों को वादियों के विरुद्ध और प्रतिवादी-वाणिज्यिक कर विभाग के पक्ष में विनिश्चित किया और विचारण न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया था कि तारीख 24 मई, 1980 को रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख द्वारा प्रश्नगत दुकान के उक्त स्थानांतरण राजस्व का उद्देश्य कपट द्वारा प्राप्त करना था क्योंकि वह स्थानांतरण राजस्थान विक्रय कर अधिनियम, 1994 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "1994 का अधिनियम" कहा गया है) की धाराओं 11-ए.ए.ए. और 11-ए.ए.ए.ए. के विरुद्ध है इसलिए वह शून्य होगा ।

3. विद्वान् विचारण न्यायालय के तारीख 2 दिसम्बर, 1991 के आक्षेपित आदेश में विवाद्यक सं. 1 और 2 के साथ सुसंगत निष्कर्ष वर्तमान संदर्भ के लिए नीचे उद्धृत हैं :–

> "विवाद्यक संख्या एक को सिद्ध करने का भार वादी पर की दावा की दावा सं. 1 में दर्शाई गई सीमाओं के अनुसार स्थित दुकान का वादी सद्भावी खरीदार है । एक संबंध में वादी बलवीर सिंह ने बताया कि उसने 25.5.1980 को मुंशीराम मुख्तार की **मार्फत** सुभाष त्यागी से विवादित दुकान खरीदी थी । जो 6 हजार रुपए में खरीदी । दुकान का कब्जा ले लिया । दुकान खरीदने के संबंध में सुभाष ट्रेडिंग कंपनी की तरफ विक्रय विभाग की कोई बकाया थी, उसको जानकारी नहीं थी । मुंशीराम या सुभाष ट्रेडिंग कंपनी की

तरफ इस बकाया के लंबित होने की सूचना उसे नहीं थी । यह भी बताया कि तीन साढ़े तीन साल पहले वो भादरा आया तो उसे नीलामी का पता चला । तथा दुकान कुर्क करने से पूर्व विभाग द्वारा कोई नोटिस या सूचना नहीं दी । विक्रय कर वालों को दुकान का बैयनामा दिखाया था । जिरह में बताया बैयनामा के समय वो पढ़ाई करता था । बैयनामा के मुख्तार उसके पिता मुंशीराम थे । उसे ध्यान नहीं कि उसके पिता की सुभाष या सुरेश चन्द्र के साथ व्यापार में कोई भागीदारी थी या नहीं । रुपया उसने पिताजी को 24 मई, 1980 को दिया । तहसील में सब रजिस्ट्रार के रू-ब-रू दिए स्टाम्प भी खुद के द्वारा खरीदना बताया । यह भी बताया कि उसने पिताजी का मुख्तारनामा होना ना ही पढ़ा और ना ही उसने नकल प्राप्त की । तथा मुख्तार कब से था उसे ध्यान नहीं । दुकान पर खुद का या पिताजी का नाम लिखा होना नहीं बताया । फिर कहा कि दुकान पर राजपुरा बात लिखी हुई है । जो खुद लिखवाया था तुरंत ही फिर कहा कि उसने खुद ने लिखा था । यह बताया कि दुकान बैयनामी तौर पर सुभाष के उसके नाम से करने की बात गलत है । तथा सैल टैक्स विभाग में कुर्की के खिलाफ उन्होंने कोई कार्यवाही नहीं की । पी.ड. 2 उदाराम ने बताया कि बलवीर सिंह ने 10 साल पहले 6 हजार रुपए में एक दुकान खरीदी तथा बैयनामा अपने सामने लिखा होना बताया । पहचानकर्ता तथा तहसीलदार ने कोई मुख्तारनामा पढ़कर नहीं सुनाया । लेन-देन रजिस्ट्री करने वाले के सामने होना बताया ।

प्रतिवादी की ओर से इस बिन्दु पर कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं हुई लेकिन साक्ष्य में यह बात अवश्य आई कि 1978-79 व 79-80 सुभाष ट्रेडिंग कंपनी में वाणिज्य का बकाया चला आ रहा था । इस बिन्दु पर वादी को भी एतराज नहीं कि कोई बकाया न हो वो भी सुभाष ट्रेडिंग कंपनी में राज्य सरकार की ओर सुभाष ट्रेडिंग कंपनी में वसूली करवाई हो मानते हैं । लेकिन उनका यह तर्क है कि उन्हें जानकारी नहीं थी तथा वो सद्भावी खरीददार है । मेरे विचार से जहां किसी व्यक्ति की मनः स्थिति के बारे में पता करना हो तो उस बारे में सीधी साक्ष्य आनी असम्भव है । दूसरे की मन की बात केवल परिस्थितियों द्वारा पता लगाया जा सकता है । इस प्रकरण में मुख्तार आम मुंशीराम द्वारा बैयनामा अपने पुत्र बलवीर सिंह को किया जाना बताया है तथा जो बैयनामा न्यायालय में प्रस्तुत हुआ है लेकिन

मुख्तारनामा न्यायालय में प्रस्तुत नहीं हुआ । यह बात बैयनामा में स्पष्ट लिखी है कि मुख्तारनामा सिरसा में 21 मई, 1980 को लिखा गया था तथा 24 मई, 1980 को मुख्तार खास स्टाम्प में खरीददार बैयनामा अपने पुत्र के नाम 6 हजार रुपए में विवादित दुकान का करवा लिया । स्वयं बलवीर का अपने पिता से उसी दुकान का खरीदना यही साबित करता है कि लेन-देन बिना पैसों के हुआ क्योंकि वादी बलवीर सिंह गवाह उदाराम ने रुपए सब-रजिस्ट्रार के सामने देना कहा है जबकि बैयनामा में लिखा गया है कि यह राशि पेशगी दी जा चुकी है । स्पष्ट है कि दोनों गवाह इस बिन्दु पर झूठ बोल रहे हैं । मौके के वक्त वादी की आयु 15 वर्ष थी तथा वह स्कूल में पढ़ता था । वह दुकान खरीदने की हैसियत में नहीं था तथा उसने दुकान क्यों खरीदी ? यह बात वह नहीं बता पाया । वादी का कब्जा भी दुकान पर होना नहीं पाया जाता । क्योंकि जब मुख्तारनामा सिरसा में लिखा गया तथा उसका उस समय कब्जा भी नहीं दिया जा सकता था । उसके तीन दिन बाद मुख्तारनामा मुख्तार-आम द्वारा उक्त दुकान का कब्जा वादी को देना बताया है जो बिल्कुल असम्भव है जब मुख्तार-आम को कब्जा नहीं मिला तो वह वादी को कैसे दे सकता था । वादी नौकरी करता है दुकान उसके किस काम की थी । वादी ने खुद बताया कि तीन-साढ़े तीन साल पहले वो भादरा आया तो कुर्की का पता चला । इसका अर्थ यही हुआ कि दुकान का कोई उसे ध्यान या अधिपत्य नहीं था । खरीदने का या बैयनामा रजिस्ट्री होने का यह अर्थ नहीं कि कब्जा वादी के पास चला गया हो ।

वादी का यह कहना कि उसे कर बकाया होने की जानकारी नहीं थी तथा वह सद्भावी क्रेता है । सुभाष चन्द्र की फर्म में 78-79 व 79-80 का सैल टैक्स बकाया चल रहा था इसकी जानकारी सुभाष चन्द्र को हर हालत में थी । क्योंकि वह असैसी (निर्धारिती) था । उसने कर निर्धारण की कार्यवाही के दौरान अपनी सम्पत्ति किसी एक मुख्तारनामे द्वारा बेचने का अधिकार किसी व्यक्ति को न देकर अलग-अलग व्यक्तियों को दिया । जिससे उसकी दुर्भावना स्पष्ट नजर आती है । बैयनामा अर्जी, रूप निष्पादी होना भी स्पष्ट होता है । कोई प्रतिफल सुभाष चन्द्र को नहीं मिला । 21 मई, 1980 को मुख्तारनामा लिखा गया 24 मई, 1980 को बैयनामा निष्पादित हुआ । खास बात यह भी देखने की है कि मुख्तारनामा की प्रति न्यायालय में प्रस्तुत नहीं हुई । वादी ने खुद मख्तारनामा नहीं देखा । तो उसे क्या

पता मुख्तारनामा-खास को क्या अधिकार मिला क्या नहीं । सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के तहत खरीददार को हक होना आवश्यक है । अगर सम्पत्ति दोषपूर्ण टाइटल की हो तो क्रेता को दोषपूर्ण टाइटल ही मिलेगा । बैयनामे में वादी के हितों के लिए स्पष्ट लिखा है कि कोई झगड़ा या कानूनी नुक्स होगी तो जिम्मेदार उसका मुवक्किल होगा । सैल टैक्स अधिनियम, 1954 की धारा 11-ए.ए.ए. के तहत यह बैयनामा शून्य प्राप्त है । क्योंकि मूल्यवान प्रतिफल इसमें नहीं है । नोटिस भी वादी को था । वादी को नोटिस होना मैं इस आधार पर पाता हूं कि वादी अपने पिता से संपत्ति बिना प्रतिफल के ली तथा खरीदार को जो आवश्यक सावधानी बरतनी चाहिए थी वो नहीं बरती जो सम्पत्ति अन्तरण अधिनियम के तहत यह नोटिस होना माना जायेगा । पिता को संपत्ति के सैल टैक्स के बकाया का ध्यान आवश्यक था क्योंकि मुख्तार खास को नियुक्त करने वालों को जिस बात का ज्ञान था वो ज्ञान मुख्तार आम को होगा । ऐसी मेरी धारणा है वादी का यह कहना पर्याप्त नहीं है कि वो सद्भावी क्रेता है उसे भली- भांति साबित भी करना था लेकिन वादी इस बिन्दु को सिद्ध करने में असफल रहा है । अतः यह विवाद्यक वादी के खिलाफ तय किया जाता है ।

विवाद्यक सं. 2 इसे सिद्ध करने का भार प्रतिवादी पर था कि सुभाष चंद्र ने प्रश्नगत दुकान का डिक्रीदार की वसूली से बचने के लिए वादी को विक्रय की तथा 24 मई, 1980 के तहत विवादित दुकान के संबंध में वादी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं तथा वादी बलवीर सिंह ने अपने बयान में बताया कि दुकान मोल लेने के बाद सुभाष चंद्र ने प्रश्नगत दुकान का डिक्रीदार की वसूली से बचने के लिए वादी को विक्रय की तथा 24 मई, 1980 के तहत विवादित दुकान के संबंध में वादी को कोई अधिकार प्राप्त नहीं । तथा वादी बलवीर सिंह ने अपने बयान में बताया कि दुकान मोल लेने के बाद सुभाष को कोई हक दुकान पर नहीं रहा । जिरह में इस गवाह ने बताया कि उसने मुख्तारनामा नहीं देखा तथा न ही प्रति प्राप्त की । इस बात से इनकार किया कि स्टाम्प इसके पिता ने खरीदे हों जबकि स्टाम्प उसने खरीदे । मुख्तार आम को अपना पिता होना स्वीकार किया । प्रतिवादी जुगल किशोर ने स्पष्ट कहा कि 1978-79 व 79-80 में एजेंसी में वाणिज्य कर बकाया चला आ रहा है । विवाद्यक सं. 1 को निर्धारित करते समय मैंने इस बिन्दु को निर्धारित कर दिया

कि बैयनामा 24 मई 1980 को शून्य था । क्योंकि सुभाष चन्द्र ने बिक्रीकर की वसूली से बचने के लिए वादी को सम्पत्ति विवादित दुकान बेची थी । क्योंकि मुख्तारनाम तारीख 21 मई, 1980 को सुभाष त्यागी ने जारी किया था तथा कर निर्धारण की कार्यवाही 1978 से लंबित चल रही थी जिसकी जानकारी सुभाष चन्द्र को हर हालत में थी । तारीख 21 मई, 1980 के मुख्तारनामा की रूह से मुंशीराम ने विवादित दुकान अपने पुत्र को बेच कर दी । विवाद्यक सं. 1 के निर्धारण में मैंने यह पाया कि कोई प्रतिफल वादी ने अदा नहीं किया एवं बिना किसी कारण से अपने पिता से उक्त संपत्ति का बैयनामा अपने हक में निष्पादित करवाया । जब वह विद्यार्थी था और आयु 15 वर्ष की थी तो बिना किसी कारण के उसने दुकान क्यों खरीदी ? सुभाष चंद्र को हर हाल में यह पता चला था टैक्स की राशि काफी अधिक है तथा राज्य सरकार हर हालत में टैक्स वसूल करेगी तथा उसने होशियारीपूर्वक अलग-अलग बैयनामें द्वारा अपनी दुकान बेचने का अधिकार दूसरों को दे दिया जिसमें मुंशीराम भी एक था । मुंशीराम ने अपने पुत्र को संपत्ति बेचना बताया जिसका प्रतिफल साबित नहीं है । लेकिन हड़बड़ी तथा बिना किसी जांच के वादी ने उक्त सम्पत्ति खरीदी यह साबित है । ऐसी हड़बड़ी तथा बिना जानकारी के संपत्ति खरीदने तक यही उपधारणा की जाएगी कि उसे कोई दोषपूर्ण टाइटल की जानकारी थी । उक्त संपत्ति राज्य सरकार की कर वसूली से भार पूर्ण थी । बैयनामा के पेटे दोनों पक्षकार में कोई लेन-देन नहीं हुआ । न ही कब्जा की अदला बदली हुई । इसलिए वादी को सद्भावी क्रेता नहीं माना गया । 24 मई, 1980 के बैयनामें के तहत कोई अधिकार वादी को प्राप्त नहीं थे क्योंकि यह सम्पत्ति भार पूर्ण थी तथा वादी को ज्ञान होते हुए तथा बिना प्रतिफल के यह सम्पत्ति ली । अतः उसे कोई अधिकार प्राप्त नहीं होते । उपरोक्त बिन्दु ऐसे हैं जिनकी जानकारी की जड़ तक पहुंचने के लिए तथ्यों तथा वादी की मनःस्थिति की कार्यशैली पर विचार किया जाना था जिससे यह बात स्पष्ट हुई कि सुभाष ने कोई बंटवारा नामा नहीं किया व नहीं कोई प्रतिफल खरीददार से प्राप्त किया । केवल बैयनामा से वादी को कोई अधिकार नहीं मिलता । उसका तो कब्जा होना भी नहीं पाया जाता । जिसका विवेचन विवाद्यक संख्या 1 में किया जा चुका है यह विवाद्यक प्रतिवादी के हक में निर्धारित किया जाता है ।"

4. तथापि, वादियों की सिविल अपील सं. 3/92-बलवीर सिंह बनाम राजस्थान राज्य और अन्य को विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को उलटते हुए तारीख 3 फरवरी, 1994 को अपर जिला न्यायाधीश विद्वान् अपीली न्यायालय, नोहर द्वारा मंजूर किया गया, जो इस प्रकार है :–

"विवाद्यक सं. 1

इस बाबत वादी श्री बलबीर सिंह पी. डब्ल्यू. 1 ने कहा है कि उसने विवादित दुकान सुरेश व सुभाष के मुख्तार मुंशीराम से हजार रुपए में खरीदी थी जिसका बेचान पत्र प्रदर्श-1 है । दुकान खरीदने से पहले प्रतिवादी सं. 5 विक्रय कर की राशि बकाया होने की उसे जानकारी नहीं थी वह प्रतिवादी सं. 5 को जानता ही नहीं । उसे सेल टैक्स विभाग ने भी राशि बकाया होने की कोई सूचना नहीं दी । अब प्रतिवादी सं. 5 का इस दुकान में कोई हक नहीं रहा है । प्रतिपरीक्षा में उसने बताया कि उसने रुपए रजिस्ट्री के वक्त तहसीलदार व दो आदमियों के रू-ब-रू मुंशीराम को दिए थे । मुंशीराम वाला मुख्तारनामा उसने देखा था । मुख्तारनामे की नकल उसने नहीं ली । मुंशीराम उसका पिता है उसने यह बैयनामा मिलकर झूठा लिखाने के तथ्य से इनकार किया है । उसके गवाह फतेह सिंह ने बैयनामा अपने सामने निष्पादित होना कहा है । परन्तु कहा है कि रुपए उसके सामने दिए गए थे तहसीलदार के सामने नहीं दिए थे बल्कि लिखा-पढ़ी के समय दिए थे । इसके विपरीत प्रतिवादी के गवाह श्री जुगल किशोर ने कहा है कि जो दुकान कुर्क की है वे अविभाजित सम्पत्ति थीं कुर्की दिनांक 30 जनवरी, 1984 को की थी दुकानों को बेचने की जानकारी नहीं थी ।

इस तरह वादी दुकान अपनी खरीद शुदा व अपने स्वामित्व की होने के बाबत विक्रय पत्र पेश हुआ है और विक्रय पत्र का एक गवाह श्री फतेह सिंह पी. डब्ल्यू. 2 भी पेश हुआ है उनके बयान में रुपए देने के स्थान के बारे में अवश्य विरोधाभास है । परन्तु यह बेचान पत्र एक पिता ने अपने पुत्र के नाम करवाया है इसका कारण भी हो सकता है कि कई बार बेचान पत्र निष्पादित करवाया है । इसलिए रुपए के लेन-देन के बारे में विरोधाभास आ सकता है प्रत्यर्थी की ऐसी कोई साक्ष्य नहीं है कि यह बेचान पत्र दिखावटी या बेनामी करवाया गया हो । ऐसी परिस्थिति भी नहीं है कि यह मान्यता ली जा सके कि यह बैयनामा दिखावटी व बेनामी हो । अतः इस दावे के लिए

तो इतना साबित है कि विवादित दुकान का वादी सद्भाविक खरीदार है उसे प्रतिवादी सं. 5 ने कर की राशि बकाया होने की जानकारी होने की बाबत कोई साक्ष्य नहीं है । अतः उसके द्वारा यह खरीद सद्भाविक ही कही जाएगी । योग्य न्यायालय ने इस विवाद्यक के निर्णय में कई कल्पनाओं का सहारा लिया है और अनावश्यक संदेह किया है । जब तक यह साबित नहीं हो कि यह बेचान कर की राशि को वसूल न होने देने के लिए बिना प्रतिफल दिए बिना सद्भावना के खरीदा गया हो तभी राजस्थान सेल टैक्स अधिनियम की धारा 11-ए.ए.ए. में बेचान शून्य होता है । यहां विभाग की कोई ऐसी साक्ष्य नहीं है जिससे यह स्पष्ट हो कि वादी को बकाया कर की जानकारी थी और यह बेचान बिना सद्भावना के प्रतिफल के करवाया गया हो । अतः योग्य न्यायालय का इस विवाद्यक में निर्णय/कानून व तथ्यों के अनुसार नहीं है । अतः इस विवाद्यक योग्य न्यायालय के निर्णय को अपास्त करते हुए यह निर्णय दिया जाता है कि वादी दुकान का सद्भाविक खरीददार है ।

विवाद्यक सं. 2

इस बारे में विवाद्यक सं. 1 में विचार किया जा चुका है यह विवाद्यक उसी के खंडन का है । विवाद्यक सं. 1 में माना गया है कि वादी सद्भाविक खरीददार है और ऐसी कोई साक्ष्य नहीं है कि यह विक्रय कर की वसूली से बचने के लिए जानबूझकर के करवाया गया हो । अतः यह विवाद्यक प्रतिवादी के विरुद्ध अभिनिर्णीत किया जाता है । योग्य न्यायालय ने इस विवाद्यक के निर्णय में भी कल्पना का सहारा लिया है ।

....

हस्ता./-
(कैलाश चन्द्र जैन)
अपर जिला एवं सेशन न्यायाधीश,
नोहर (श्रीगंगानगर)"

5. व्यथित होकर, राजस्थान राज्य के वाणिज्यिक कर विभाग ने इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान द्वितीय अपील फाइल की थी और इस अपील को स्वीकार करते हुए, इस न्यायालय की समन्वय खण्डपीठ ने इस न्यायालय द्वारा विचार करने के लिए तारीख 2 अगस्त, 1996 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्न विरचित किए थे :–

"1. क्या विद्वान् अपील न्यायालय ने विवाद्यक सं. 1 और 2 के संबंध में साक्ष्य को गलत पढ़ने और विचारण न्यायालय के निष्कर्ष को उलटने में गलती की है ?

2. अनुतोष ।"

6. प्रतिवादी-अपीलार्थी-वाणिज्यिक कर विभाग के विद्वान् काउंसेल श्री वी. के. माथुर के साथ श्री दिनेश गोदरा ने यह तर्क दिया है कि पिता मुंशीराम ने अपने स्वयं के अवयस्क पुत्र बलवीर को स्थानांतरण किया था जो तारीख 24 मई, 1980 को उस समय केवल 15 वर्ष की आयु का था और जो निरर्थक था क्योंकि उसे अपने देय विक्रय कर के राजस्व के वाणिज्यिक कर विभाग के लिए सुभाष चन्द्र के व्यतिक्रम की अनभिज्ञता और "क्रेता सावधान रहे" के सिद्धांत पर सद्भाविक क्रेता नहीं कहा जा सकता है और ऐसा विक्रय शून्य के रूप में व्यवहार किए जाने को बाध्य था और विद्वान् विचारण न्यायालय ने क्रेता-बलवीर सिंह के वाद को ठीक ही खारिज किया है, जबकि अपीली न्यायालय ने आक्षेपित अपीलीय आदेश में निर्दिष्ट उचित कारणों के बिना विद्वान् विचारण न्यायालय के निष्कर्षों को सही कारणों से उलट दिया है । उसने माननीय उच्चतम न्यायालय के **सीमा-शुल्क आयुक्त (निवारण)** बनाम **आफलोट टैक्सटाइल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड**[1] वाले मामले के विनश्चय का भी अवलंब लिया है ।

7. समन तामील कराए जाने के बावजूद वादी-प्रत्यर्थियों अन्य प्रोफार्मा प्रतिवादियों जिसमें व्यतिक्रमी निर्धारिती भी है, की ओर से कोई भी उपस्थित नहीं हुआ यद्यपि श्री एन. के. गोयल और श्री पी. डी. वैश्नव के नाम वादी सूची में दर्शित है और वाद इस सूची के शिखर की मद संख्या पर सूचीबद्ध था ।

8. राजस्व विभाग की ओर से विद्वान् काउंसेल को सुनने के पश्चात् इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि प्रतिवादी-वाणिज्यिक कर विभाग की वर्तमान द्वितीय अपील मंजूर किए जाने योग्य है और उपर्युक्त विरचित विधि के सारवान् प्रश्नों का उत्तर अपीलार्थी-राजस्व के पक्ष में और वादियों-प्रत्यर्थियों और अन्य प्रोफार्मा प्रतिवादियों के विरुद्ध दिया जाना चाहिए ।

9. धारा 11-ए.ए.ए. और 11-ए.ए.ए.ए. जो अधिनियम के अधीन

---

[1] (2009) 11 ए. सी. सी. 18.

दायित्व बनाती है क्योंकि निर्धारिती द्वारा अवधारित संपत्तियों पर प्रथा अधिभार और शून्य के रूप में राजस्व से बचने के लिए अंतरण वर्तमान संदर्भ के लिए इस प्रकार नीचे उद्धृत है :–

> "**11-ए.ए.ए. राजस्व शून्य को कपट वंचित करने के लिए अंतरण** – जहां इस अधिनियम के अधीन किन्हीं कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान, कोई व्यौहारी, राजस्व को कपट वंचित करने के आशय से अपनी स्थावर संपत्ति पर किसी भार का सृजन करता है या किसी अन्य व्यक्ति के पक्ष में विक्रय बंधक, विनियम या अंतरण की किसी अन्य पद्धति, चाहे जो भी हो, के द्वारा अपने कब्जे से विलग होता है, वहां ऐसा भार या अंतरण, व्यौहारी द्वारा इस अधिनियम के अधीन, उक्त कार्यवाहियों के पूरा होने के परिणामस्वरूप संदेय किसी कर या अन्य राशि की बाबत किसी दावे के विरुद्ध शून्य होगा :
>
> परन्तु ऐसा भार या अंतरण उस समय शून्य नहीं होगा यदि उसे किसी मूल्यवान प्रतिफल के लिए किया गया है और इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के लंबित होने की सूचना के बिना किया गया है ।
>
> **11-ए.ए.ए.ए. इस अधिनियम के अधीन दायित्व का प्रथम भार होना** – तत्समय प्रवृत्त किसी विधि में अंतर्विष्ट किसी प्रतिकूल बात के होते हुए भी, यदि किसी व्यौहारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा इस अधिनियम के अधीन कर, शास्ति, ब्याज की कोई रकम या कोई अन्य राशि, यदि कोई हो संदेय है तो वह व्यौहारी या ऐसे व्यक्ति की संपत्ति पर प्रथम भार होगा ।"

10. माननीय उच्चतम न्यायालय ने **सीमा शुल्क आयुक्त (निवारण)** बनाम **अफलोट टैक्सटाइल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में यह भी अधिकथित किया है कि "क्रेता सावधान रहे" का सिद्धांत कहता है कि इसमें सभी ऐसी आवश्यक पूछताछ करने के लिए क्रेता के परम कर्तव्य और क्रय करने से पूर्व क्रय की जाने वाली संपत्ति से संबंधित सभी तथ्यों का पता लगाना होता है । माल के विक्रय उपरांत उनकी प्रकृति या गुणवत्ता के संबंध में सामान्य नियम "क्रेता सावधान रहे" है ताकि कपट के अभाव में क्रेता कुछ शर्त या वारंटी, अभिव्यक्त या निहित के अंतर्गत नहीं आने वाले माल में किसी भी त्रुटि के विक्रेता के विरुद्ध उपचार नहीं है ।

11. **उत्पाद शुल्क आयुक्त (निवारण)** बनाम **अफलोट टैक्सटाइल इंडिया प्राइवेट लिमिटेड** (उपर्युक्त) वाले मामले में उक्त निर्णय के पैरा 13 से 16 को वर्तमान संदर्भ के लिए इस प्रकार उद्धृत है :–

> "यह क्रेता को सिद्ध करना था कि उसने सत्यता या प्रश्नगत एस. आई. एल. की अन्यथा के बारे में कोई जानकारी नहीं थी । 'क्रेता सावधान रहे' का सिद्धांत इस प्रकृति के मामले को स्पष्ट रूप से लागू होता है । 'क्रेता सावधान रहे' अर्थ 'क्रेता को जानकारी होना है' । यह क्रेता पर लागू करने के लिए सुव्यवस्थित सिद्धांतों में से एक है जिसे वास्तविकता से बंधे होने और क्रय की गई वस्तु में किसी कमी की रचनात्मक जानकारी होती जो स्पष्ट है या जिसको समुचित परिश्रम की जानकारी होनी चाहिए । 'क्रेता सावधान रहे' विधि में या लेटिन में दोनों में से कोई अर्थ नहीं होता है कि क्रेता को जोखिम लेना चाहिए । इसका अर्थ यह होता है कि क्रेता को सावधानी रखनी चाहिए । 'क्रेता सावधान रहे' संविदा में सामान्य नियम है । कोई विक्रेता अपने माल में विद्यमान अंतर्निहित कमी बताने के लिए बाध्य नहीं जब तक कि वह कृत्य या निहितार्थ न हो वह ऐसी कमियों का वर्णन नहीं करता है । 'क्रेता सावधान रहे' क्वी इग्नोरेअर नॉन डीबिट कोड जस एलीनम एमिट के सिद्धांत का अर्थ है क्रेता को जानकारी होना । जिसको अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए कि वह किसी अन्य के अधिकारों को खरीद रहा है ।
>
> (पैरा 13 से 16)

सिद्धांत या सूक्ति को लागू करते हुए, यह अभिनिर्धारित किया है कि क्रय की जाने वाली संपत्ति के संबंधित आवश्यक पूछताछ करना और सभी तथ्यों को सुनिश्चित करना क्रेता का भारी कर्तव्य होता है । माल के विक्रय के उपरांत उनकी प्रकृति या गुणता के संबंध में साधारण नियम 'क्रेता सावधान रहे' है ताकि कपट के अभाव में, क्रेता के पास कुछ स्पष्ट या विवक्षित शर्त या वारंटी, के अन्तर्गत न आने वाले माल में किसी कमी के लिए विक्रेता के विरुद्ध कोई उपचार नहीं है । यह सब संदेह से परे है कि इसमें विधि के सामान्य नियम माल की बिक्री की मात्र संविदा से उद्‌भूत गुणता की कोई वारंटी नहीं है और कि जहां कपट नहीं किया गया है, कोई क्रेता जिसने माल में कमी के सभी जोखिम लेकर स्पष्ट वारंटी प्राप्त नहीं की है जब तक इसमें विक्रय के मात्र तथ्य से परे परिस्थितियां न हों

जिसमें वारंटी निहित की जाए । कोई भी क्रय से अनभिज्ञ नहीं होना चाहिए जिसमें किसी दूसरे का अधिकार हो । सूक्ति के अनुसार क्रेता को सावधान होना चाहिए, क्योंकि जोखिम अपना होता है उसके विक्रेता का नहीं ।

(पैरा 15 और 17)

12. वर्तमान मामले में, विद्वान् विचारण न्यायालय ने सुस्पष्ट निष्कर्ष निकाला था कि प्रश्नगत विक्रय सद्भाविक नहीं था क्योंकि विक्रेता मुंशीराम क्रेता का पिता था, उस समय पर अवयस्क पुत्र बलवीर सिंह केवल 15 वर्ष का था और विद्यार्थी ही था, निर्धारिती-सुभाष चन्द्र की पावर आफ अटार्नी के बल पर, जो वाणिज्यिक कर विभाग के व्यतिक्रम में निर्धारिती था और उक्त पावर आफ अटार्नी विद्वान् विचारण न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत ही नहीं की गई थी । इसलिए, यह स्पष्ट रूप से अपनी स्वयं की पावर आफ अटार्नी के माध्यम से व्यतिक्रमी निर्धारिती द्वारा स्वयं प्रश्नगत दुकान हस्तांतरण करने से राजस्व कपट की युक्ति प्रकट होती है, मुंशीराम ने अपने स्वयं के अवयस्क पुत्र के पक्ष में जिसकी विधिमान्य संविदा में प्रवेश करने की हैसियत नहीं है । विचारण न्यायालय के ऐसे सुविवेचित और तर्कपूर्ण निर्णयों को विद्वान् अपीली न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि क्रेता बलवीर नहीं था और उसको प्रश्नगत वाद संपत्ति पर प्रथम प्रभार लगाते हुए वाणिज्यिक कर विभाग के ऐसे देयों की किसी जानकारी के बिना आरोपित नहीं किया जा सकता है ।

13. विद्वान् अपीली न्यायालय ने स्पष्ट रूप से की गई त्रुटि का मूल्यांकन नहीं किया है न ही स्थानांतरण की प्रकृति और सुसंगत तथ्यों का बल्कि 1994 के अधिनियम की धारा 11-ए.ए.ए. और 11-ए.ए.ए.ए. के उपबंधों में निहित विधि के स्पष्ट आदेश का टिप्पण लेने के लिए भी चूक की है । यदि वाणिज्यिक कर विभाग के प्रथम भार के अधीन संपत्ति का विक्रय ऐसा विश्वास करना शून्य और कर राजस्वों की वसूली कपट करने के लिए अनुमति दी जाती है तो यह सरकार के ऐसे देय करों के शून्य संदाय करने के लिए व्यतिक्रमियों के लिए कर हेतु बहुत ही आसान हो जाएगा । प्रत्यक्षतः, व्यतिक्रमी निर्धारिती-फर्म के स्वत्वधारी की मुख्तारनामे द्वारा किसी अवयस्क पुत्र के पक्ष में वर्तमान मामले में तारीख 24 मई, 1980 का विक्रय विलेख को उसकी सत्यता के बारे में विद्वान् अपीली

न्यायालय के मन में संदेय उद्भूत होना चाहिए । विक्रय अपने अवयस्क पुत्र के पक्ष में मुंशीराम ने पावर आफ अटार्नी द्वारा निष्पादित रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख के लिए सिर्फ 6,000/- रुपए की तुच्छ राशि के लिए किया था । इन परिस्थितियों में किसी अन्य निष्कर्ष की अपेक्षा विद्वान् विचारण न्यायालय ने एक निष्कर्ष निकाला कि स्थानांतरण द्वारा राजस्व को शून्य और उसका कपट कराना था, जिसके संबंध में विद्वान् अपीली न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला था ।

14. विद्वान् अपीली न्यायालय द्वारा निकाला गया निष्कर्ष और रीति जिसमें उसने विद्वान् विचारण न्यायालय के तर्कपूर्ण निष्कर्षों को अपास्त किया है, स्पष्ट रूप से तर्कविरुद्ध है और इन्हें विधि में कायम नहीं रखा जा सकता है ।

15. प्रतिवादी-अपीलार्थी-वाणिज्यिक कर विभाग वर्तमान द्वितीय अपील मंजूर किए जाने योग्य है और अपीलार्थी-वाणिज्यिक कर विभाग के पक्ष में और वादियों-प्रत्यर्थियों के विरुद्ध उपर्युक्त विरचित विधि के सारवान् प्रश्न उत्तर देते हुए तथा अपने स्वत्वधारी श्री सुभाष चन्द्र के माध्यम से अन्य प्रोफार्मा प्रतिवादियों जिसमें व्यतिक्रमी निर्धारिती-मैसर्स सुभाष ट्रेडिंग कंपनी, भदरा सम्मिलित है, वर्तमान द्वितीय अपील मंजूर की जाती है । तारीख 24 मई, 1980 का रजिस्ट्रीकृत विक्रय विलेख विधि में शून्य और नास्ति तथ्य का अभिवाक् किए जाने के लिए अवधारित है और अपीलार्थी-वाणिज्यिक कर विभाग वादगत दुकान की कुर्की और नीलामी के माध्यम से अपने देयों की वसूली करने के लिए मुक्त है । खर्चों के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है । इस आदेश की प्रति संबंधित पक्षकारों और विद्वान् निचले न्यायालयों को तुरन्त भेजी जाए ।

द्वितीय अपील मंजूर की गई ।

मही./अस.

सरदारीलाल

बनाम

गजानंद

तारीख 13 जनवरी, 2016

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – धारा 96 – भू-स्वामी द्वारा बेदखली के लिए वाद – वाद खारिज किया जाना – किराएदार द्वारा वाद संपत्ति को खाली न किया जाना – भू-स्वामी को विवादित गृह की आवश्यकता होना – जहां पर भू-स्वामी को अपने कुटुंब के लिए किराए पर दिए गृह की आवश्यकता होती है तो वह किराएदार से उक्त गृह खाली करा सकता है क्योंकि भू-स्वामी अपनी आवश्यकतानुसार अपने गृह को खाली कराने का हकदार है ।

अपीलार्थी/वादी, सरदारीलाल पुत्र श्री बालराम ने प्रतिवादी/किराएदार अर्थात् गजानंद पुत्र श्री मनोहरलाल को वाद परिसर (आवासीय मकान) से बी.एफ.-25, जवाहर नगर, श्री गंगानगर में स्थित वाद परिसर (आवासीय गृह) से बेदखल करने और उस पर शोध्य किराए के रूप में 31,500/- रुपए की वसूली की ईप्सा करते हुए बेदखली वाद फाइल किया गया था जिसे विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, श्री गंगाधर द्वारा खारिज किए जाने से व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन वर्तमान प्रथम अपील फाइल की है । न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात्, इस न्यायालय का यह मत है कि वादी/अपीलार्थी/भू-स्वामी की वर्तमान प्रथम अपील मंजूर किए जाने योग्य है । ऐसा करने के लिए निम्न कारण दिए जा रहे हैं । यह सुव्यवस्थित है कि किराया नियंत्रण और बेदखली के मामलों में हक विनिश्चित किया जाना सुसंगत नहीं है और यह विधि की प्रतिपादना पर प्रतिवादी/किराएदार के विद्वान् काउंसेल द्वारा विवाद नहीं किया गया है और यह ठीक ही तो है । यह सत्य है कि वादी ने इस तात्पर्य से उक्त संपत्ति का स्वामी होने का दावा नहीं किया है कि उसने

अपने पक्ष में रजिस्ट्रीकृत विक्रय करार कराया है । किन्तु उसने प्रतिवादी गजानंद और उसकी पत्नी श्रीमती संतोष देवी द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2001 को वादी के पक्ष में 5,000/- रुपए से संबंधित विक्रय करार (प्रदर्श 1) निष्पादित किए जाने का निश्चित रूप से अवलंब लिया है और करार में, क्रेता को दी गई वाद संपत्ति कब्जे का तथ्य भी उल्लिखित है । तत्पश्चात् वादी, सरदारीलाल चार मास तक किराया रसीदें (प्रदर्श 2 से 5) प्रतिवादी, गजानंद को दी गई थीं जिनमें स्वयं प्रतिवादी द्वारा किराया दिया जाना दर्शाया गया था । इन दस्तावेजों को, जिन पर दोनों पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, अभिकथित कारबार संबंधी विवाद के कारण प्रतिवादी द्वारा अनदेखा किया गया है जिसके ब्यौरे और साक्ष्य को विचारण न्यायालय के अभिलेख पर पेश नहीं किया गया है और वह मात्र एक बहानेबाजी है । वादी/अपीलार्थी, सरदारीलाल के पक्ष में एक स्टांप पेपर पर, जिस पर दो साक्षियों ने हस्ताक्षर किए हुए हैं, विक्रय करार निष्पादित तथा प्रदर्श 2 से 5 द्वारा चार मास के किराए को संदत्त करने के पश्चात् प्रतिवादी/किराएदार द्वारा ऐसे संबंध से नकारना उसके द्वारा किए गए मिथ्या अभिवाक् के सिवाय कुछ नहीं है । इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अभिलेख पर प्रस्तुत पूर्वोक्त साक्ष्य के आधार पर भू-स्वामी-किराएदार का वह संबंध वादी द्वारा विधिवत् रूप से सिद्ध और साबित कर दिया गया है । विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस संबंध में समनुदेशित कारण चलने योग्य नहीं हैं कि वादी/अपीलार्थी को वाद संपत्ति की सद्भावी और निजी आवश्यकता है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी/भू-स्वामी के कुटुंब सदस्यों के रहन-सहन के स्तर के बारे में स्वयं अपना मत स्पष्ट रूप से प्रतिस्थापित किया है जिसे करने के लिए वह हकदार नहीं था । सुव्यवस्थित विधिक स्थिति यह है कि भू-स्वामी ही अपनी आवश्यकताओं को भली-भांति समझ सकता है और न तो प्रतिवादी/किराएदार इस संबंध में शर्तों को थोप सकता है और न ही न्यायालय भू-स्वामी की राय को अपने स्वयं के मत से प्रतिस्थापित कर सकता है । इसलिए, दोनों आधारों पर अर्थात् प्रतिवादी/किराएदार द्वारा संपत्ति के हक से इनकार करने तथा किराए के संदाय में व्यतिक्रम करने और भू-स्वामी की सद्भावी आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए अपीलाधीन निर्णय उलटने योग्य है और अपीलार्थी/वादी/भू-स्वामी की प्रथम अपील मंजूर किए जाने योग्य है, तद्नुसार इसे आज से तीन मास की अवधि के भीतर प्रतिवादी/किराएदार वादी को 10,000/- रुपए खर्चों के रूप में संदत्त किए जाने के साथ मंजूर

किया जाता है । निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है । प्रत्यर्थी/प्रतिवादी/किराएदार आज की तारीख अर्थात् 31 जुलाई, 2016 से छह मास की अवधि के भीतर वादी/अपीलार्थी को वाद परिसर के कब्जा खाली करके शांतिपूर्वक सौंपेगा और जनवरी, 2016 से प्रतिमास 5,000/- रुपए की दर से अंतःकालीन लाभ का संदाय करेगा और वादी/अपीलार्थी को अगले मास की प्रत्येक 15 तारीख तक या उसके पूर्व अंतःकालीन लाभ का संदाय निरंतर करता रहेगा, और यदि अंतःकालीन लाभ का संदाय करने में कोई व्यतिक्रम होता है तो बेदखली के लिए दी गई अवधि कम हो जाएगी और बेदखली की डिक्री तुरन्त निष्पादित हो जाएगी । प्रत्यर्थी/प्रतिवादी/किराएदार से दिसम्बर, 2015 तक की संपूर्ण अवधि के किराए की बकाया राशि का संदाय 3,500/- रुपए प्रतिमास की दर से करेगा जिसकी गणना का आरंभ उन मासों के पश्चात् से किया जाएगा जिनके किराए का संदाय किराया रसीदों (प्रदर्श 2 से 5) द्वारा किया गया था अर्थात् किराएदार जनवरी, 2002 से दिसम्बर, 2015 तक की अवधि के लिए किराए, खर्चों और अन्य अंतःकालीन लाभ का संदाय/अपीलार्थी को करेगा अन्यथा उस पर 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज देना होगा । वाद परिसर को या उसके किसी भाग को अन्य किसी तीसरे पक्षकार को किराए पर नहीं देगा और न ही किसी को समनुदेशित करेगा और वह उपरोक्त अवधि के दौरान उसमें किसी तीसरे पक्षकार के हित का सृजन नहीं करेगा और यदि वह ऐसा करता है तो उसे शून्य समझा जाएगा और ऐसा तृतीय पक्षकार इस डिक्री से भी बाध्य होगा । प्रतिवादी को आज की तारीख से तीन मास के भीतर विचारण न्यायालय में पूर्वोक्त शर्तों को समाविष्ट करके लिखित वचनबंध देना होगा और इस न्यायालय में शपथपत्र के साथ उसकी एक प्रति देनी होगी । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि वाद परिसर का कब्जा खाली करके शांतिपूर्वक और कब्जे खाली करके वादी/अपीलार्थी को तारीख 31 जुलाई, 2016 को या उसके पूर्व नहीं सौंपा जाता है या अंतःकालीन लाभ उपरोक्त निदेशानुसार संदत्त नहीं किया जाता है, जैसाकि ऊपर निदेश दिया गया है, तो सामान्य अनुक्रम में डिक्री का शीघ्र निष्पादन किए जाने के अतिरिक्त वादी/अपीलार्थी या वाद संपत्ति का स्वामी इस न्यायालय की अधिकारिता की अवमानना का अवलंब लेने का हकदार भी होगा । (पैरा 5, 6, 7 और 8)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2006 की एस. बी. सिविल प्रथम अपील सं. 4025.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन अपील ।

अपीलार्थी/वादी/भू-स्वामी की ओर से सर्वश्री नरेन्द्र थानवी के साथ आर. के. थानवी

प्रत्यर्थी/प्रतिवादी/किराएदार की ओर से श्री हेमन्त कुमार जैन

न्यायमूर्ति (डा.) विनीत कोठारी – अपीलार्थी/वादी, सरदारीलाल पुत्र श्री बालराम ने प्रतिवादी/किराएदार अर्थात् गजानंद पुत्र श्री मनोहरलाल को बी.एफ.-25, जवाहर नगर, श्री गंगानगर में स्थित वाद परिसर (आवासीय मकान) से बेदखल करने और उस पर शोध्य किराए के रूप में 31,500/- रुपए की वसूली की ईप्सा करते हुए बेदखली वाद फाइल किया गया था जिसे विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, श्री गंगाधर द्वारा खारिज किए जाने से व्यथित होकर सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 96 के अधीन वर्तमान प्रथम अपील फाइल की गई है ।

2. वाद को विद्वान् अपर जिला न्यायाधीश सं. 2, श्री गंगाधर, ने अपने तारीख 27 सितम्बर, 2005 के निर्णय और डिक्री के द्वारा वह वाद इस आधार पर खारिज कर दिया कि वादी/अपीलार्थी, पक्षकारों के बीच भू-स्वामी-किराएदार के संबंध को सिद्ध करने में असफल रहा है । इस प्रकार किराए के संदाय में व्यतिक्रम किए जाने से संबंधित विवाद्यक विनिश्चित नहीं किया गया किन्तु बेदखली के लिए दूसरा आधार अर्थात् वादी और उसके कुटुंब के सदस्यों को वाद संपत्ति की सद्भाविक आवश्यकता है अपीलार्थी/वादी के विरुद्ध विनिश्चित किया गया । विद्वान् विचारण न्यायालय का सुसंगत निष्कर्ष वर्तमान संदर्भ के लिए इसमें इसके नीचे उद्धृत किया गया है :–

> [1]** "वादी की ओर से विवादग्रस्त जायदाद का अपने आपको जरिये प्रदर्श-1 इकरारनामा जो दिनांक 31.8.2001 को निष्पादित होना कथित किया जाता है, इस इकरारनामा में कथित रूप से जायदाद का कब्जा खरीददार को दिया जाना उल्लिखित है । जहां खरीददार को विक्रेता द्वारा कब्जा सुपुर्द कर दिया हो, वहां इकरारनामा राजस्थान स्टाम्प ऐक्ट के संशोधन के प्रावधानों के मुताबिक पूर्ण स्टाम्प पर निष्पादित होकर पंजीबद्ध होना आवश्यक है जो यह

[1] ** मूल पाठ हिन्दी में है ।

इकरारनामा नहीं है । माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने 2000 (2) डी एन जे राज. पेज 679 के मामले में यह निर्धारित किया गया है कि अपंजीकृत दस्तावेज साक्ष्य में ग्राह्य नहीं है । यहां तक कि साम्पार्श्विक उद्देश्य के लिए भी हालांकि प्रकरण राजस्थान किराएदारी कानून से संबंधित है । किराएदारी कानून में, वादी को अपने आपको सम्पत्ति का स्वामी साबित करना आवश्यक नहीं है । इस संबंध में हमें मार्गदर्शन 2001 (2) डब्ल्यू एल सी राज. पेज 565 में मिलता है जिसमें माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह निर्धारित किया है कि निष्कासन के वाद में स्वत्व का प्रश्न अप्रासंगिक है इसके खंडन में प्रतिवादी की ओर से न्यायिक दृष्टांत आर एल डल्ब्यू. 1994 (1) पेज 198 प्रस्तुत किया गया है जिसमें माननीय राजस्थान उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया है कि विक्रय करने के करार करने मात्र से कोई अधिकार व हक अथवा हित उत्पन्न नहीं होते हैं । बेदखली का वाद पेश हुआ न कि विनिर्दिष्ट अनुतोष हेतु अपीलीय न्यायालय ने सारवान् अनियमितता बरती । पुनरीक्षण याचिका स्वीकार की गई । हस्तगत प्रकरण में यह निर्धारित किया जाना है कि क्या वादी व प्रतिवादी के मध्य मकान-मालिक व किराएदार के संबंध हैं, इस संबंध में वादी की ओर से यह कथित किया गया है कि प्रतिवादी ने वादी को किरायाधीन परिसर का किराया 31.12.2001 तक अदा किया हुआ है जिसकी नियमानुसार रसीद जारी कर प्रतिवादी को दी गई है, जिसका जवाब प्रतिवादी की ओर से इनकारी से दिया हुआ है और कथित किया गया है कि प्रतिवादी द्वारा परिसर किराए के लिए ही नहीं दिया गया तो किराया देने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता है । इस विवाद्यक को साबित करने के लिए वादी पी ड-1 के रूप में परीक्षित हुआ है जिसका मुख्य परीक्षण शपथपत्र पर हुआ है । शपथपत्र उसने रसीदात को प्रदर्श 2 से 5 होना कथित किया है जिसकी बाबत प्रतिवादी के अभिभाषक द्वारा आपत्ति की गई । आपत्ति का निस्तारण अंतिम निर्णय के वक्त किया जाता आदेशित किया हुआ है । रसीदात के बारे में वादी ने जो प्रति-परीक्षण में कथित किया उसका यहां विवेचन किया जा रहा है । मुझे ध्यान नहीं है कि मैं इनकम टैक्स देता हूँ या नहीं । मैं तो पूजा पाठ में रहता हूँ । मुझे ध्यान नहीं कि मैं अपनी आमदनी व खर्चे का हिसाब रखता हूँ या नहीं मुझे ध्यान नहीं ।

मेरा बैंक में खाता है या नहीं बच्चों को पता होगा । मैं अपना रुपया बैंक में रखता हूँ जो पंजाब सिंध बैंक में है । मैंने गजानंद से किराए की कोई लिखित पढ़त कराई, आज मुझे ध्यान नहीं । मैंने मेरा मकान गजानंद के अलावा मेरे बड़े लड़के को भी किराए पर दिया था । मेरा बड़ा लड़का मेरे साथ रहता है । मैं उसके साथ रहता हूँ । हमारा पता 14ए सदर बाजार श्री गंगानगर है । जहां हम लोग रहते हैं । मैंने किराए की राशि प्राप्त की, उसका कोई हिसाब रखा हो, इस संबंध में मेरे लड़के को पता होगा । मुझे पता नहीं है । मैंने गजानंद को कोई रसीद दी या ली हो तो मुझे आज ध्यान नहीं है । हमारी गजानंद के साथ किराएदारी के बारे में कोई शर्तें तय नहीं हुई थीं । मकान का क्या साइज है मैंने नहीं नापा । फिर कहा मुझे ध्यान नहीं है । मकान में कुल कितने कमरे हैं, मुझे इस बात का ध्यान नहीं है । एक ही बार देखने गया था । प्रदर्श 2 से 5 की लिखाई किसकी है मैं नहीं बता सकता ।

पी ड-2 के रूप में श्यामलाल परीक्षित हुआ है जिसका मुख्य परीक्षण भी शपथपत्र पर हुआ है जिसमें उसने कथन किया है कि मेरे पिता की ओर से मैं किराया गजानंद से प्राप्त कर रसीद देता था । रसीद पर मेरे पिता के हस्ताक्षर करवाकर देता था । रसीदें प्रदर्श 2 से 5 हैं जिन पर ए से बी मेरे पिता के सी से डी गजानंद के हस्ताक्षर हैं । प्रतिपरीक्षण में यह गवाह कथन करता है कि मेरे पिताजी का सारा हिसाब-किताब मैं ही रखता हूँ । मेरे पिताजी का बैंक में खाता नहीं है । मैं पिताजी का हिसाब-किताब जरूर रखता हूँ, उनकी बहियात नहीं रखता हूँ । मैं लिखित में इस मकान से प्राप्त किराए का हिसाब-किताब नहीं रखता, मैं तो जब किराया आता है पिताजी से लिखवाकर रसीद दे देता हूँ । मैं आयकर देता हूँ उसमें अपने खर्च का हिसाब-किताब भी देता हूँ । मैं स्वयं द्वारा किराया अदायगी की कोई लिखा-पढ़ी पेश नहीं की है । मैं जो किराया अपने पिताजी को अदा करता हूँ उसको आयकर में दिखाता हूँ । आज खुद कहा कि आयकर में किराया अदायगी के रूप में विवरण नहीं दिया । गजानंद व सरदारीलाल के मध्य किराए की कोई लिखित-पढ़त नहीं हुई । केवल किराए की रसीदें देते थे । रसीदों पर मेरे हस्ताक्षर नहीं हैं । मकान में कमरों का क्या साइज है । मैं नहीं बता सकता । किराएदारी की शर्तें लिखित में तय

नहीं हुई थीं । हम रसीद बुक नहीं रखते हैं सादे कागज पर ही रसीदें देते हैं जिसके खंडन में प्रतिवादी ने वादपत्र में उल्लेखित तमाम तथ्यों से इनकार किया है । प्रतिपरीक्षण में भी अपने मुख्य परीक्षण के कथनों से अखंडित रहा है ।

उपरोक्त साक्ष्य के विवेचन से यह तथ्य स्पष्ट है कि मकान-मालिक व किराएदार के संबंध में स्वयं वादी के अनुसार कोई लिखित किराएदारी तय नहीं हुई थीं, न ही लिखित में कोई शर्तें ही तय हुई थीं । केवल मौखिक किराएदारी होना कथित किया गया है, जिसे प्रतिवादी ने इनकार किया है । वादी का मुख्य आधार किराया अदायगी की रसीदात 2 से 5 है । वादी के स्वयं के अनुसार ये रसीदें किसके द्वारा लिखी थी उसे जानकारी नहीं है वादी को इस बात की भी जानकारी नहीं है कि प्रतिवादी को किराया अदायगी की रसीदें दी जाती थीं अथवा नहीं । वादी के अनुसार किराएशुदा परिसर का एक हिस्सा प्रतिवादी को 3,500/- रुपए प्रतिमाह किराए पर दिया गया है । वादी को स्वयं का वादी के अनुसार बैंक खाता है जबकि उसके पुत्र के अनुसार वादी का कोई बैंक खाता नहीं है । पुत्र सारा हिसाब-किताब अपने पास होना कथित करता है लेकिन ऐसा कोई हिसाब-किताब न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया है । जो दस्तावेजी साक्ष्य पक्षकारान के कब्जे में हो, उसे पेश नहीं किया जाता है जो धारा 114जी भारतीय साक्ष्य अधिनियम के प्रावधानों के मुताबिक इसके बाबत विपरीत अवधारणा की जाती है । इसके अलावा किराया अदायगी की जो रसीदें हैं उस पर 3,500/- रुपए प्रतिमाह के हिसाब से प्राप्त की गई होना कथित हो गई हैं । वादी की ओर से यह कहीं भी कथित नहीं किया गया है कि किराया अदायगी की रसीदों पर रसीदी टिकट लगी हो, जहां 500/- रुपए से अधिक राशि प्राप्त की जाती हो, स्टाम्प ऐक्ट के प्रावधानों के मुताबिक उस पर रसीदी टिकट लगाना आवश्यक है । वादी के पास यह विकल्प था कि अगर मूल रसीद प्रतिवादी के पास हो, हालांकि उसने ऐसा कोई कथन नहीं किया है तो उसे वह तलब करवाकर भी साबित कर सकता था । प्रतिवादी की ओर से रसीदों पर प्रदर्श मार्क लगाने की आपत्ति की गई थी । प्रतिवादी की यह आपत्ति विधिसम्मत है । ऐसी सूरत में वादी रसीदात को साबित करने में पूर्णतया असफल रहा है क्योंकि रसीदात

पर आक्षेप सहित प्रदर्श मार्क लगाया गया है । ऐसी सूरत में रसीदात प्रमाणित नहीं है । इन रसीदात के अलावा वादी व प्रतिवादी के मध्य मकान-मालिक व किराएदार के संबंध स्थापित करने की बाबत किसी प्रकार की कोई साक्ष्य पत्रावली पर उपलब्ध नहीं है । ऐसी सूरत में इस तनकी का निर्णय वाद के विरुद्ध व प्रतिवादी के पक्ष में किया जाता है ।

तनकी संख्या 2 से 5

पूर्व के विवाद्यक के विवेचन से यह स्पष्ट किया जा चुका है कि वादी व प्रतिवादी के मध्य मकान-मालिक व किराएदार के संबंध में नहीं है । ऐसी सूरत में प्रतिवादी ने 6 माह से अधिक अवधि का किराया रोक कर किराया अदायगी में व्यतिक्रम कारित किया है, इस प्रश्न पर विचार किया जाना अब अप्रासंगिक होगा क्योंकि वादी व प्रतिवादी के मध्य मकान-मालिक व किराएदार के संबंध में ही साबित नहीं है । इसके अलावा वादी ने किराएशुदा परिसर की अपने पुत्र बनवारीलाल जो उस पर आश्रित होना कथित किया गया है, के लिए भी निजी एवं सद्भाविक आवश्यकता होने का कथन किया गया है । वादी की ओर से विवादग्रस्त परिसर का कब्जा प्रतिवादी के जरिए नोटिस उपरोक्त आवश्यकता के आधार पर मांग की गई, जिसका जवाब भी प्रतिवादी ने प्रस्तुत कर मकान-मालिक व किराएदार के संबंधों से इनकार किया है । इसके अलावा वादी की ओर से जो साक्ष्य आया है उसमें वादी ने मुख्य परीक्षण में कथन किया है कि मिलकर अपने पुत्र बनवारीलाल के साथ मकान नं. 43 पी ब्लाक, श्री गंगानगर में निवास कर रहा है जबकि प्रति परीक्षण में इस साक्षी ने कथन किया है कि बड़ा लड़का मेरे साथ रहता है । मैं इसके साथ रहता हूँ । हमारा पता 14ए सदर बाजार, श्री गंगानगर है, जहां हम लोग रहते हैं । इसी प्रकार पी ड-2 के रूप में श्यामलाल परीक्षित हुआ है जिसका मुख्य परीक्षण भी शपथपत्र पर हुआ है । शपथपत्र में उसने कथित किया है कि मेरे पिता जो वर्तमान में मेरे छोटे भाई बनवारीलाल के साथ मकान नम्बर 43 पी ब्लाक, श्री गंगानगर में रिहायश करते हैं, अपनी रिहायश के लिए किरायाधीन दुकान की आवश्यकता है जबकि वादी वादपत्र में विवादग्रस्त परिसर को मकान बताकर आया है । इसके अलावा यह साक्षी श्यामलाल अपने प्रति

परीक्षण में कथन करता है कि मेरे पिता 9 सदर बाजार में रहते हैं । जबकि मुख्य परीक्षण में 43 पी ब्लाक श्री गंगानगर में रहने का कथन करता है । इसके अलावा यह कथन करता है कि सदर बाजार वाला मकान मेरे पिता के नाम से नहीं है जो आधा मेरे नाम से आधा मेरे भाई बनवारीलाल के नाम से है जब बनवारीलाल के नाम से रिहायश मकान उपलब्ध है तो वादी को अपने पुत्र के लिए रिहायशी मकान की सद्भाविक आवश्यकता प्रमाणित नहीं माना जा सकता । हस्तगत प्रकरण में अव्वल तो वादी प्रतिवादी के मध्य मकान-मालिक व किराएदार के संबंध में साबित करने में पूर्णतया असफल रहा है । ऐसी सूरत में इन विवाद्यकों पर विवेचन की आवश्यकता नहीं रह जाती है । इसके अलावा भी पत्रावली पर उपलब्ध साक्ष्य से यह तथ्य प्रमाणित है कि वादी के पास अपने स्वयं के व अपने पुत्रों की रिहायश के लिए अलग से मकान हैं । इस प्रकार इन सभी विवाद्यकों का निर्णय वादी के विरुद्ध व प्रतिवादी के पक्ष में किया जाता है ।

अनुतोष

चूंकि उक्त सभी विवाद्यकों का निर्णय वादी के विरुद्ध एवं प्रतिवादी के पक्ष में किया गया है अतः वाद वादी खारिज किए जाने योग्य है ।

आदेश

अतः वाद वादी सरदारीलाल के विरुद्ध प्रतिवादी गजानंद खारिज किया जाता है । खर्चा पक्षकारान अपना-अपना वहन करेंगे ।

हस्ता./-
(अक्षयचन्द्र किराडु)
अपर जिला न्यायाधीश सं. 2
श्री गंगानगर"

3. अपीलार्थी/वादी/भू-स्वामी की ओर से उपस्थित हुए श्री आर. के. थानवी, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता के सहायक श्री नरेन्द्र थानवी ने यह तर्क दिया है कि प्रश्नगत वाद संपत्ति जवाहरलाल पुत्र श्री चांदीराज (प्रदर्श 10) के पक्ष में यू.आई.टी., श्री गंगानगर द्वारा मूलरूप से आबंटित की गई थी जो आगे चलकर विक्रय करार के अधीन प्रदर्श-ए/4 द्वारा महेन्द्र पुत्र श्री गुरबचन सिंह के नाम हस्तांतरित कर दी गई और उक्त महेन्द्र ने प्रतिवादी

गजानंद पुत्र मनोहरलाल के पक्ष में दूसरे विक्रय करार को निष्पादित किया । तारीख 31 अगस्त, 2001 को प्रतिवादी, गजानंद ने 5,00,000/- रुपए के लिए वादी/अपीलार्थी, अर्थात् सरदारीलाल पुत्र श्री बलराम के पक्ष में एक अन्य विक्रय करार निष्पादित किया इस संबंध और लिखित करार (प्रदर्श 5) तैयार किया गया तथा उक्त वाद संपत्ति जो एक आवासीय घर है, उसे वादी/अपीलार्थी को हस्तांतरित करने की ईप्सा की गई किन्तु पक्षकार इस बात पर सहमत थे कि वाद संपत्ति का कब्जा 3,500/- रुपए के मासिक किराए से सहमत होने पर किराएदार प्रतिवादी, अर्थात् गजानंद के ही पास रहे जिसके लिए किराया-रसीद (प्रदर्श 2 से 5) द्वारा किराया संदत्त किया गया है । सरदारीलाल के पक्ष में प्रतिवादी, गजानंद द्वारा विक्रय करार के निष्पादन के अतिरिक्त, मासिक किराए के रूप में 3,500/- रुपए के संदाय को दर्शाते हुए चार (4) किराया रसीदें प्रदर्श 2 से 5 वादी ने वादपत्र में अपने इस पक्षकथन के समर्थन में प्रस्तुत कीं कि वाद संपत्ति की हैसियत से उनके बीच पक्षकारों भू-स्वामी-किराएदार का संबंध था । तथापि, प्रतिवादी/प्रत्यर्थी, गजानंद ने उक्त संबंध से इनकार किया है और उसने यह दावा किया है कि वह वाद संपत्ति का स्वामी है । इसलिए श्री आर. के. थानवी, विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता ने यह तर्क दिया है कि हालांकि बेदखली के बाद की कार्यवाहियों में हक का प्रश्न उठाना सुसंगत नहीं था, फिर भी, विद्वान् विचारण न्यायालय ने प्रतिवादी/किराएदार द्वारा ऐसे संबंध से इनकार किए जाने और किराए की उक्त रसीदों तथा वादी सरदारीलाल के पक्ष में प्रतिवादी द्वारा निष्पादित किए गए विक्रय करार के विद्यमान होने के आधार पर बेदखली से इनकार किया है । इसलिए, उसने यह अनुरोध किया है कि भू-स्वामी की वर्तमान प्रथम अपील मंजूर किए जाने योग्य है और बेदखली डिक्री भू-स्वामी के पक्ष में प्रदान की जानी चाहिए ।

4. दूसरी ओर, प्रतिवादी/किराएदार की ओर से उपस्थित हुए श्री हेमन्त कुमार जैन, विद्वान् काउंसेल ने यह निवेदन किया है कि उक्त किराया रसीदें (प्रदर्श 2 से 5) और करार से प्रतिवादी ने इनकार किया है और वस्तुतः उक्त किराया रसीदों का दुरुपयोग प्रतिवादी, गजानंद द्वारा कतिपय कोरे कागजों पर हस्ताक्षर करवा कर पक्षकारों के बीच चल रहे कारबार संबंधी विवाद को लेकर किया गया था । उसने यह भी निवेदन किया है कि श्री गंगानगर के यू.आई.टी. द्वारा जवाहरलाल के पक्ष में भूमिखंड/आवासी भूखंड के मूल आबंटन के पश्चात्, किसी भी पक्षकार ने

अपने पक्ष में विक्रय विलेख रजिस्ट्रीकृत नहीं कराया है और इस न्यायालय के समक्ष पढ़े गए पी. डब्ल्यू. 1 अर्थात् सरदारीलाल और पी. डब्ल्यू. 2 अर्थात् श्यामलाल पुत्र सरदारीलाल के कथनों से विद्वान् काउंसेल ने यह साबित करने की ईप्सा की कि वादी इस बात से अवगत नहीं था कि पक्षकारों के बीच ऐसा करार किया गया है या उसने किराए की रसीदें जारी कर रखी थीं जिनपर प्रतिवादी ने हस्ताक्षर किए हुए थे । इसलिए, उसने यह निवेदन किया है कि वादी, भू-स्वामी/किराएदार के बीच संबंध होने के अपने दावे के समर्थन में इन दस्तावेजों को साबित नहीं कर सका और इस प्रकार निचले न्यायालय ने जो बेदखली करने से इनकार किया है, वह न्यायोचित है और वर्तमान प्रथम अपील खारिज किए जाने योग्य है ।

5. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुनने के पश्चात्, इस न्यायालय का यह मत है कि वादी/अपीलार्थी/भू-स्वामी की वर्तमान प्रथम अपील मंजूर किए जाने योग्य है । ऐसा करने के लिए निम्न कारण दिए जा रहे हैं ।

6. यह सुव्यवस्थित है कि किराया नियंत्रण और बेदखली के मामलों में हक विनिश्चित किया जाना सुसंगत नहीं है और यह विधि की प्रतिपादना पर प्रतिवादी/किराएदार के विद्वान् काउंसेल द्वारा विवाद नहीं किया गया है और यह ठीक ही तो है । यह सत्य है कि वादी ने इस तात्पर्य से उक्त संपत्ति का स्वामी होने का दावा नहीं किया है कि उसने अपने पक्ष में रजिस्ट्रीकृत विक्रय करार कराया है । किन्तु उसने प्रतिवादी गजानंद और उसकी पत्नी श्रीमती संतोष देवी द्वारा तारीख 31 अगस्त, 2001 को वादी के पक्ष में 5,000/- रुपए से संबंधित विक्रय करार (प्रदर्श 1) निष्पादित किए जाने का निश्चित रूप से अवलंब लिया है और करार में, क्रेता को दी गई वाद संपत्ति कब्जे का तथ्य भी उल्लिखित है । तत्पश्चात् वादी, सरदारीलाल चार मास तक किराया रसीदें (प्रदर्श 2 से 5) प्रतिवादी, गजानंद को दी गई थीं जिनमें स्वयं प्रतिवादी द्वारा किराया दिया जाना दर्शाया गया था । इन दस्तावेजों को, जिन पर दोनों पक्षकारों द्वारा हस्ताक्षर किए गए थे, अभिकथित कारबार संबंधी विवाद के कारण प्रतिवादी द्वारा अनदेखा किया गया है जिसके ब्यौरे और साक्ष्य को विचारण न्यायालय के अभिलेख पर पेश नहीं किया गया है और वह मात्र एक बहानेबाजी है । वादी/अपीलार्थी, सरदारीलाल के पक्ष में एक स्टांप पेपर पर, जिस पर दो साक्षियों ने हस्ताक्षर किए हुए हैं, विक्रय करार निष्पादित तथा प्रदर्श 2 से 5

द्वारा चार मास के किराए को संदत्त करने के पश्चात् प्रतिवादी/किराएदार द्वारा ऐसे संबंध से नकारना उसके द्वारा किए गए मिथ्या अभिवाक् के सिवाय कुछ नहीं है । इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि अभिलेख पर प्रस्तुत पूर्वोक्त साक्ष्य के आधार पर भू-स्वामी-किराएदार का वह संबंध वादी द्वारा विधिवत रूप से सिद्ध और साबित कर दिया गया है ।

7. विद्वान् विचारण न्यायालय द्वारा इस संबंध में समनुदेशित कारण चलने योग्य नहीं हैं कि वादी/अपीलार्थी को वाद संपत्ति की सद्भावी और निजी आवश्यकता है । विद्वान् विचारण न्यायालय ने वादी/भू-स्वामी के कुटुंब सदस्यों के रहन-सहन के स्तर के बारे में स्वयं अपना मत स्पष्ट रूप से प्रतिस्थापित किया है जिसे करने के लिए वह हकदार नहीं था । सुव्यवस्थित विधिक स्थिति यह है कि भू-स्वामी ही अपनी आवश्यकताओं को भली-भांति समझ सकता है और न तो प्रतिवादी/किराएदार इस संबंध में शर्तों को थोप सकता है और न ही न्यायालय भू-स्वामी की राय को अपने स्वयं के मत से प्रतिस्थापित कर सकता है । इसलिए, दोनों आधारों पर अर्थात् प्रतिवादी/किराएदार द्वारा संपत्ति के हक से इनकार करने तथा किराए के संदाय में व्यतिक्रम करने और भू-स्वामी की सद्भावी आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए अपीलाधीन निर्णय उलटने योग्य है और अपीलार्थी/वादी/भू-स्वामी की प्रथम अपील मंजूर किए जाने योग्य है, तद्नुसार इसे आज से तीन मास की अवधि के भीतर प्रतिवादी/किराएदार वादी द्वारा 10,000/- रुपए खर्चों के रूप में संदत्त किए जाने के साथ मंजूर किया जाता है । निचले न्यायालय के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है ।

8. प्रत्यर्थी/प्रतिवादी/किराएदार आज की तारीख अर्थात् 31 जुलाई, 2016 से छह मास की अवधि के भीतर वादी/अपीलार्थी को वाद परिसर के कब्जा खाली करके शांतिपूर्वक सौंपेगा और जनवरी, 2016 से प्रतिमास 5,000/- रुपए की दर से अंतःकालीन लाभ का संदाय करेगा और वादी/अपीलार्थी को अगले मास की प्रत्येक 15 तारीख तक या उसके पूर्व अंतःकालीन लाभ का संदाय निरंतर करता रहेगा, और यदि अंतःकालीन लाभ का संदाय करने में कोई व्यतिक्रम होता है तो बेदखली के लिए दी गई अवधि कम हो जाएगी और बेदखली की डिक्री तुरन्त निष्पादित हो जाएगी । प्रत्यर्थी/प्रतिवादी/किराएदार से दिसम्बर, 2015 तक की संपूर्ण अवधि के किराए की बकाया राशि का संदाय 3,500/- रुपए प्रतिमास की

दर से करेगा जिसकी गणना का आरंभ उन मासों के पश्चात् से किया जाएगा जिनके किराए का संदाय किराया रसीदों (प्रदर्श 2 से 5) द्वारा किया गया था अर्थात् किराएदार जनवरी, 2002 से दिसम्बर, 2015 तक की अवधि के लिए किराए, खर्चों और अन्य अंतःकालीन लाभ का संदाय/अपीलार्थी को करेगा अन्यथा उस पर 9 प्रतिशत वार्षिक ब्याज देना होगा । वाद परिसर को या उसके किसी भाग को अन्य किसी तीसरे पक्षकार को किराए पर नहीं देगा और न ही किसी को समनुदेशित करेगा और वह उपरोक्त अवधि के दौरान उसमें किसी तीसरे पक्षकार के हित का सृजन नहीं करेगा और यदि वह ऐसा करता है तो उसे शून्य समझा जाएगा और ऐसा तृतीय पक्षकार इस डिक्री से भी बाध्य होगा । प्रतिवादी को आज की तारीख से तीन मास के भीतर विचारण न्यायालय में पूर्वोक्त शर्तों को समाविष्ट करके लिखित वचनबंध देना होगा और इस न्यायालय में शपथपत्र के साथ उसकी एक प्रति देनी होगी । यह स्पष्ट किया जाता है कि यदि वाद परिसर का कब्जा खाली करके शांतिपूर्वक और कब्जे खाली करके वादी/अपीलार्थी को तारीख 31 जुलाई, 2016 को या उसके पूर्व नहीं सौंपा जाता है या अंतःकालीन लाभ उपरोक्त निदेशानुसार संदत्त नहीं किया जाता है, जैसाकि ऊपर निदेश दिया गया है, तो सामान्य अनुक्रम में डिक्री का शीघ्र निष्पादन किए जाने के अतिरिक्त वादी/अपीलार्थी या वाद संपत्ति का स्वामी इस न्यायालय की अधिकारिता की अवमानना का अवलंब लेने का हकदार भी होगा । इस न्यायालय की एक प्रति दोनों निचले न्यायालयों और संबंधित पक्षकारों को तुरन्त भेजी जाए ।

अपील मंजूर की गई ।

मही./अस.

प्रदीप कुमार

बनाम

हिमाचल प्रदेश राज्य और अन्य

तारीख 18 जून, 2015

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा

हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 – धारा 14 – प्रश्नगत भूमि की नीलामी में क्रय करना – राज्य द्वारा उक्त भूमि का अधिग्रहण करना – अधिग्रहण तत्समय प्रवृत्त विधि के अतिलंघन में होना – यदि राज्य द्वारा तत्समय प्रवृत्त विधि के अतिलंघन में कोई भूमि अधिगृहीत की जाती है तो ऐसा अधिग्रहण अवैध और अविधिमान्य होगा ।

वर्तमान मामले में, अपीलार्थी-वादी ने व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ यह घोषणा करने के लिए वाद फाइल किया था कि पूरन सिंह पुत्र वजीर सिंह के हित-पूर्वाधिकारी ने भूखंड सं. 5, ब्लाक बी, सपरुन मंडी, सोलन को क्रय किया था जो अब वर्ष 1992-93 मौजा दहुन, तहसील और जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश के लिए जमाबंदी के अनुसार खसरा सं. 827, 828, 829, 833, 834, 879 और 882 के रूप में दर्शित है । पूरन सिंह, अपनी मृत्यु होने तक भूमि का कब्जे सहित स्वामी बना रहा । उसकी मृत्यु 1 नवम्बर, 1995 को हुई । वादी ने तारीख 13 अक्तूबर, 1992 के रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में संपत्ति प्राप्त कर ली थी । इसे उप-रजिस्ट्रार, पटियाला के समक्ष रजिस्ट्रीकृत किया गया था । वादी को प्रशासक, सपरुन मंडी, सोलन के अभिलेख से यह जानकारी हुई कि प्रशासक ने तारीख 29 जून, 1981 के मामला सं. एस. पी. सं. 8/1980 के द्वारा हिमाचल प्रदेश राज्य के पक्ष में संपत्ति अधिगृहीत कर ली । वादी उसका कब्जे सहित स्वामी था और वादी के हित-उत्तराधिकारी की किसी भी समय पर प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों द्वारा कोई सुनवाई नहीं की गई । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के अधीन नोटिस प्रतिवादियों पर तामील की गई थी । वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया । उनके अनुसार, भूखंड सं. 5, ब्लाक बी को श्री पूरन सिंह द्वारा क्रय किए जाने की रिपोर्ट है । पटवारी, सपरुन मंडी ने

तारीख 28 अगस्त, 1980 को यह रिपोर्ट दी थी कि बोली लगाने वाले ने दो वर्ष की विहित अवधि के भीतर गृह का निर्माण नहीं किया है और इस प्रकार, उसने नीलामी की शर्तों का अतिक्रमण किया है । चूंकि, पूरन सिंह का आवासीय पता उपलब्ध नहीं था इसलिए, तारीख 28 फरवरी, 1981 के साप्ताहिक राजपत्र में एक साधारण लोक नोटिस प्रकाशित किया गया, यह अपेक्षा करते हुए कि सभी बोली लगाने वाले प्रतिवादियों से अनुमोदित नक्शा प्राप्त करने के पश्चात् निर्माण पूरा कर लें । उन्हें 30 दिनों की अवधि मंजूर की गई थी, जिनमें असफल रहने पर, भूखंड को पुनः अधिगृहीत किया जा सकता था । इसके पश्चात्, भूखंड को प्रशासक (उपायुक्त, सोलन) द्वारा भूखंड अधिगृहीत कर लिया गया था और तारीख 1 दिसम्बर, 1981 को राजस्व अभिलेख में इसे प्रभावी करने का आदेश दिया गया । वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया । उप-न्यायाधीश द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 1998 को विवाद्यक विरचित किए गए थे । उप-न्यायाधीश ने तारीख 15 जनवरी, 2000 को वाद डिक्री कर दिया था । प्रतिवादियों ने इसके विरुद्ध अपर जिला न्यायाधीश, सोलन के समक्ष एक अपील फाइल की थी । उन्होंने इसे तारीख 7 अप्रैल, 2001 को इसे मंजूर कर लिया था । अतएव, वर्तमान अपील फाइल की गई है । न्यायालय द्वारा द्वितीय अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – अभिलेखों में यह अभिलिखित है कि एक नोटिस, तारीख 28 फरवरी, 1981 के साप्ताहिक राजपत्र में प्रकाशित हुआ था जिसमें सभी बोली लगाने वालों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे 30 दिनों के भीतर अनुमोदित नक्शा प्राप्त करने के पश्चात् निर्माण पूरा कर ले । तारीख 29 जून, 1981 का आदेश, प्रशासक द्वारा हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 के अधीन निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था । स्वीकृततः, भूखंड को वर्ष 1940 में श्री पूरन सिंह द्वारा क्रय किया गया था । इस प्रकार, हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । तारीख 29 जून, 1981 का आदेश बिना अधिकारिता के है । वर्तमान नियमित द्वितीय अपील में उद्भूत प्रश्न, इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा 1984 की सी. डब्ल्यू. पी. सं. 303 में विनिश्चित तारीख 4 अप्रैल, 1984 वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अनिर्णीत विषय से कुछ अधिक नहीं है । तारीख 4 अप्रैल, 1984 के निर्णय का परिवर्तित भाग इस प्रकार है – "इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि

अधिनियम की प्रयोज्यता के लिए अन्य शर्तों के अध्यधीन विक्रय निम्नलिखित तरीके से किया जाना चाहिए – (1) अधिनियम के उपबंधों के अधीन, या (2) पंजाब अधिनियम के उपबंधों के अधीन, या (3) पंजाब सरकार, कृषि विभाग की तारीख 5 मार्च, 1957 की अधिसूचना सं 359-डी.(एम.)57/884 के अधीन, जब तक विक्रय, पूर्वोक्त संवर्गों में से किसी एक के भी अधीन नहीं आता है तब तक अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिग्रहण या समपहृत की शक्तियों का प्रयोग करना संभाव्य नहीं हो सकता है । वर्तमान मामले में, याची ने यह दावा किया है कि विवादित भूमि को वर्ष 1940 में या उसके आस-पास उसके मृतक पिता द्वारा लोक नीलामी में क्रय किया गया था । यह तथ्य कि विवादित भूमि को पूर्व पटियाला स्टेट द्वारा वर्ष 1940 में लोक नीलामी द्वारा विक्रय किया गया था, विवादित नहीं है, यद्यपि, याची का हक विवादित है । इन परिस्थितियों के अधीन, यह प्रकट होता है कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिग्रहण या समपहृत की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है । अधिनियम ऐसे मामलों में लागू नहीं होता है । शक्ति का इस प्रकार का कोई प्रयोग पूर्णतः बिना प्राधिकार और अधिकारिता का होता है । मात्र इस एक ही आधार पर याचिका सफल होने की हकदार है ।' यह दोहराया जाता है कि वाद, जानकारी की तारीख से परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया गया था । भूखंड को हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 की धारा 14 के अधीन अधिगृहीत नहीं किया जा सकता था क्योंकि इसे वर्ष 1940 में क्रय किया गया था । (पैरा 15, 16 और 17)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2001 की नियमित द्वितीय अपील सं. 229.

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 100 के अधीन द्वितीय अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री नीरज गुप्ता, अधिवक्ता

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री श्रवण डोगरा, महाधिवक्ता के साथ एम. ए. खान, अपर महाधिवक्ता, नीरज के. शर्मा, उप-महाधिवक्ता और रमेश थौर, सहायक अपर महाधिवक्ता

न्यायमूर्ति राजीव शर्मा – यह नियमित द्वितीय अपील, अपर जिला न्यायाधीश, सोलन द्वारा 2000 की सिविल अपील सं. 6-एस./13 में पारित तारीख 7 अप्रैल, 2001 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध निर्देशित है ।

2. इस अपील का न्यायनिर्णयन करने के लिए आवश्यक मुख्य तथ्य यह हैं कि अपीलार्थी-वादी (जिसे इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "वादी" कहा गया है) ने व्यादेश के पारिणामिक अनुतोष के साथ यह घोषणा करने के लिए वाद फाइल किया था कि पूरन सिंह पुत्र वजीर सिंह के हित-पूर्वाधिकारी ने भूखंड सं. 5, ब्लाक बी, सपरुन मंडी, सोलन को क्रय किया था जो अब वर्ष 1992-93 मौजा दहुन, तहसील और जिला सोलन, हिमाचल प्रदेश के लिए जमाबंदी के अनुसार खसरा सं. 827, 828, 829, 833, 834, 879 और 882 के रूप में दर्शित है । पूरन सिंह, अपनी मृत्यु होने तक भूमि का कब्जे सहित स्वामी बना रहा । उसकी मृत्यु 1 नवम्बर, 1995 को हुई । वादी ने तारीख 13 अक्तूबर, 1992 के रजिस्ट्रीकृत विल के आधार पर एकमात्र उत्तराधिकारी के रूप में संपत्ति प्राप्त कर ली थी । इसे उप-रजिस्ट्रार, पटियाला के समक्ष रजिस्ट्रीकृत किया गया था । वादी को प्रशासक, सपरुन मंडी, सोलन के अभिलेख से यह जानकारी हुई कि प्रशासक ने तारीख 29 जून, 1981 के मामला सं. एस. पी. सं. 8/1980 के द्वारा हिमाचल प्रदेश राज्य के पक्ष में संपत्ति अधिगृहीत कर ली । वादी उसका कब्जे सहित स्वामी था और वादी के हित-उत्तराधिकारी की किसी भी समय पर प्रत्यर्थियों/प्रतिवादियों (जिन्हें इसमें इसके पश्चात् सुविधा के लिए "प्रतिवादियों" कहा गया है) द्वारा कोई सुनवाई नहीं की गई । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के अधीन नोटिस प्रतिवादियों पर तामील की गई थी ।

3. वाद का प्रतिवादियों द्वारा विरोध किया गया । उनके अनुसार, भूखंड सं. 5, ब्लाक बी को श्री पूरन सिंह द्वारा क्रय किए जाने की रिपोर्ट है । पटवारी, सपरुन मंडी ने तारीख 28 अगस्त, 1980 को यह रिपोर्ट दी थी कि बोली लगाने वाले ने दो वर्ष की विहित अवधि के भीतर गृह का निर्माण नहीं किया है और इस प्रकार, उसने नीलामी की शर्तों का अतिक्रमण किया है । चूंकि, पूरन सिंह का आवासीय पता उपलब्ध नहीं था इसलिए, तारीख 28 फरवरी, 1981 के साप्ताहिक राजपत्र में एक साधारण लोक नोटिस प्रकाशित किया गया, यह अपेक्षा करते हुए कि सभी बोली लगाने वाले प्रतिवादियों से अनुमोदित नक्शा प्राप्त करने के पश्चात् निर्माण पूरा कर लें । उन्हें 30 दिनों की अवधि मंजूर की गई थी, जिनमें असफल

रहने पर, भूखंड को पुनः अधिगृहीत किया जा सकता था । इसके पश्चात्, भूखंड को प्रशासक (उपायुक्त, सोलन) द्वारा भूखंड अधिगृहीत कर लिया गया था और तारीख 1 दिसम्बर, 1981 को राजस्व अभिलेख में इसे प्रभावी करने का आदेश दिया गया ।

4. वादी द्वारा प्रत्युत्तर फाइल किया गया । उप-न्यायाधीश द्वारा तारीख 21 अप्रैल, 1998 को विवाद्यक विरचित किए गए थे । उप-न्यायाधीश ने तारीख 15 जनवरी, 2000 को वाद डिक्री कर दिया था । प्रतिवादियों ने इसके विरुद्ध अपर जिला न्यायाधीश, सोलन के समक्ष एक अपील फाइल की थी । उन्होंने इसे तारीख 7 अप्रैल, 2001 को इसे मंजूर कर लिया था । अतएव, वर्तमान अपील फाइल की गई है । इसे तारीख 27 जून, 2001 को निम्नलिखित विधि के सारवान् प्रश्नों पर स्वीकार कर लिया गया था :–

> "1. क्या वादी-अपीलार्थी द्वारा फाइल वाद परिसीमा अवधि के भीतर है ?
>
> 2. क्या हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 के उपबंध वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होते हैं ?"

5. अपीलार्थी के विद्वान् काउंसेल श्री नीरज गुप्ता ने यह जोरदार तर्क दिया कि वाद, जानकारी की तारीख से परिसीमा अवधि के भीतर है । उन्होंने यह भी दलील दी कि हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 के उपबंध वर्तमान मामले के तथ्यों में लागू नहीं होते हैं ।

6. विद्वान् महाधिवक्ता श्री श्रवण डोगरा ने प्रथम अपील न्यायालय द्वारा पारित निर्णय और डिक्री का समर्थन किया है ।

7. मैंने, पक्षकारों के विद्वान् काउंसेल को सुना और अभिलेखों का ध्यानपूर्वक परिशीलन किया है ।

8. चूंकि, दोनों विधि के सारवान् प्रश्न एक दूसरे से जुड़े हुए हैं इसलिए, साक्ष्यों की चर्चा की पुनरावृत्ति से बचने के लिए उन पर एक साथ चर्चा की जाएगी ।

9. यह विवादित नहीं है कि वादी श्री पूरन सिंह के हित-पूर्वाधिकारी ने लोक नीलामी में वर्ष 1940 में भूखंड क्रय किया था । पूरन सिंह ने तारीख 13 अक्तूबर, 1992 को वादी के पक्ष में एक विल, प्रदर्श पी. डब्ल्यू.

3/ए निष्पादित किया है । भूमि को तारीख 29 जून, 1981 के आदेश द्वारा अधिगृहीत कर लिया गया था । वादी को तारीख 29 जून, 1981 के आदेश द्वारा भूखंड अधिगृहीत करने के बारे में जानकारी तारीख 8 अप्रैल, 1997 को ही हुई जब वह प्रशासक के कार्यालय में गया था । सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 की धारा 80 के अधीन नोटिस प्रतिवादियों पर तामील की गई थी । तारीख 29 जून, 1981 के आदेश के बावजूद भूमि का कब्जा प्रतिवादियों द्वारा नहीं लिया गया था । इस प्रकार, वाद, जानकारी होने की तारीख से परिसीमा अवधि के भीतर है । वादी को आक्षेपित आदेश के बारे में जानकारी तारीख 8 अप्रैल, 1997 को ही हुई थी और वाद तारीख 18 जून, 1997 को पारित की गई थी । इस प्रकार, प्रथम अपील न्यायालय ने यह गलत निष्कर्ष निकाला है कि वाद, परिसीमा अवधि से वर्जित है ।

10. अभि. सा. 1, भगवान सिंह, उप-रजिस्ट्रार, पटियाला के कार्यालय का रजिस्ट्रीकरण लिपिक, ने समन किए गए अभिलेखों को प्रस्तुत किया है और समन किए गए अभिलेखों के अनुसार, विल सं. 363 को तारीख 13 अक्तूबर, 1992 को निष्पादित हुआ था । विल की प्रविष्टि क्रम सं. 363, बही सं. 3 और जिल्द सं. 126 पर अभिलिखित है ।

11. अभि. सा. 2, ओम प्रकाश गर्ग, दस्तावेज लेखक है । पूरन सिंह ने उसे विल का निष्पादन करने के लिए बुलाया था । पूरन सिंह की प्रेरणा पर उसके द्वारा विल लिखा गया था । विल की अन्तर्वस्तुएं, पूरन सिंह को पढ़कर सुनाई गई थीं । पूरन सिंह अपनी स्वस्थचित्त दशा में था । उसने विल की अन्तर्वस्तुओं को सही स्वीकार करने के पश्चात् उस पर हस्ताक्षर किए थे ।

12. अभि. सा. 3 रचपाल सिंह के अनुसार, ओम प्रकाश ने विल लिखा है । विल की अन्तर्वस्तुएं, वसीयतकर्ता को पढ़कर सुनाई गई थी और स्पष्टीकृत की गई थी । उसने विल की अन्तर्वस्तुओं को सही होना स्वीकार करने के पश्चात् उस पर हस्ताक्षर किए थे । इसके पश्चात्, पार्श्व साक्षियों ने विल पर हस्ताक्षर किए थे । यह उप-रजिस्ट्रार के समक्ष रजिस्ट्रीकृत हुआ था ।

13. अभि. सा. 4 प्रदीप कुमार ने मृत्यु प्रमाणपत्र प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/ए को साबित किया है । उसके अनुसार, पूरन सिंह ने अक्तूबर, 1992 के माह में उसके पक्ष में विल प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 3/ए को निष्पादित किया है । वाद भूमि को प्रतिवादियों द्वारा आदेश प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/एच के द्वारा अधिगृहीत किया गया था । पूरन सिंह वाद भूमि के कब्जे में था । कोई

समन जारी नहीं किए गए थे । उसे इस आदेश के बारे में जानकारी तारीख 8 अप्रैल, 1997 को हुई थी । नोटिस प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/के जारी हुआ था । उसने डाक प्राप्ति प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/एल को साबित किया है । उसके अनुसार, राजस्व प्रविष्टि प्रदर्श पी. डब्ल्यू. 4/बी गलत है ।

14. प्रतिवादी साक्षी 1 धानी सिंह ने यह अभिसाक्ष्य दिया है कि अभिलेख के अनुसार, भूखंड सं. 5, ब्लाक बी, क्षेत्र 5 बिस्वा भूमि, मृतक पूरन सिंह को आबंटित हुआ था । पूरन सिंह ने भूखंड के ऊपर दो वर्ष की अवधि के भीतर निर्माण नहीं किया था, जिस प्रयोजन के लिए उसे यह भूखंड आबंटित हुआ था । तारीख 28 अगस्त, 1980 को एक रिपोर्ट हल्कू पटवारी द्वारा दिया गया था । एक नोटिस आबंटी को दिया गया था । आबंटी नोटिस के बावजूद उपस्थित नहीं हुआ और तारीख 29 जून, 1981 को राज्य द्वारा भूखंड अधिगृहीत कर लिया गया ।

15. अभिलेखों में यह अभिलिखित है कि एक नोटिस, तारीख 28 फरवरी, 1981 के साप्ताहिक राजपत्र में प्रकाशित हुआ था जिसमें सभी बोली लगाने वालों से यह अपेक्षा की गई थी कि वे 30 दिनों के भीतर अनुमोदित नक्शा प्राप्त करने के पश्चात् निर्माण पूरा कर लें । तारीख 29 जून, 1981 का आदेश, प्रशासक द्वारा हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 के अधीन निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए पारित किया गया था । स्वीकृततः, भूखंड को वर्ष 1940 में श्री पूरन सिंह द्वारा क्रय किया गया था । इस प्रकार, हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 के उपबंध लागू नहीं होते हैं । तारीख 29 जून, 1981 का आदेश बिना अधिकारिता के है ।

16. वर्तमान नियमित द्वितीय अपील में उद्भूत प्रश्न, इस न्यायालय के खंड न्यायपीठ द्वारा 1984 की सी. डब्ल्यू. पी. सं. 303 में विनिश्चित तारीख 4 अप्रैल, 1984 वाले मामले में अधिकथित सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए अनिर्णीत विषय से कुछ अधिक नहीं है । तारीख 4 अप्रैल, 1984 के निर्णय का परिवर्तित भाग इस प्रकार है :–

> "इस प्रकार, यह प्रतीत होता है कि अधिनियम की प्रयोज्यता के लिए अन्य शर्तों के अध्यधीन विक्रय निम्नलिखित तरीके से किया जाना चाहिए –
>
> (1) अधिनियम के उपबंधों के अधीन, या
>
> (2) पंजाब अधिनियम के उपबंधों के अधीन, या

(3) पंजाब सरकार, कृषि विभाग की तारीख 5 मार्च, 1957 की अधिसूचना सं. 359-डी.(एम.)57/884 के अधीन,

जब तक विक्रय, पूर्वोक्त संवर्गों में से किसी एक के भी अधीन नहीं आता है तब तक अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिग्रहण या समपहृत की शक्तियों का प्रयोग करना संभाव्य नहीं हो सकता है ।

वर्तमान मामले में, याची ने यह दावा किया है कि विवादित भूमि को वर्ष 1940 में या उसके आस-पास उसके मृतक पिता द्वारा लोक नीलामी में क्रय किया गया था । यह तथ्य कि विवादित भूमि को पूर्व पटियाला स्टेट द्वारा वर्ष 1940 में लोक नीलामी द्वारा विक्रय किया गया था, विवादित नहीं है, यद्यपि, याची का हक विवादित है । इन परिस्थितियों के अधीन, यह प्रकट होता है कि अधिनियम की धारा 14 के अधीन अधिग्रहण या समपहृत की शक्ति का प्रयोग नहीं किया जा सकता है । अधिनियम ऐसे मामलों में लागू नहीं होता है । शक्ति का इस प्रकार का कोई प्रयोग पूर्णतः बिना प्राधिकार और अधिकारिता का होता है । मात्र इस एक ही आधार पर याचिका सफल होने की हकदार है ।"

17. यह दोहराया जाता है कि वाद, जानकारी की तारीख से परिसीमा अवधि के भीतर फाइल किया गया था । भूखंड को हिमाचल प्रदेश न्यू मंडी टाउनशिप (विकास और विनियमन) अधिनियम, 1973 की धारा 14 के अधीन अधिगृहीत नहीं किया जा सकता था क्योंकि इसे वर्ष 1940 में क्रय किया गया था ।

18. तद्नुसार, विधि के दोनों सारवान् प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं ।

19. इसमें उपर्युक्त किए गए विश्लेषणों और चर्चा को ध्यान में रखते हुए, वर्तमान अपील मंजूर की जाती है । अपर जिला न्यायाधीश, सोलन द्वारा 2000 की सिविल अपील सं. 6-एस./13 में पारित तारीख 7 अप्रैल, 2001 के निर्णय और डिक्री को अपास्त किया जाता है और उप-न्यायाधीश, कसौली, सोलन द्वारा 1997 की मामला सं. 233/1 में पारित तारीख 15 जनवरी, 2000 के निर्णय और डिक्री को पुनः बहाल किया जाता है । लम्बित आवेदन/आवेदनों, यदि कोई हो, को भी निपटाया जाता है । तथापि, खर्चे का कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

द्वितीय अपील मंजूर की गई ।

क.

हिमाचल प्रदेश भूतपूर्व सैनिक निगम

बनाम

जिला मजिस्ट्रेट, सोलन और अन्य

तारीख 11 दिसंबर, 2015

न्यायमूर्ति तरलोक सिंह चौहान

संविधान, 1950 – अनुच्छेद 226 – न्यायिक पुनर्विलोकन – भूतपूर्व सैनिक अधिनियम, 1979 के अधीन भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण और आर्थिक उत्थान के लिए गठित हिमाचल प्रदेश भूतपूर्व सैनिक निगम अनुच्छेद 12 के अधीन कानूनी निकाय है और यदि कार्य के आबंटन के दौरान याची का कोटा 10 प्रतिशत से 7½ प्रतिशत घटाकर प्रत्यर्थी सं. 2, एक सहकारी सोसाइटी के पक्ष में मंजूर किया जाता है तो यह अवैध और असंगत नहीं होगा ।

मामले का संक्षिप्त तथ्य यह है कि प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात् जिला, सोलन भूतपूर्व सैनिक परिवहन सहकारी सोसाइटी लिमिटेड, दरलाघाटे ने इस आधार पर 2013 की सिविल रिट याचिका सं. 4040 फाइल की थी कि वह याची से परिवहन कार्य का अपना सम्यक् शेयर प्राप्त नहीं कर रहा है । प्रत्यर्थी सं. 2 ने भी ऋषि मार्कंडे भूतपूर्व सैनिक परिवहन और कल्याण समिति, जुखाला, जिला बिलासपुर की तरह पृथक् कोटा की मांग की । अंततः उसने 21 अप्रैल, 2010 को इसमें याची द्वारा पारित इस आदेश को अभिखंडित करने की मांग की है जिसके द्वारा शिमला, सोलन और कुल्लू के भूतपूर्व सैनिकों के लिए केवल 30 ट्रकों का कोटा नियत किया गया था । इस न्यायालय ने 2013 की सिविल रिट याचिका सं. 4040 में तारीख 12 नवंबर, 2013 को आदेश पारित किया । इस आदेश के अनुपालन में प्रत्यर्थी सं. 1 ने याची के आबंटन और परिवहन कार्य को कम करते हुए आदेश पारित किया था जहां तक यह प्रत्यर्थी सं. 3 अर्थात् अम्बूजा सीमेंट के रऊरी यूनिट से विद्यमान 10 प्रतिशत से 7½ प्रतिशत सीमेंट उठाने के कार्य का संबंध है और इस प्रकार 2½ प्रतिशत कम किए गए कोटे को प्रत्यर्थी सं. 2 को आबंटित किए जाने का आदेश किया गया है । इसी आदेश को याची ने इस आधार पर चुनौती दी कि प्रत्यर्थी सं. 1 का आक्षेपित आदेश मनमाना और विभेदकारी है क्योंकि यह याची निगम है

जिसका गठन पूरे राज्य में भूतपूर्व सैनिकों के फायदों के लिए कानून के अधीन किया गया है । प्रत्यर्थी सं. 2 मात्र एक सहकारी सोसाइटी है और याची के शेयर से इसे 2½ प्रतिशत घटाकर आबंटित नहीं किया जा सकता । याची द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष इस आदेश के विरुद्ध रिट याचिका फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा रिट याचिका खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यह सर्वमान्य विधि है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन पुनर्विलोकन की शक्ति ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध निदेशित नहीं है किंतु यह विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया तक सीमित है । न्यायिक पुनर्विलोकन किसी विनिश्चय से की गई अपील नहीं है बल्कि ऐसी रीति का पुनर्विलोकन है जिसमें विनिश्चय किया गया है और न्यायालय केवल विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया की शुद्धता का निर्णय करता है न कि स्वयं विनिश्चय की शुद्धता का । यह प्रत्यर्थी सं. 2 के ऐसे सदस्यों के कारण भी है जो स्वीकार्यतः भूतपूर्व सैनिक या उनके आश्रित हैं और जो याची निगम के माध्यम से अपना निर्वाह करने के लिए पर्याप्त कार्य कर पाने में असफल हैं क्योंकि उन्होंने प्रत्यर्थी सं. 2 सोसाइटी गठित की थी । इस याचिका की सुनवाई के दौरान भी, याची के समक्ष याची की सोसाइटी में प्रत्यर्थी सं. 2 के सदस्यों को नामांकित करने और याची निगम के अन्य भूतपूर्व सैनिकों के समान उन्हें काम आबंटित करने का प्रस्ताव किया गया था, किंतु उक्त प्रस्ताव को याची द्वारा इस आधार पर ठुकरा दिया गया कि ऐसे 227 ट्रक जो आरंभ में याची से जुड़े हुए हैं को पहले कार्य उपलब्ध कराया जाना है और उसके पश्चात् ही अन्य भूतपूर्व सैनिक यद्यपि याची के पास नामांकित हैं, कार्य के आबंटन और वितरण में शेयर का दावा कर सकता है । याची का यह दावा है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास उसके द्वारा लगाए गए 227 ट्रकों में से केवल 30 ट्रक सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों के हैं । इस प्रकार वस्तुतः याची जो दावा कर रहा है कुछ नहीं बल्कि शेष भूतपूर्व सैनिकों के लिए वस्तुतः परवाह किए बिना कार्य के वितरण और आबंटन में एकाधिकार है वह भी केवल उन 227 ट्रकों के पक्ष में जिन्हें आरंभतः प्रत्यर्थी सं. 3 के पास याची द्वारा लगाया गया था । निर्विवादतः याची ऐसे भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण और आर्थिक उन्नयन के लिए भूतपूर्व सैनिक अधिनियम, 1979 के अधीन निगमित और गठित एक कानूनी निकाय है जो सभी भूतपूर्व सैनिकों के लिए है न कि कुछ चयनित व्यक्तियों के लिए । एक बार निगम का कानूनी निकाय होने और अनुच्छेद

के अर्थान्तर्गत राज्य की प्रास्थिति पाने के पश्चात् इसकी कार्रवाई संविधान विशिष्टतया उसके अनुच्छेद 14 के अनुरूप होनी चाहिए । याची को मनमाने या विभेदकारी ढंग से कार्य करने और तद्द्वारा एक भूतपूर्व सैनिक और दूसरे भूतपूर्व सैनिक विशेषकर जबकि भूतपूर्व सैनिक स्वयं में एक सजातीय वर्ग गठित करते हैं के बीच विभेद करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य होते हुए याची को विधि की चाहरदीवारी के भीतर कार्य करना चाहिए । अब, इसमें आक्षेपित विनिश्चय का उल्लेख करते हुए यह ध्यान दिए जाने योग्य है कि सर्वप्रथम प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा इस तथ्य पर विचार किया गया था कि सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों को इस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यर्थी सं. 3 का संयंत्र सोलन जिले में स्थित था, परिवहन कार्य में सम्यक् शेयर नहीं दिया गया था । चूंकि संयंत्र का मुख्य प्रभाव सोलन जिले में था इसलिए इस जिले के निवासियों को कार्य के आबंटन और वितरण में पूर्विकता दी जानी चाहिए । प्रत्यर्थी सं. 1 ने 2012 की सिविल रिट याचिका सं. 5985 और 5736 में तारीख 13 दिसंबर, 2012 को इस न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश पर भी विचार करना था जिसमें ऋषि मार्कंडे भूतपूर्व सैनिक परिवहन और कल्याण समिति, जुखाला को पृथक् कोटा आबंटित किया गया था । अंततः प्रत्यर्थी सं. 1 ने इस तथ्य पर भी विचार किया कि कांगड़ा, हमीरपुर, बिलासपुर, ऊना और सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिक मुख्यतः परिवहन कार्य पर अपनी आजीविका पर आश्रित थे अतः यदि सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों को राज्य भूतपूर्व सैनिक कोटा से अनन्य कोटा दिया जाता है तो यह अन्य जिलों के निवासियों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा । (पैरा 7, 8, 9 और 10)

रिट (सिविल) अधिकारिता : 2015 की सिविल रिट याचिका सं. 2881.

संविधान, 1950 के अनुच्छेद 226 के अधीन रिट याचिका ।

याची की ओर से	श्री विकास चौहान
प्रत्यर्थी सं. 1 की ओर से	सर्वश्री वी. के. वर्मा, अपर महाधिवक्ता के साथ (सुश्री) पारुल नेगी और विक्रम ठाकुर, उप महाधिवक्ता
प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से	सर्वश्री रमाकांत शर्मा, वरिष्ठ अधिवक्ता के साथ तारा सिंह चौहान
प्रत्यर्थी सं. 3 की ओर से	श्री अजय मोहन गोयल

न्यायमूर्ति तरलोक सिंह चौहान – यह रिट याचिका निम्नलिखित सारवान् अनुतोषों की मांग करते हुए फाइल की गई है :–

> "(i) आक्षेपित आदेश तारीख 4 फरवरी, 2015 (उपाबंध पी. 5) को अभिखंडित करते हुए परमादेश या कोई अन्य रिट, आदेश या निदेश की प्रकृति की रिट जारी करते हुए"

2. मामले का संक्षिप्त तथ्य इस प्रकार है कि प्रत्यर्थी सं. 2 अर्थात् जिला, सोलन भूतपूर्व सैनिक परिवहन सहकारी सोसाइटी लिमिटेड, दरलाघाटे ने इस आधार पर 2013 की सिविल रिट याचिका सं. 4040 फाइल की थी कि वह याची से परिवहन कार्य का अपना सम्यक् शेयर प्राप्त नहीं कर रहा है । प्रत्यर्थी सं. 2 ने भी ऋषि मार्कंडे भूतपूर्व सैनिक परिवहन और कल्याण समिति, जुखाला, जिला बिलासपुर की तरह पृथक् कोटा की मांग की । अंततः उसने 21 अप्रैल, 2010 को इसमें याची द्वारा पारित इस आदेश को अभिखंडित करने की मांग की है जिसके द्वारा शिमला, सोलन और कुल्लू के भूतपूर्व सैनिकों के लिए केवल 30 ट्रकों का कोटा नियत किया गया था ।

3. इस न्यायालय ने 2013 की सिविल रिट याचिका सं. 4040 में तारीख 12 नवंबर, 2013 द्वारा निम्नलिखित आदेश पारित किया :–

> "इस याचिका में याची की शिकायत तत्वतः यह है कि प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा जारी संसूचना, उपाबंध पी. 9, आदेश 26 मार्च, 2010 द्वारा जिला मजिस्ट्रेट द्वारा जारी निदेश के अधीन है । उस मामले में याची 26 मार्च, 2010 के आदेश का उचित प्रवर्तन सुनिश्चित करने के लिए जिला मजिस्ट्रेट, सोलन, जिला सोलन के समक्ष आवेदन करने के लिए स्वतंत्र है । यदि ऐसा आवेदन फाइल किया जाता है तो इसका विनिश्चय सभी संबद्ध व्यक्तियों को नोटिस देने के पश्चात् यथाशीघ्र किया जाए ।
>
> 2. याची विधि के अनुसार याची को काम आबंटित करने के लिए समुचित निदेश जारी करने हेतु जिला मजिस्ट्रेट को आवेदन भी कर सकेगा । हम याची के उक्त दावे के बारे में कोई राय व्यक्त नहीं कर रहे हैं । इसका विनिश्चय सक्षम प्राधिकारी द्वारा उसके गुणदोष के आधार पर किया जाएगा ।
>
> 3. रिट याचिका और लंबित आवेदन यदि कोई है, का भी निपटान किया जाता है ।"

4. उपरोक्त आदेश के अनुपालन में प्रत्यर्थी सं. 1 ने याची के आबंटन और परिवहन कार्य को कम करते हुए आदेश पारित किया था जहां तक यह प्रत्यर्थी सं. 3 अर्थात् अम्बूजा सीमेंट के रऊरी यूनिट से विद्यमान 10 प्रतिशत से 7½ प्रतिशत सीमेंट उठाने के कार्य का संबंध है और इस प्रकार 2½ प्रतिशत कम किए गए कोटे को प्रत्यर्थी सं. 2 को आबंटित किए जाने का आदेश किया गया है । इसी आदेश को याची ने इस आधार पर चुनौती दी कि प्रत्यर्थी सं. 1 का आक्षेपित आदेश मनमाना और विभेदकारी है क्योंकि यह याची निगम है जिसका गठन पूरे राज्य में भूतपूर्व सैनिकों के फायदों के लिए कानून के अधीन किया गया है । प्रत्यर्थी सं. 2 मात्र एक सहकारी सोसाइटी है और याची के शेयर से इसे 2½ प्रतिशत घटाकर आबंटित नहीं किया जा सकता ।

5. प्रत्यर्थी सं. 1 में अपना उत्तर फाइल किया और अपने विनिश्चय का समर्थन किया । प्रत्यर्थी सं. 2 जो मुख्य प्रतिपक्षी पक्षकार है ने अपने उत्तर में इस आक्षेप सहित कि याची निगम के सदस्यों के पास पहले छह टायर वाले ट्रक थे और अब सक्षम प्राधिकारी से किसी आदेश के बिना बहू-एक्सेल यान खरीद लिया है तथा सामान्य ट्रक से अधिक भार उठा रहे हैं जिसके द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 के सदस्यों को किसी कार्य के आबंटन से वंचित कर रहे हैं, विभिन्न प्रारंभिक आक्षेप किए । यह भी प्रकथन किया गया है कि ऐसे ट्रक जो याची से सहबद्ध हैं, अधिकांशतः ऐसे लोगों के हैं जो भूतपूर्व सैनिक नहीं हैं किंतु भूतपूर्व सैनिक के नाम पर ट्रक चला रहे हैं । दूसरी ओर प्रत्यर्थी के सदस्य युद्ध के दौरान क्षतिग्रस्त सैनिक और विधवाएं हैं ।

6. प्रत्यर्थी सं. 3 ने अपने पृथक् कथन में संधार्यता से संबंधित प्रारंभिक आक्षेप किया । गुणदोष पर, यह कहा गया है कि जहां तक कार्य के वितरण का संबंध है, आरंभ में यह 26 मार्च, 2010 के आदेश द्वारा शासित था जिसमें याची को सीमेंट और खंगर के परिवहन कार्य का 10 प्रतिशत आबंटित किया गया था । अब 4 फरवरी, 2015 के आदेश द्वारा, प्रत्यर्थी सं. 1 ने अपना पूर्व आदेश उपांतरित किया और याची के पक्ष में आबंटित कार्य के 10 प्रतिशत कोटा में से रऊरी यूनिट के परिवहन कार्य को याची के आबंटन के शेयर में से 2½ प्रतिशत घटाकर प्रत्यर्थी सं. 2 के पक्ष में आबंटित किया गया था । आगे यह स्पष्ट किया गया कि रऊरी यूनिट में केवल खंगर का उत्पादन होता है यहां सीमेंट का उत्पादन नहीं होता है इसलिए स्थिति जो आक्षेपित आदेश पारित करने के पश्चात्

विद्यमान है यह है कि जहां तक सूली यूनिट का संबंध है याची के पक्ष में कार्य का वितरण वही बना हुआ है और इस यूनिट में खंगर और सीमेंट दोनों का उत्पादन होता है । आगे यह प्रकथन किया गया है कि यद्यपि आक्षेपित आदेश प्रत्यर्थी को सहयोजित किए बिना पारित किया गया था किंतु वह इस न्यायालय द्वारा जारी निदेशों के अनुसरण में होने के कारण प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा पारित आदेशों द्वारा पालन किए जाने के लिए आबद्ध था ।

हमने पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और मामले के अभिलेखों का भी परिशीलन किया ।

7. यह सर्वमान्य विधि है कि भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के अधीन पुनर्विलोकन की शक्ति ऐसे विनिश्चय के विरुद्ध निदेशित नहीं है किंतु यह विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया तक सीमित है । न्यायिक पुनर्विलोकन किसी विनिश्चय से की गई अपील नहीं है बल्कि ऐसी रीति का पुनर्विलोकन है जिसमें विनिश्चय किया गया है और न्यायालय केवल विनिश्चय करने वाली प्रक्रिया की शुद्धता का निर्णय करता है न कि स्वयं विनिश्चय की शुद्धता का ।

8. यह प्रत्यर्थी सं. 2 के ऐसे सदस्यों के कारण भी है जो स्वीकार्यतः भूतपूर्व सैनिक या उनके आश्रित हैं और जो याची निगम के माध्यम से अपना निर्वाह करने के लिए पर्याप्त कार्य कर पाने में असफल हैं क्योंकि उन्होंने प्रत्यर्थी सं. 2 सोसाइटी गठित की थी । इस याचिका की सुनवाई के दौरान भी, याची के समक्ष याची की सोसाइटी में प्रत्यर्थी सं. 2 के सदस्यों को नामांकित करने और याची निगम के अन्य भूतपूर्व सैनिकों के समान उन्हें काम आबंटित करने का प्रस्ताव किया गया था, किंतु उक्त प्रस्ताव को याची द्वारा इस आधार पर ठुकरा दिया गया कि ऐसे 227 ट्रक जो आरंभ में याची से जुड़े हुए हैं को पहले कार्य उपलब्ध कराया जाना है और उसके पश्चात् ही अन्य भूतपूर्व सैनिक यद्यपि याची के पास नामांकित हैं, कार्य के आबंटन और वितरण में शेयर का दावा कर सकता है । याची का यह दावा है कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास उसके द्वारा लगाए गए 227 ट्रकों में से केवल 30 ट्रक सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों के हैं । इस प्रकार वस्तुतः याची जो दावा कर रहा है कुछ नहीं बल्कि शेष भूतपूर्व सैनिकों के लिए वस्तुतः परवाह किए बिना कार्य के वितरण और आबंटन में एकाधिकार है वह भी केवल उन 227 ट्रकों के पक्ष में जिन्हें आरंभतः प्रत्यर्थी सं. 3 के पास याची द्वारा लगाया गया था ।

9. निर्विवादतः याची ऐसे भूतपूर्व सैनिकों के कल्याण और आर्थिक उन्नयन के लिए भूतपूर्व सैनिक अधिनियम, 1979 के अधीन निगमित और गठित एक कानूनी निकाय है जो सभी भूतपूर्व सैनिकों के लिए है न कि कुछ चयनित व्यक्तियों के लिए । एक बार निगम का कानूनी निकाय होने और अनुच्छेद के अर्थान्तर्गत राज्य की प्रास्थिति पाने के पश्चात् इसकी कार्रवाई संविधान विशिष्टतया उसके अनुच्छेद 14 के अनुरूप होनी चाहिए । याची को मनमाने या विभेदकारी ढंग से कार्य करने और तद्द्वारा एक भूतपूर्व सैनिक और दूसरे भूतपूर्व सैनिक विशेषकर जबकि भूतपूर्व सैनिक स्वयं में एक सजातीय वर्ग गठित करते हैं के बीच विभेद करने की अनुज्ञा नहीं दी जा सकती । भारत के संविधान के अनुच्छेद 12 के अर्थान्तर्गत राज्य होते हुए याची को विधि की चाहरदीवारी के भीतर कार्य करना चाहिए ।

10. अब, इसमें आक्षेपित विनिश्चय का उल्लेख करते हुए यह ध्यान दिए जाने योग्य है कि सर्वप्रथम प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा इस तथ्य पर विचार किया गया था कि सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों को इस तथ्य के बावजूद कि प्रत्यर्थी सं. 3 का संयंत्र सोलन जिले में स्थित था, परिवहन कार्य में सम्यक् शेयर नहीं दिया गया था । चूंकि संयंत्र का मुख्य प्रभाव सोलन जिले में था इसलिए इस जिले के निवासियों को कार्य के आबंटन और वितरण में पूर्विकता दी जानी चाहिए । प्रत्यर्थी सं. 1 ने 2012 की सिविल रिट याचिका सं. 5985 और 5736 में तारीख 13 दिसंबर, 2012 को इस न्यायालय द्वारा पारित उस आदेश पर भी विचार करना था जिसमें ऋषि मार्कंडे भूतपूर्व सैनिक परिवहन और कल्याण समिति, जुखाला को पृथक् कोटा आबंटित किया गया था । अंततः प्रत्यर्थी सं. 1 ने इस तथ्य पर भी विचार किया कि कांगड़ा, हमीरपुर, बिलासपुर, ऊना और सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिक मुख्यतः परिवहन कार्य पर अपनी आजीविका पर आश्रित थे अतः यदि सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों को राज्य भूतपूर्व सैनिक कोटा से अनन्य कोटा दिया जाता है तो यह अन्य जिलों के निवासियों पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं डालेगा ।

11. इस पृष्ठभूमि में, यह देखा जाना है कि याची का यह पक्षकथन भी नहीं है कि वह सहबद्ध नहीं है या आक्षेपित आदेश पारित करने के पूर्व अपना पक्षकथन प्रस्तुत करने का अवसर नहीं दिया गया था । की गई शिकायत केवल यह है कि प्रत्यर्थी सं. 1 इस तथ्य पर विचार करने में

असफल रहा कि प्रत्यर्थी सं. 3 के पास याची द्वारा लगाए गए 227 ट्रकों में से लगाए कुल 30 ट्रक सोलन जिले के भूतपूर्व सैनिकों के थे ।

12. इस प्रक्रम पर यह तय किया जाना है कि याची ने प्रत्यर्थी सं. 2 के उत्तर में प्रत्युत्तर फाइल करने का विकल्प नहीं चुना अतः इसका अभिकथन कि भूतपूर्व सैनिकों के कई ट्रक गैर-भूतपूर्व सैनिकों द्वारा चलाए जा रहे हैं और कुछ भूतपूर्व सैनिकों का पुनर्नियोजन सरकारी सेवा में किया गया है किंतु उनके ट्रक अब भी लगे हुए हैं और गैर-भूतपूर्व सैनिकों द्वारा चलाए जा रहे हैं, असंविवादित बना हुआ है । प्रत्यर्थी सं. 2 का अगला प्रकथन भी कि इसके सदस्यों में मुख्यतः युद्ध विधवाएं, ऐसे क्षतिग्रस्त सैनिक, जिन्हें सेवा से चिकित्सीय रूप से निकाल दिया गया है और अनियोजित भूतपूर्व सैनिक शामिल हैं, को भी सही करना होगा ।

13. इसके अलावा यदि प्रत्यर्थी सं. 1 द्वारा दिए गए विनिश्चय के गुणदोष पर विचार किया जाना अपेक्षित है तो भी यह देखना होगा कि प्रत्यर्थी सं. 2 के पास 145 सदस्य हैं जबकि याची के पास 227 ट्रक हैं अतः ऐसी परिस्थितियों में यदि याची का कोटा 10 प्रतिशत से घटाकर 7½ प्रतिशत किया जाता है और प्रत्यर्थी सं. 2 के पक्ष में मंजूर किया जाता है तो मैं ऐसे विनिश्चय में विशेषकर जब याची यह इनकार नहीं करता कि प्रत्यर्थी सं. 2 के सदस्य भूतपूर्व सैनिक या उनके आश्रित हैं, में कोई अवैधता नहीं पाता । कुल मिलाकर याची किसी एकाधिकार का दावा नहीं कर सकते ।

ऐसा उल्लेख करते हुए मैं इस रिट याचिका में कोई सार नहीं पाता और यह खारिज किया जाता है । पक्षकार अपने-अपने खर्चे स्वयं वहन करेंगे ।

रिट याचिका खारिज की गई ।

पा.

संसद् के अधिनियम

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2014

(2014 का अधिनियम संख्यांक 10)

[4 मार्च, 2014]

बुंदेलखंड क्षेत्र में कृषि के विकास के लिए तथा कृषि और सहबद्ध विज्ञान संबंधी विद्या और अनुसंधान कार्य की अभिवृद्धि को अग्रसर करने के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना और उसका निगमन करने तथा उसे राष्ट्रीय महत्व की संस्था घोषित करने का उपबंध करने के लिए अधिनियम

भारत गणराज्य के पैंसठवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

1. संक्षिप्त नाम और प्रारंभ – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय अधिनियम, 2014 है ।

(2) यह उस तारीख को प्रवृत्त होगा जो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय को राष्ट्रीय महत्व की संस्था के रूप में घोषित करना – रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय के रूप में ज्ञात संस्था का उद्देश्य राष्ट्रीय महत्व की संस्था बनाने का है, यह घोषित किया जाता है कि रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय के नाम से ज्ञात संस्था राष्ट्रीय महत्व की एक संस्था है ।

3. परिभाषाएं – इस अधिनियम में और इसके अधीन बनाए गए, सभी परिनियमों में, जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो, –

(क) "विद्या परिषद्" से विश्वविद्यालय की विद्या परिषद् अभिप्रेत है ;

(ख) "शैक्षणिक कर्मचारिवृन्द" से ऐसे प्रवर्ग के कर्मचारिवृन्द अभिप्रेत हैं, जो अध्यादेशों द्वारा शैक्षणिक कर्मचारिवृन्द अभिहित किए जाएं ;

(ग) "कृषि" से मृदा और जल प्रबंध संबंधी बुनियादी और अनुप्रयुक्त विज्ञान, फसल उत्पादन, जिसके अन्तर्गत सभी उद्यान फसलों का उत्पादन, पौधों, नाशकजीवों और रोगों का नियंत्रण भी है, उद्यान-कृषि, जिसके अन्तर्गत पुष्प विज्ञान भी है, पशुपालन, जिसके अन्तर्गत पशु चिकित्सा और दुग्ध विज्ञान भी है, मत्स्य उद्योग, वन विज्ञान, जिसके अन्तर्गत फार्म वन विज्ञान भी है, गृह विज्ञान, कृषि इंजीनियरी और प्रौद्योगिकी, कृषि तथा पशुपालन उत्पादों का विपणन और प्रसंस्करण, भू-उपयोग और प्रबंध अभिप्रेत है ;

(घ) "बोर्ड" से विश्वविद्यालय का प्रबंध बोर्ड अभिप्रेत है ;

(ङ) "अध्ययन बोर्ड" से विश्वविद्यालय का अध्ययन बोर्ड अभिप्रेत है ;

(च) "बुंदेलखंड" से वह क्षेत्र अभिप्रेत है जिसमें मध्य प्रदेश के छह जिले, अर्थात् छत्तरपुर, दमोह, दतिया, पन्ना, सागर और टीकमगढ़ तथा उत्तर प्रदेश के सात जिले, अर्थात् बांदा, चित्रकूट, हमीरपुर, जालौन, झांसी, ललितपुर और महोबा समाविष्ट हैं ;

(छ) "कुलाधिपति" से विश्वविद्यालय का कुलाधिपति अभिप्रेत है ;

(ज) "महाविद्यालय" से विश्वविद्यालय का घटक महाविद्यालय अभिप्रेत है चाहे वह मुख्यालय, कैम्पस में या अन्यत्र अवस्थित हो ;

(झ) "विभाग" से विश्वविद्यालय का अध्ययन विभाग अभिप्रेत है ;

(ञ) "कर्मचारी" से विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त कोई व्यक्ति अभिप्रेत है और इसके अन्तर्गत विश्वविद्यालय के शिक्षक और अन्य कर्मचारिवृन्द हैं ;

(ट) "विस्तारी शिक्षा" से कृषि, उद्यान-कृषि, मत्स्य उद्योग और उससे संबंधित समुन्नत पद्धतियों तथा कृषि और कृषि उत्पादन से, जिसके अन्तर्गत फसलोत्तर प्रौद्योगिकी और विपणन भी हैं, संबंधित वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी के विभिन्न चरणों में काम कर रहे फलोद्यानियों, कृषकों और अन्य समूहों के प्रशिक्षण से संबंधित शैक्षणिक क्रियाकलाप अभिप्रेत है ;

(ठ) "संकाय" से विश्वविद्यालय का संकाय अभिप्रेत है ;

(ड) "अध्यादेश" से विश्वविद्यालय के अध्यादेश अभिप्रेत हैं ;

(ढ) "विनियम" से विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण द्वारा बनाए गए विनियम अभिप्रेत हैं ;

(ण) "अनुसंधान सलाहकार समिति" से विश्वविद्यालय की अनुसंधान सलाहकार समिति अभिप्रेत है ;

(त) "परिनियम" से विश्वविद्यालय के परिनियम अभिप्रेत हैं ;

(थ) "छात्र" से ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जिसे विश्वविद्यालय में कोई उपाधि, डिप्लोमा या सम्यक् रूप से संस्थित अन्य विद्या संबंधी विशिष्ट उपाधि अभिप्राप्त करने के लिए पाठ्यक्रमानुसार अध्ययन करने के लिए नामांकित किया गया है ;

(द) "शिक्षक" से आचार्य, सह-आचार्य, सहायक आचार्य, अध्यापन संकाय के सदस्य और उनके समतुल्य सदस्य अभिप्रेत हैं जो विश्वविद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे किसी संस्थान में शिक्षण देने या अनुसंधान या विस्तारी शिक्षा कार्यक्रम या इनके संयोजन का संचालन करने के लिए नियुक्त किए गए हैं और जिन्हें अध्यादेशों द्वारा शिक्षक के रूप में अभिहित किया गया है ;

(ध) "विश्वविद्यालय" से इस अधिनियम के अधीन स्थापित रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय अभिप्रेत है ;

(न) "कुलपति" से विश्वविद्यालय का कुलपति अभिप्रेत है ;

(प) "कुलाध्यक्ष" से विश्वविद्यालय का कुलाध्यक्ष अभिप्रेत है ।

4. विश्वविद्यालय – (1) "रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय" के नाम से एक विश्वविद्यालय स्थापित किया जाएगा ।

(2) विश्वविद्यालय का मुख्यालय उत्तर प्रदेश राज्य के झांसी में होगा और वह अपनी अधिकारिता के भीतर ऐसे अन्य स्थानों पर भी, जो वह ठीक समझे, कैम्पस स्थापित कर सकेगा :

परंतु विश्वविद्यालय मध्य प्रदेश राज्य में दो महाविद्यालय और उत्तर प्रदेश राज्य के बुंदेलखंड क्षेत्र में झांसी में दो महाविद्यालय स्थापित करेगा ।

(3) प्रथम कुलाधिपति और प्रथम कुलपति तथा बोर्ड और विद्या परिषद् के प्रथम सदस्य तथा वे सभी व्यक्ति जो आगे चलकर ऐसे अधिकारी या सदस्य बनें, जब तक वे ऐसे पद पर बने रहते हैं या उनकी

सदस्यता बनी रहती है इसके द्वारा रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय के नाम से निगमित निकाय के रूप में गठित किए जाते हैं ।

(4) विश्वविद्यालय का शाश्वत उत्तराधिकार होगा और उसकी सामान्य मुद्रा होगी तथा उक्त नाम से वह वाद लाएगा और उस पर वाद लाया जाएगा ।

5. विश्वविद्यालय के उद्देश्य – विश्वविद्यालय के निम्नलिखित उद्देश्य होंगे, अर्थात् :–

(क) कृषि और सहबद्ध विज्ञानों की विभिन्न शाखाओं में ऐसी शिक्षा देना जो वह ठीक समझे ;

(ख) कृषि और सहबद्ध विज्ञानों में विद्या की अभिवृद्धि करना और अनुसंधान का संचालन करना ;

(ग) अपनी अधिकारिता के अधीन राज्यों के जिलों में बुंदेलखंड में विस्तारी शिक्षा के कार्यक्रम चलाना ;

(घ) राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय शैक्षिक संस्थाओं के साथ भागीदारी और संपर्क का संवर्धन करना ; और

(ङ) ऐसे अन्य क्रियाकलाप करना जो वह समय-समय पर अवधारित करे ।

6. विश्वविद्यालय की शक्तियां – विश्वविद्यालय की निम्नलिखित शक्तियां होंगी, अर्थात् :–

(i) कृषि और सहबद्ध विज्ञानों में शिक्षण के लिए व्यवस्था करना ;

(ii) कृषि और विद्या की सहबद्ध शाखाओं में अनुसंधान करने के लिए व्यवस्था करना ;

(iii) विस्तार कार्यक्रमों के माध्यम से अनुसंधान और तकनीकी जानकारी संबंधी निष्कर्षों के प्रसार के लिए व्यवस्था करना ;

(iv) ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो वह अवधारित करे, व्यक्तियों को डिप्लोमा या प्रमाणपत्र प्रदान करना और परीक्षा, मूल्यांकन या परीक्षण की किसी अन्य रीति के आधार पर उन्हें उपाधियां या अन्य विद्या संबंधी विशिष्ट उपाधियां प्रदान करना और

उचित तथा पर्याप्त कारण होने पर किसी ऐसे डिप्लोमाओं, प्रमाणपत्रों, उपाधियों या अन्य विद्या संबंधी विशिष्ट उपाधियों को वापस लेना ;

(v) परिनियमों द्वारा विहित रीति में सम्मानिक उपाधियां या अन्य विशिष्ट उपाधियां प्रदान करना ;

(vi) फील्ड कार्यकर्ताओं, ग्राम नेताओं और ऐसे अन्य व्यक्तियों के लिए, जिन्हें विश्वविद्यालय के नियमित छात्र के रूप में नामांकित नहीं किया गया है व्याख्यान और शिक्षण की व्यवस्था करना तथा उन्हें ऐसे प्रमाणपत्र प्रदान करना जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ;

(vii) किसी अन्य विश्वविद्यालय या प्राधिकरण या उच्चतर विद्या की संस्था के साथ ऐसी रीति से और ऐसे प्रयोजन के लिए, जो विश्वविद्यालय अवधारित करे, सहकार करना या सहयोग देना या सहयुक्त होना ;

(viii) कृषि, उद्यान कृषि, मत्स्य-उद्योग, वनोद्योग, पशु चिकित्सा और पशु विज्ञान, दुग्ध उद्योग, गृह विज्ञान और सहबद्ध विज्ञानों से संबंधित यथा आवश्यक महाविद्यालयों की स्थापना करना और उन्हें चलाना ;

(ix) ऐसे कैम्पस, विशेष केन्द्र, विशेषित प्रयोगशाला, पुस्तकालय, संग्रहालय या अनुसंधान और संस्था के लिए ऐसी अन्य इकाइयां स्थापित करना और उन्हें चलाना, जो उसकी राय में, उसके उद्देश्यों को अग्रसर करने के लिए आवश्यक हैं ;

(x) अध्यापन, अनुसंधान और विस्तारी शिक्षा के पदों का सृजन करना और उन पर नियुक्तियां करना ;

(xi) प्रशासनिक, अनुसचिवीय और अन्य पदों का सृजन करना और उन पर नियुक्तियां करना ;

(xii) अध्येतावृत्ति, छात्रवृत्ति, अध्ययनवृत्ति, पदक और पुरस्कार संस्थित करना और प्रदान करना ;

(xiii) विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए स्तरमान अवधारित करना, जिनके अंतर्गत परीक्षा, मूल्यांकन या परीक्षण की कोई अन्य रीति हो सकेगी ;

(xiv) छात्रों और कर्मचारियों के लिए निवास-स्थान की व्यवस्था करना और उनका रखरखाव करना ;

(xv) विश्वविद्यालय के छात्रों और कर्मचारियों के निवास-स्थानों का पर्यवेक्षण करना और उनके स्वास्थ्य और सामान्य कल्याण की अभिवृद्धि के लिए प्रबंध करना ;

(xvi) सभी प्रवर्गों के कर्मचारियों की सेवा की शर्तें, जिनके अंतर्गत उनकी आचार संहिता भी है, अधिकथित करना ;

(xvii) छात्रों और कर्मचारियों के अनुशासन का विनियमन करना और उसका पालन कराना तथा इस संबंध में ऐसे अनुशासन संबंधी उपाय करना जो वह आवश्यक समझे ;

(xviii) ऐसी फीसों और अन्य प्रभारों को, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं, नियत करना, उनकी मांग करना और उन्हें प्राप्त करना ;

(xix) केन्द्रीय सरकार के अनुमोदन से विश्वविद्यालय की संपत्ति की प्रतिभूति पर विश्वविद्यालय के प्रयोजन के लिए धन उधार लेना ;

(xx) अपने प्रयोजनों के लिए उपकृति, संदान और दान प्राप्त करना और किसी स्थावर या जंगम संपत्ति को, जिसके अंतर्गत न्यास और विन्यास संपत्तियां भी हैं, अर्जित करना, धारण करना, उसका प्रबन्ध और व्ययन करना ;

(xxi) ऐसे अन्य सभी कार्य और बातें करना जो सभी या किन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आवश्यक, आनुषंगिक या साधक हों ।

7. अधिकारिता – (1) कृषि के क्षेत्र में विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापन, अनुसंधान और विस्तारी शिक्षा के कार्यक्रमों की बाबत विश्वविद्यालय की अधिकारिता और उत्तरदायित्व का विस्तार संपूर्ण देश पर होगा और प्राथमिकता बुंदेलखंड क्षेत्र से संबंधित मुद्दों को दी जाएगी ।

(2) विश्वविद्यालय के प्राधिकरण के अधीन स्थापित होने वाले सभी महाविद्यालय, अनुसंधान और प्रयोग केन्द्र या अन्य संस्थाएं, उनके अधिकारियों और प्राधिकरणों के पूर्ण प्रबंध या नियंत्रण के अधीन उसकी घटक इकाइयों के रूप में होंगी तथा ऐसी किसी भी इकाई को सहबद्ध इकाई के रूप में मान्यता नहीं दी जाएगी ।

(3) विश्वविद्यालय, फील्ड विस्तार कार्यकर्ताओं और अन्य व्यक्तियों के प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायित्व ग्रहण कर सकेगा और ऐसे प्रशिक्षण केन्द्रों का विकास कर सकेगा जो उसकी अधिकारिता के अधीन राज्यों के विभिन्न भागों में अपेक्षित हों ।

8. विश्वविद्यालय का सभी वर्गों, जातियों और पंथों के लिए खुला होना – विश्वविद्यालय सभी स्त्रियों और पुरुषों के लिए चाहे वे किसी भी जाति, पंथ, मूलवंश या वर्ग के हों, खुला होगा और विश्वविद्यालय के लिए यह विधिपूर्ण नहीं होगा कि वह किसी व्यक्ति को विश्वविद्यालय के शिक्षक के रूप में नियुक्त किए जाने या उसमें कोई अन्य पद धारण करने या विश्वविद्यालय में छात्र के रूप में प्रवेश पाने या उसमें स्नातक की उपाधि प्राप्त करने या उसके किसी विशेषाधिकार का उपभोग या प्रयोग करने का हकदार बनाने के लिए किसी धार्मिक विश्वास या मान्यता संबंधी कोई मानदंड अपनाए या उस पर अधिरोपित करे :

परन्तु इस धारा की कोई बात विश्वविद्यालय को महिलाओं, निःशक्त व्यक्तियों या समाज के दुर्बल वर्गों और विशिष्टतया अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति और अन्य सामाजिक या शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्गों के नागरिकों के नियोजन या प्रवेश के लिए विशेष उपबंध करने से निवारित करने वाली नहीं समझी जाएगी ।

9. कुलाध्यक्ष – (1) भारत का राष्ट्रपति विश्वविद्यालय का कुलाध्यक्ष होगा ।

(2) उपधारा (3) और उपधारा (4) के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कुलाध्यक्ष को ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों द्वारा, जिन्हें वह निदेश दें, विश्वविद्यालय, उसके भवनों, प्रयोगशालाओं, पुस्तकालयों, संग्रहालयों, कार्यशालाओं और उपस्करों का और किसी संस्था या महाविद्यालय का और विश्वविद्यालय द्वारा संचालित या परीक्षा, दिए गए शिक्षण और किए गए अन्य कार्य का भी निरीक्षण कराने का और विश्वविद्यालय के प्रशासन और वित्त से संबंधित किसी मामले की बाबत उसी रीति से जांच कराने का अधिकार होगा ।

(3) कुलाध्यक्ष, प्रत्येक मामले में निरीक्षण या जांच कराने के अपने आशय की सूचना विश्वविद्यालय को देगा और विश्वविद्यालय को, ऐसी सूचना की प्राप्ति पर, सूचना की प्राप्ति की तारीख से तीस दिन या ऐसी अन्य अवधि के भीतर जो कुलाध्यक्ष अवधारित करे, उसको ऐसे अभ्यावेदन

करने का अधिकार होगा, जो वह आवश्यक समझे ।

(4) विश्वविद्यालय द्वारा किए गए अभ्यावेदनों पर, यदि कोई हों, विचार करने के पश्चात् कुलाध्यक्ष ऐसे निरीक्षण या जांच करा सकेगा जो उपधारा (2) में निर्दिष्ट है ।

(5) जहां कुलाध्यक्ष द्वारा कोई निरीक्षण या जांच कराई जाती है वहां विश्वविद्यालय एक प्रतिनिधि नियुक्त करने का हकदार होगा जिसे ऐसे निरीक्षण या जांच में स्वयं हाजिर होने और सुने जाने का अधिकार होगा ।

(6) कुलाध्यक्ष ऐसे निरीक्षण या जांच के परिणाम के संदर्भ में कुलपति को संबोधित कर सकेगा और उस पर कार्रवाई करने के संबंध में ऐसे विचार और ऐसी सलाह दे सकेगा जो कुलाध्यक्ष देना चाहे, और कुलाध्यक्ष से संबोधन की प्राप्ति पर कुलपति, बोर्ड को निरीक्षण या जांच के परिणाम और कुलाध्यक्ष के विचार तथा उस पर की जाने वाली कार्रवाई के संबंध में उसके द्वारा दी गई सलाह तुरन्त सूचित करेगा ।

(7) बोर्ड, कुलपति के माध्यम से कुलाध्यक्ष को वह कार्रवाई, यदि कोई हो, संसूचित करेगा जो वह ऐसे निरीक्षण या जांच के परिणामस्वरूप करने की प्रस्थापना करता है या उसके द्वारा की गई है ।

(8) जहां बोर्ड, कुलाध्यक्ष के समाधानप्रद रूप में कोई कार्रवाई उचित समय के भीतर नहीं करता है वहां कुलाध्यक्ष, बोर्ड द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण या किए गए अभ्यावेदन पर विचार करने के पश्चात्, ऐसे निदेश जारी कर सकेगा जो वह ठीक समझे और बोर्ड ऐसे निदेशों का पालन करने के लिए आबद्ध होगा ।

(9) इस धारा के पूर्वगामी उपबंधों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना कुलाध्यक्ष, विश्वविद्यालय की किसी ऐसी कार्रवाई को, जो इस अधिनियम, परिनियमों या अध्यादेशों के अनुरूप नहीं है, लिखित आदेश द्वारा, निष्प्रभाव कर सकेगा :

परन्तु ऐसा कोई आदेश करने के पहले वह विश्वविद्यालय से इस बात का कारण बताने की अपेक्षा करेगा कि ऐसा आदेश क्यों न किया जाए और यदि उचित समय के भीतर कोई कारण बताया जाता है, तो वह उस पर विचार करेगा ।

(10) कुलाध्यक्ष को ऐसी अन्य शक्तियां होंगी जो परिनियमों द्वारा विनिर्दिष्ट की जाएं ।

10. विश्वविद्यालय के अधिकारी – विश्वविद्यालय के निम्नलिखित अधिकारी होंगे, अर्थात् :–

(1) कुलाधिपति ;

(2) कुलपति ;

(3) संकायाध्यक्ष ;

(4) निदेशक ;

(5) कुलसचिव ;

(6) नियंत्रक ;

(7) विश्वविद्यालय पुस्तकालयाध्यक्ष ; और

(8) ऐसे अन्य अधिकारी, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

11. कुलाधिपति – (1) कुलाधिपति की नियुक्ति कुलाध्यक्ष द्वारा ऐसी रीति से की जाएगी, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाए ।

(2) कुलाधिपति, अपने पदाभिधान से विश्वविद्यालय का प्रधान होगा ।

(3) कुलाधिपति, यदि उपस्थित हो तो वह उपाधियां प्रदान करने के लिए आयोजित किए जाने वाले विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोहों की अध्यक्षता करेगा ।

12. कुलपति – (1) कुलपति की नियुक्ति कुलाध्यक्ष द्वारा ऐसी रीति से की जाएगी, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाए ।

(2) कुलपति, विश्वविद्यालय का प्रधान कार्यपालक और शैक्षणिक अधिकारी होगा और विश्वविद्यालय के कार्यकलापों पर साधारण पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण रखेगा और विश्वविद्यालय के सभी प्राधिकरणों के विनिश्चयों को कार्यान्वित करेगा ।

(3) कुलपति, यदि उसकी यह राय है कि किसी मामले में तुरन्त कार्रवाई करना आवश्यक है तो वह किसी ऐसी शक्ति का प्रयोग कर सकेगा जो विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण को इस अधिनियम द्वारा या इसके अधीन प्रदत्त है और अपने द्वारा ऐसे मामले में की गई कार्रवाई की

रिपोर्ट उस प्राधिकरण को देगा :

परन्तु यदि संबंधित प्राधिकरण की यह राय है कि ऐसी कार्रवाई नहीं की जानी चाहिए थी तो वह ऐसा मामला कुलाध्यक्ष को निर्देशित कर सकेगा जिस पर उसका विनिश्चय अंतिम होगा :

परन्तु यह और कि विश्वविद्यालय की सेवा में किसी ऐसे व्यक्ति को, जो कुलपति द्वारा इस उपधारा के अधीन की गई कार्रवाई से व्यथित है, यह अधिकार होगा कि जिस तारीख को ऐसी कार्रवाई का विनिश्चय उसे संसूचित किया जाता है उससे तीन मास के भीतर वह उस कार्रवाई के विरुद्ध अपील बोर्ड से करे और तब बोर्ड, कुलपति द्वारा की गई कार्रवाई को पुष्ट कर सकेगा, उपांतरित कर सकेगा या उसे उलट सकेगा ।

(4) कुलपति यदि उसकी यह राय है कि विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण का कोई विनिश्चय इस अधिनियम, परिनियमों या अध्यादेशों के उपबंधों द्वारा प्रदत्त प्राधिकरण की शक्तियों के बाहर है या किया गया विनिश्चय विश्वविद्यालय के हित में नहीं है, तो वह संबंधित प्राधिकरण से अपने विनिश्चय का ऐसे विनिश्चय के साठ दिन के भीतर पुनर्विलोकन करने के लिए कह सकेगा और यदि वह प्राधिकरण उस विनिश्चय का पूर्णतः या भागतः पुनर्विलोकन करने से इनकार करता है या उसके द्वारा साठ दिन की उक्त अवधि के भीतर कोई विनिश्चय नहीं किया गया है, तो वह मामला कुलाध्यक्ष को निर्देशित किया जाएगा, जिसका उस पर विनिश्चय अन्तिम होगा ।

(5) कुलपति ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग और ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन करेगा, जो परिनियमों या अध्यादेशों द्वारा विहित किए जाएं ।

13. संकायाध्यक्ष और निदेशक – प्रत्येक संकायाध्यक्ष और प्रत्येक निदेशक की नियुक्ति ऐसी रीति से की जाएगी और वह ऐसी शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

14. कुलसचिव – (1) कुलसचिव की नियुक्ति ऐसी रीति से की जाएगी, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाए ।

(2) कुलसचिव को विश्वविद्यालय की ओर से करार करने, दस्तावेजों पर हस्ताक्षर करने और अभिलेखों को अधिप्रमाणित करने की शक्ति होगी और वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे अन्य कर्तव्यों का पालन

करेगा, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

15. नियंत्रक – नियंत्रक की नियुक्ति ऐसी रीति से की जाएगी और वह ऐसी शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे कर्तव्यों का पालन करेगा, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

16. अन्य अधिकारी – विश्वविद्यालय के अन्य अधिकारियों की नियुक्ति की रीति तथा उनकी शक्तियां और कर्तव्य परिनियमों द्वारा यथाविहित होंगे ।

17. विश्वविद्यालय के प्राधिकरण – विश्वविद्यालय के निम्नलिखित प्राधिकरण होंगे, अर्थात् :–

(1) प्रबंध बोर्ड ;

(2) विद्या परिषद् ;

(3) अनुसंधान परिषद् ;

(4) विस्तारी शिक्षा परिषद् ;

(5) वित्त समिति ;

(6) संकाय और अध्ययन बोर्ड ; और

(7) ऐसे अन्य प्राधिकरण, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

18. प्रबंध बोर्ड – (1) प्रबंध बोर्ड, विश्वविद्यालय का प्रधान कार्यपालक निकाय होगा ।

(2) बोर्ड का गठन, उसके सदस्यों की पदावधि और उसकी शक्तियां तथा उसके कृत्य परिनियमों द्वारा विहित किए जाएंगे ।

19. विद्या परिषद् – (1) विद्या परिषद् विश्वविद्यालय की प्रधान शैक्षणिक निकाय होगी और वह इस अधिनियम, परिनियमों और अध्यादेशों के उपबंधों के अधीन रहते हुए विश्वविद्यालय के भीतर विद्या, शिक्षा, शिक्षण, मूल्यांकन और परीक्षा का नियंत्रण और साधारण विनियमन करेगी तथा उनके स्तरों को बनाए रखने के लिए उत्तरदायी होगी और वह ऐसी अन्य शक्तियों का प्रयोग तथा ऐसे अन्य कृत्यों का पालन करेगी, जो परिनियमों द्वारा प्रदत्त या उस पर अधिरोपित किए जाएं ।

(2) विद्या परिषद् का गठन और उसके सदस्यों की पदावधि परिनियमों द्वारा विहित किए जाएंगे ।

20. अनुसंधान परिषद् – अनुसंधान परिषद् का गठन, उसकी शक्तियां और उसके कृत्य परिनियमों द्वारा विहित किए जाएंगे ।

21. विस्तारी शिक्षा परिषद् – विस्तारी शिक्षा परिषद् का गठन, उसकी शक्तियां और उसके कृत्य परिनियमों द्वारा विहित किए जाएंगे ।

22. वित्त समिति – वित्त समिति का गठन और उसकी शक्तियां और उसके कृत्य परिनियमों द्वारा विहित किए जाएंगे ।

23. संकाय – विश्वविद्यालय के ऐसे संकाय होंगे, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

24. अध्ययन बोर्ड – अध्ययन बोर्ड का गठन, उसकी शक्तियां और उसके कृत्य परिनियमों द्वारा किए जाएंगे ।

25. अन्य प्राधिकरण – धारा 17 के खंड (7) में निर्दिष्ट विश्वविद्यालय के अन्य प्राधिकरणों का गठन, उनकी शक्तियां और उनके कृत्य वे होंगे, जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाएं ।

26. परिनियम बनाने की शक्ति – इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए, परिनियमों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) विश्वविद्यालय के प्राधिकरणों का, जो समय-समय पर गठित किए जाएं, गठन शक्तियां और कृत्य ;

(ख) उक्त प्राधिकरणों के सदस्यों की नियुक्ति और उनका पदों पर बने रहना, सदस्यों के पदों की रिक्तियों का भरा जाना तथा उन प्राधिकरणों से संबंधित अन्य सभी विषय जिनके लिए उपबंध करना आवश्यक या वांछनीय हो ;

(ग) विश्वविद्यालय के अधिकारियों की नियुक्ति, उनकी शक्तियां तथा कर्तव्य और उनकी उपलब्धियां ;

(घ) विश्वविद्यालय के शिक्षकों, शैक्षणिक कर्मचारिवृन्द और अन्य कर्मचारियों की नियुक्ति और उनकी उपलब्धियां ;

(ङ) किसी संयुक्त परियोजना को कार्यान्वित करने के लिए,

किसी अन्य विश्वविद्यालय या संगठन में काम करने वाले शिक्षकों और शैक्षणिक कर्मचारिवृन्द की विनिर्दिष्ट अवधि के लिए नियुक्ति ;

(च) कर्मचारियों की सेवा की शर्तें, जिनके अंतर्गत पेंशन, बीमा और भविष्य निधि का उपबंध, सेवा-समाप्ति और अनुशासनिक कार्रवाई की रीति भी है ;

(छ) विश्वविद्यालय के कर्मचारियों की सेवा में ज्येष्ठता को शासित करने वाले सिद्धांत ;

(ज) कर्मचारियों या छात्रों और विश्वविद्यालय के बीच विवाद के मामलों में माध्यस्थम् के लिए प्रक्रिया ;

(झ) विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी या प्राधिकारी की कार्रवाई के विरुद्ध किसी कर्मचारी या छात्र द्वारा बोर्ड को अपील करने की प्रक्रिया ;

(ञ) विभागों, केन्द्रों, महाविद्यालय और संस्थाओं की स्थापना और उत्सादन ;

(ट) सम्मानिक उपाधियों का प्रदान किया जाना ;

(ठ) उपाधियों, डिप्लोमाओं, प्रमाणपत्रों और अन्य विद्या संबंधी विशिष्ट उपाधियों का वापस लिया जाना ;

(ड) अध्येतावृत्तियों, छात्रवृत्तियों, अध्ययनवृत्तियों, पदकों और पुरस्कारों का संस्थित किया जाना ;

(ढ) विश्वविद्यालय के प्राधिकरणों या अधिकारियों में निहित शक्तियों का प्रत्यायोजन ;

(ण) कर्मचारियों और छात्रों में अनुशासन बनाए रखना ;

(त) ऐसे सभी अन्य विषय जो परिनियमों द्वारा विहित किए जाने हैं या किए जाएं ।

27. परिनियम किस प्रकार बनाए जाएंगे – (1) प्रथम परिनियम वे हैं जो अनुसूची में उपवर्णित हैं ।

(2) बोर्ड, समय-समय पर, परिनियम बना सकेगा या उपधारा (1) में निर्दिष्ट परिनियमों का संशोधन या निरसन कर सकेगा :

परन्तु बोर्ड, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण की प्रास्थिति, शक्तियों

या उसके गठन पर प्रभाव डालने वाला कोई परिनियम तब तक नहीं बनाएगा, उसका संशोधन नहीं करेगा और उसका निरसन नहीं करेगा जब तक ऐसे प्राधिकरण को प्रस्तावित परिवर्तनों पर अपनी राय लिखित रूप में अभिव्यक्त करने का अवसर नहीं दे दिया गया है और इस प्रकार अभिव्यक्त किसी राय पर बोर्ड विचार करेगा ।

(3) प्रत्येक परिनियम या उसके किसी संशोधन या निरसन के लिए कुलाध्यक्ष की अनुमति अपेक्षित होगी जो उस पर अनुमति दे सकेगा या अनुमति विधारित कर सकेगा या उसे बोर्ड को उसके विचारार्थ वापस भेज सकेगा ।

(4) कोई परिनियम या विद्यमान परिनियम का संशोधन या निरसन करने वाला कोई परिनियम तब तक विधिमान्य नहीं होगा जब तक कुलाध्यक्ष द्वारा उसकी अनुमति नहीं दे दी गई हो ।

(5) पूर्वगामी उपधाराओं में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, कुलाध्यक्ष, इस अधिनियम के प्रारंभ से ठीक पश्चात् की तीन वर्ष की अवधि के दौरान उपधारा (1) में निर्दिष्ट परिनियमों का संशोधन या निरसन कर सकेगा ।

(6) पूर्वगामी उपधाराओं में किसी बात के होते हुए भी, कुलाध्यक्ष, अपने द्वारा विनिर्दिष्ट किसी विषय के संबंध में परिनियमों में उपबंध करने के लिए विश्वविद्यालय को निदेश दे सकेगा और यदि बोर्ड, ऐसे निदेश को उसकी प्राप्ति के साठ दिन के भीतर कार्यान्वित करने में असमर्थ रहता है तो कुलाध्यक्ष, बोर्ड द्वारा ऐसे निदेश का अनुपालन करने में अपनी असमर्थता के लिए संसूचित/समुचित कारणों पर, यदि कोई हों, विचार करने के पश्चात्, यथोचित रूप से परिनियमों को बना या संशोधित कर सकेगा ।

28. अध्यादेश बनाने की शक्ति – (1) इस अधिनियम और परिनियमों के उपबंधों के अधीन रहते हुए, अध्यादेशों में निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध किया जा सकेगा, अर्थात् :–

(क) विश्वविद्यालय में छात्रों का प्रवेश और उस रूप में उनका नामांकन ;

(ख) विश्वविद्यालय की सभी उपाधियों, डिप्लोमाओं और प्रमाणपत्रों के लिए अधिकथित किए जाने वाले पाठ्यक्रम ;

(ग) शिक्षण और परीक्षा का माध्यम ;

(घ) उपाधियों, डिप्लोमाओं, प्रमाणपत्रों और अन्य विद्या संबंधी विशिष्ट उपाधियों का प्रदान किया जाना, उनके लिए अर्हताएं और उन्हें प्रदान करने और प्राप्त करने के बारे में किए जाने वाले उपाय ;

(ङ) विश्वविद्यालय में अध्ययन के पाठ्यक्रमों के लिए और विश्वविद्यालय की परीक्षाओं, उपाधियों, डिप्लोमाओं और प्रमाणपत्रों में प्रवेश के लिए प्रभारित की जाने वाली फीस ;

(च) अध्येतावृत्तियां, छात्रवृत्तियां, अध्ययनवृत्तियां, पदक और पुरस्कार प्रदान किए जाने की शर्तें ;

(छ) परीक्षाओं का संचालन, जिसके अंतर्गत परीक्षा निकायों, परीक्षकों और अनुसीमकों की पदावधि और नियुक्ति की रीति और उनके कर्तव्य भी हैं ;

(ज) छात्रों के निवास की शर्तें ;

(झ) छात्राओं के निवास, अनुशासन और अध्यापन के लिए किए जाने वाले विशेष प्रबंध, यदि कोई हों, और उनके लिए अध्ययन के विशेष पाठ्यक्रमों को विहित करना ;

(ञ) जिन कर्मचारियों के लिए परिनियमों में उपबंध किया गया है उनसे भिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति और उपलब्धियां ;

(ट) विशेष केन्द्रों, विशेषित प्रयोगशालाओं और अन्य समितियों की स्थापना ;

(ठ) अन्य विश्वविद्यालयों और प्राधिकरणों के साथ, जिनके अंतर्गत विद्वत् निकाय या संगम भी हैं, सहकार और सहयोग करने की रीति ;

(ड) किसी अन्य ऐसे निकाय का, जो विश्वविद्यालय के शैक्षणिक जीवन में सुधार के लिए आवश्यक समझा जाए, सृजन, उसकी संरचना और उसके कृत्य ;

(ढ) शिक्षकों और अन्य शैक्षणिक कर्मचारिवृन्द की सेवा के ऐसे अन्य निबंधन और शर्तें, जो परिनियमों द्वारा विहित नहीं हैं ;

(ण) विश्वविद्यालय द्वारा स्थापित महाविद्यालयों और संस्थाओं का प्रबंध ;

(त) कर्मचारियों की शिकायतों को दूर करने के लिए किसी तंत्र की स्थापना ; और

(थ) ऐसे सभी अन्य विषय जो इस अधिनियम या परिनियमों के अनुसार अध्यादेशों द्वारा उपबंधित किए जाएं ।

(2) प्रथम अध्यादेश, केन्द्रीय सरकार के पूर्व अनुमोदन से, कुलपति द्वारा बनाए जाएंगे, और इस प्रकार बनाए गए अध्यादेश, परिनियमों द्वारा विहित रीति से बोर्ड द्वारा किसी भी समय संशोधित या निरसित किए जा सकेंगे ।

29. विनियम – विश्वविद्यालय के प्राधिकरण स्वयं अपने और अपने द्वारा स्थापित की गई समितियों के कार्य संचालन के लिए, जिसका इस अधिनियम, परिनियमों या अध्यादेशों द्वारा उपबंध नहीं किया गया है, परिनियमों द्वारा विहित रीति से ऐसे विनियम बना सकेंगे, जो इस अधिनियम, परिनियमों और अध्यादेशों से संगत हैं ।

30. वार्षिक रिपोर्ट – (1) विश्वविद्यालय की वार्षिक रिपोर्ट बोर्ड के निदेश के अधीन तैयार की जाएगी, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ विश्वविद्यालय द्वारा अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए गए उपाय होंगे और वह बोर्ड को उस तारीख को या उसके पश्चात् भेजी जाएगी, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाए और बोर्ड अपने वार्षिक अधिवेशन में उस रिपोर्ट पर विचार करेगा ।

(2) बोर्ड, वार्षिक रिपोर्ट अपनी टीका-टिप्पणी सहित, यदि कोई हो, कुलाध्यक्ष को भेजेगा ।

(3) उपधारा (1) के अधीन तैयार की गई वार्षिक रिपोर्ट की प्रति, केन्द्रीय सरकार को भी प्रस्तुत की जाएगी, जो उसे यथाशीघ्र, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाएगी ।

31. वार्षिक लेखे – (1) विश्वविद्यालय के वार्षिक लेखे बोर्ड के निदेशों के अधीन तैयार किए जाएंगे और भारत के नियंत्रक-महालेखापरीक्षक द्वारा या ऐसे व्यक्तियों द्वारा जिन्हें वह इस निमित्त प्राधिकृत करे, प्रत्येक वर्ष कम से कम एक बार और पंद्रह मास से अनधिक के अंतराल पर उनकी संपरीक्षा की जाएगी ।

(2) वार्षिक लेखाओं की प्रति, उन पर संपरीक्षा रिपोर्ट सहित, बोर्ड को और बोर्ड के संप्रेक्षणों के साथ, कुलाध्यक्ष को प्रस्तुत की जाएगी ।

(3) वार्षिक लेखाओं पर कुलाध्यक्ष द्वारा किए गए संप्रेक्षण बोर्ड के ध्यान में लाए जाएंगे और बोर्ड के संप्रेक्षणों को, यदि कोई हों, कुलाध्यक्ष को प्रस्तुत किया जाएगा ।

(4) कुलाध्यक्ष को प्रस्तुत की गई संपरीक्षा रिपोर्ट के साथ वार्षिक लेखाओं की एक प्रति केन्द्रीय सरकार को भी प्रस्तुत की जाएगी, जो उसे यथाशीघ्र, संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखवाएगी ।

(5) संपरीक्षित वार्षिक लेखे संसद् के दोनों सदनों के समक्ष रखे जाने के पश्चात् राजपत्र में प्रकाशित किए जाएंगे ।

32. कर्मचारियों की सेवा की शर्तें – (1) विश्वविद्यालय का प्रत्येक कर्मचारी लिखित संविदा के अधीन नियुक्त किया जाएगा जो विश्वविद्यालय के पास रखी जाएगी और उसकी एक प्रति संबंधित कर्मचारी को दी जाएगी ।

(2) विश्वविद्यालय और उसके किसी कर्मचारी के बीच संविदा से उत्पन्न होने वाला कोई विवाद, कर्मचारी के अनुरोध पर, माध्यस्थम् अधिकरण को निर्देशित किया जाएगा जिसमें बोर्ड द्वारा नियुक्त एक सदस्य, संबंधित कर्मचारी द्वारा नामनिर्देशित एक सदस्य और कुलाध्यक्ष द्वारा नियुक्त एक अधिनिर्णायक होगा ।

(3) अधिकरण का विनिश्चय अंतिम होगा और अधिकरण द्वारा विनिश्चित मामलों के संबंध में किसी सिविल न्यायालय में कोई वाद नहीं होगा ।

(4) उपधारा (2) के अधीन कर्मचारी द्वारा किया गया प्रत्येक ऐसा अनुरोध माध्यस्थम् और सुलह अधिनियम, 1996 (1996 का 26) के अर्थ में इस धारा के निबंधनों पर माध्यस्थम् के लिए निवेदन समझा जाएगा ।

(5) अधिकरण के कार्य को विनियमित करने की प्रक्रिया परिनियमों द्वारा विहित की जाएगी ।

33. छात्रों के विरुद्ध अनुशासनिक मामलों में अपील और माध्यस्थम् की प्रक्रिया – (1) कोई छात्र या परीक्षार्थी, जिसका नाम विश्वविद्यालय की नामावली से, यथास्थिति, कुलपति, अनुशासन समिति या परीक्षा समिति के

आदेशों या संकल्प द्वारा हटाया गया है और जिसे विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में बैठने से एक वर्ष से अधिक के लिए विवर्जित किया गया है उसके द्वारा ऐसे आदेशों की या ऐसे संकल्प की प्रति की प्राप्ति की तारीख से दस दिन के भीतर बोर्ड को अपील कर सकेगा और बोर्ड, यथास्थिति, कुलपति या समिति के विनिश्चय को पुष्ट या उपांतरित कर सकेगा या उलट सकेगा ।

(2) विश्वविद्यालय द्वारा किसी छात्र के विरुद्ध की गई अनुशासनिक कार्रवाई से उत्पन्न होने वाला कोई विवाद, उस छात्र के अनुरोध पर, माध्यस्थम् अधिकरण को निर्देशित किया जाएगा और धारा 32 की उपधारा (2), उपधारा (3), उपधारा (4) और उपधारा (5) के उपबंध, इस उपधारा के अधीन किए गए निर्देश को, यथाशक्य, लागू होंगे ।

34. अपील करने का अधिकार – इस अधिनियम में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, विश्वविद्यालय या विश्वविद्यालय द्वारा चलाए जा रहे महाविद्यालय या संस्था के प्रत्येक कर्मचारी या छात्र को, यथास्थिति, विश्वविद्यालय के किसी अधिकारी या प्राधिकरण अथवा किसी महाविद्यालय या संस्था के विनिश्चय के विरुद्ध ऐसे समय के भीतर, जो परिनियमों द्वारा विहित किया जाए, बोर्ड को अपील करने का अधिकार होगा और तब बोर्ड, उस विनिश्चय को जिसके विरुद्ध अपील की गई है, पुष्ट या उपांतरित कर सकेगा या उलट सकेगा ।

35. भविष्य और पेंशन निधियां – (1) विश्वविद्यालय अपने कर्मचारियों के फायदे के लिए ऐसी रीति से और ऐसी शर्तों के अधीन रहते हुए, जो परिनियमों द्वारा विहित की जाएं, ऐसी भविष्य निधि और पेंशन निधि का गठन करेगा या ऐसी बीमा स्कीमों की व्यवस्था करेगा, जो वह ठीक समझे ।

(2) जहां ऐसी भविष्य निधि या पेंशन निधि का इस प्रकार गठन किया गया है वहां केन्द्रीय सरकार यह घोषित कर सकेगी कि भविष्य निधि अधिनियम, 1925 (1925 का 19) के उपबंध ऐसी निधि को इस प्रकार लागू होंगे मानो वह सरकारी भविष्य निधि हो ।

36. विश्वविद्यालय के प्राधिकरणों के गठन के बारे में विवाद – यदि यह प्रश्न उठता है कि कोई व्यक्ति विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण के सदस्य के रूप में सम्यक् रूप से नियुक्त किया गया है या उसका सदस्य होने का हकदार है या नहीं तो वह मामला कुलाध्यक्ष को निर्देशित किया

जाएगा, जिसका उस पर विनिश्चय अंतिम होगा ।

37. समितियों का गठन – जहां विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण को इस अधिनियम या परिनियमों द्वारा समितियां स्थापित करने की शक्ति दी गई है वहां जैसा अन्यथा उपबंधित है उसके सिवाय, ऐसी समितियों में, संबंधित प्राधिकरण के ऐसे सदस्य और ऐसे अन्य व्यक्ति, यदि कोई हों, होंगे, जिन्हें प्राधिकरण प्रत्येक मामले में ठीक समझे ।

38. आकस्मिक रिक्तियों का भरा जाना – विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण के (पदेन सदस्यों से भिन्न) सदस्यों में सभी आकस्मिक रिक्तियां, यथाशीघ्र, ऐसे व्यक्तियों द्वारा भरी जाएंगी जिसने उस सदस्य को, जिसका स्थान रिक्त हुआ है, नियुक्त या सहयोजित किया था और आकस्मिक रिक्ति में नियुक्त या सहयोजित व्यक्ति, ऐसे प्राधिकरण या निकाय का सदस्य उस अवशिष्ट अवधि के लिए होगा, जिस तक वह व्यक्ति जिसका स्थान वह भरता है, सदस्य रहता ।

39. विश्वविद्यालय के प्राधिकरणों की कार्यवाहियों का रिक्तियों के कारण अविधिमान्य न होना – विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण का कोई कार्य या कार्यवाही केवल इस कारण अविधिमान्य नहीं होगी कि उसके सदस्यों में कोई रिक्ति या रिक्तियां हैं ।

40. सद्भावपूर्ण की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण – इस अधिनियम, परिनियमों या अध्यादेशों के उपबंधों में से किसी उपबंध के अनुसरण में सद्भावपूर्ण की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाहियां विश्वविद्यालय के बोर्ड, कुलपति, किसी प्राधिकरण या किसी अधिकारी या अन्य कर्मचारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

41. विश्वविद्यालय के अभिलेखों को साबित करने का ढंग – भारतीय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकरण या समिति की किसी रसीद, आवेदन, सूचना, आदेश, कार्यवाही, संकल्प या अन्य दस्तावेजों की, जो विश्वविद्यालय के कब्जे में हैं, या विश्वविद्यालय द्वारा सम्यक् रूप से रखे गए किसी रजिस्टर की किसी प्रविष्टि की प्रतिलिपि, कुलसचिव द्वारा सत्यापित कर दी जाने पर, उस दशा में जिसमें उसकी मूल प्रति पेश की जाने पर साक्ष्य में ग्राह्य होती, उस रसीद, आवेदन, सूचना, आदेश, कार्यवाही, संकल्प या दस्तावेज के या

रजिस्टर की प्रविष्टि के अस्तित्व के प्रथमदृष्ट्या साक्ष्य के रूप में ले ली जाएगी और उससे संबंधित मामलों और संव्यवहारों के साक्ष्य के रूप में ग्रहण की जाएगी ।

42. कठिनाइयों को दूर करने की शक्ति – (1) यदि इस अधिनियम के उपबंधों को प्रभावी करने में कोई कठिनाई उत्पन्न होती है तो केन्द्रीय सरकार, राजपत्र में प्रकाशित आदेश द्वारा, ऐसे उपबंध कर सकेगी जो इस अधिनियम के उपबंधों से असंगत न हों और जो कठिनाई को दूर करने के लिए उसे आवश्यक या समीचीन प्रतीत हो :

परंतु इस धारा के अधीन ऐसा कोई आदेश इस अधिनियम के प्रारंभ से तीन वर्ष के अवसान के पश्चात् नहीं किया जाएगा ।

(2) इस धारा के अधीन किया गया प्रत्येक आदेश, किए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा ।

43. संक्रमणकालीन उपबंध – इस अधिनियम और परिनियमों में किसी बात के होते हुए भी,–

(क) प्रथम कुलाधिपति और प्रथम कुलपति, कुलाध्यक्ष द्वारा नियुक्त किए जाएंगे और पांच वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे ;

(ख) प्रथम कुलसचिव और प्रथम नियंत्रक, कुलाध्यक्ष द्वारा नियुक्त किए जाएंगे और उक्त प्रत्येक अधिकारी तीन वर्ष की अवधि तक पद धारण करेगा ;

(ग) बोर्ड के प्रथम सदस्य, कुलाध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किए जाएंगे और तीन वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे ;

(घ) विद्या परिषद् के प्रथम सदस्य, कुलाध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किए जाएंगे और तीन वर्ष की अवधि तक पद धारण करेंगे :

परंतु यदि उपरोक्त पदों या प्राधिकरणों में कोई रिक्ति होती है तो वह कुलाध्यक्ष द्वारा, यथास्थिति, नियुक्ति या नामनिर्देशन द्वारा भरी जाएंगी और इस प्रकार नियुक्त या नामनिर्दिष्ट व्यक्ति तब तक पद धारण करेगा जब तक वह अधिकारी या सदस्य, जिसके स्थान पर उसकी नियुक्ति या नामनिर्देशन किया गया है, पद धारण करता यदि ऐसी रिक्ति नहीं हुई होती ।

44. परिनियमों, अध्यादेशों और विनियमों का राजपत्र में प्रकाशित

किया जाना और संसद् के समक्ष रखा जाना – (1) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक परिनियम, अध्यादेश या विनियम, राजपत्र में प्रकाशित किया जाएगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन बनाया गया प्रत्येक परिनियम, अध्यादेश या विनियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र, संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह सत्र में हो, कुल तीस दिन की अवधि के लिए रखा जाएगा । यह अवधि एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकेगी । यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्रों के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस परिनियम, अध्यादेश या विनियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं तो तत्पश्चात् वह ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा । यदि उक्त अवसान के पूर्व दोनों सदन सहमत हो जाएं कि वह परिनियम, अध्यादेश या विनियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो तत्पश्चात् वह निष्प्रभाव हो जाएगा । किन्तु परिनियम, अध्यादेश या विनियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभाव होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।

(3) परिनियम, अध्यादेश या विनियम बनाने की शक्ति के अन्तर्गत परिनियम, अध्यादेश या विनियम को अथवा उनमें से किसी को ऐसी तारीख से, जो इस अधिनियम के प्रारंभ की तारीख से पहले की न हो, भूतलक्षी प्रभाव देने की शक्ति होगी किन्तु किसी परिनियम, अध्यादेश या विनियम को इस प्रकार भूतलक्षी प्रभाव नहीं दिया जाएगा कि उससे किसी ऐसे व्यक्ति के, जिसको ऐसा परिनियम, अध्यादेश या विनियम लागू होता है, हितों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़े ।

क्रमशः ..... (आगामी अंक देखें)